वीर सम्वत् २५१०, ईस्वी सन् १९८४, विक्रम सम्वत् २०४१, शक सम्वत् १९०६

मूल्य : रु० २००/- सजिल्द, रु० १९५/- अजिल्द

प्रथम संस्करण सन् १९७७
द्वितीय संस्करण सन् १९८४
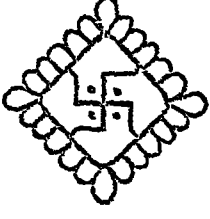
कला पक्ष : पारस भंसाली

मुद्रक : ऑल इण्डिया प्रेस, पाण्डिचेरी

चित्र मुद्रक : गुणवन्त मेहता, वकील एण्ड सन्स प्रा० लि०, बम्बई

मिलने का पता : प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर राजस्थान
यति श्यामलालजी का उपाश्रय, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर-३०२००३.
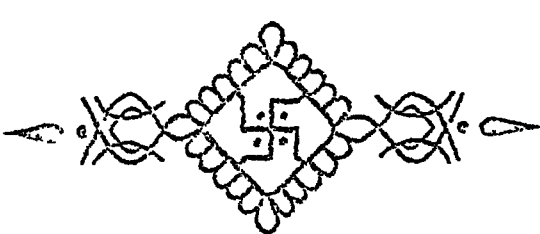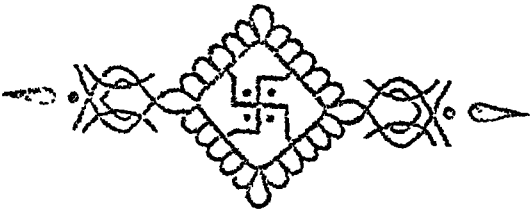
Prakrit Bharati Series Text 1

KALPASŪTRA

Eighth Chapter of the Daśāśrutaskandha of Bhadrabāhu
with Hindi and English Versions
and Coloured Reproductions of Original 16th Century Miniatures

Editor & Hindi Translator

Mahopadhyaya Vinaya Sagar

English Translation

Dr. Mukund Lath

Note on Paintings

Dr. (Smt.) Chandramani Singh
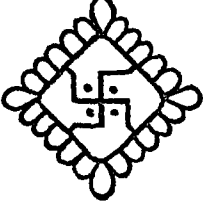
Published by

D. R. Mehta

Secretary,

PRAKRIT BHARATI,
JAIPUR, RAJASTHAN

विषय-सूची

CONTENTS

चित्र-सूची

आमुख

श्रमण भगवान् महावीर के जीवन पर विस्तारपूर्वक तथा अन्य तीर्थंकरों के जीवनवृत्त के कतिपय तथ्यों पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ 'कल्पसूत्र' की अधिकाधिक प्रतियाँ तैयार करवा कर श्रमणों और श्रावकों के आध्यात्मिक अभ्युत्थान के उद्देश्य से उन्हें सुलभ कराने की पुनीत परम्परा मध्य युग से विगत एक शताब्दी पूर्व तक अक्षुण्ण रही है। भगवान् महावीर का २५००वां निर्वाण महोत्सव मनाने हेतु लगभग दो वर्ष पूर्व राज्य-स्तर पर गठित भगवान् महावीर २५००वां निर्वाण महोत्सव समिति ने अनुभव किया कि इस पावन परम्परा को पुनः प्रवाह प्रदान करना भगवान् महावीर के प्रति समुचित श्रद्धाञ्जलि समर्पित करना होगा। इसी भावना से मूल प्राकृत के हिन्दी एवं आंग्लभाषानुवाद सहित यह कल्पसूत्र प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें लगभग ४७० वर्ष पूर्व के जैन चित्रों की रंगीन प्रतिकृतियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं। मैं आशा करता हूँ कि भगवान् महावीर के आदर्श जीवन और सिद्धान्तों के महत्व के प्रति श्रद्धा रखने वाले और जैन कला-प्रेमी महानुभाव इस प्रकाशन का स्वागत करेंगे।

महावीर जयन्ती
२ अप्रेल, १९७७

चन्दनमल बैद
वित्तमंत्री,
राजस्थान, जयपुर
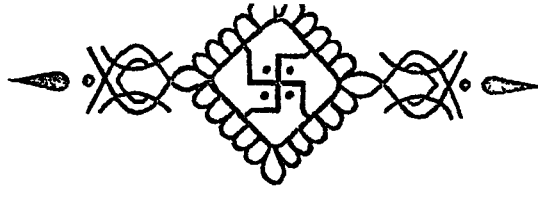
FOREWORD

Since the medieval times a continuing tradition, vigorous at least till the last century, has been to get manuscripts of the Kalpa Sutra (containing the life of Lord Mahavira and to a lesser extent of the other Tirthankaras) made and distributed for the spiritual welfare of monks and laity. The State Level Committee set up about two years ago in Rajasthan to celebrate the 2500th Nirvan year of Lord Mahavira, thought that it would be a fit tribute to him to emulate this tradition. Hence this edition of the Kalpa Sutra with the original text in Prakrit and translations in Hindi and English. The coloured reproductions of the original Jain paintings about 470 years old, have also been provided. I hope that all those who value the life and philosophy of Lord Mahavira and have interest in Jain art will welcome this work.

CHANDAN MAL BAID
Finance Minister,
Rajasthan, Jaipur.

2nd April, 1977.
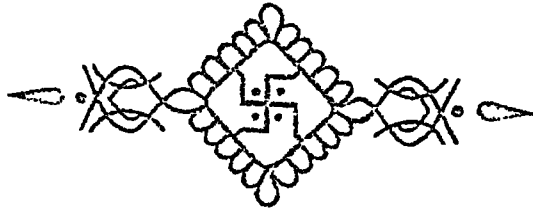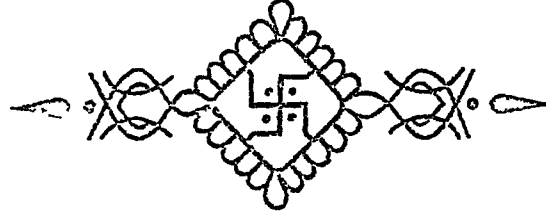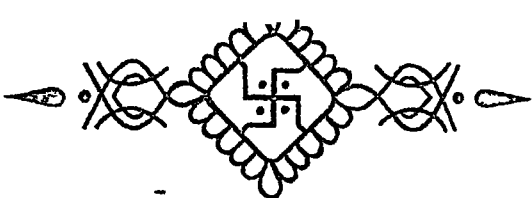
प्रकाशकीय

प्राकृत भारती की ओर से अपने प्रथम प्रकाशन, मूल प्राकृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद एवं रंगीन प्राचीन चित्रों की प्रतिकृतियों सहित कल्पसूत्र को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष है। इसमें भगवान् महावीर तथा अन्य तीर्थंकरों के जीवनवृत्त और सिद्धान्त समाहित हैं।

मैं प्राकृत भारती की ओर से प्रस्तुत 'कल्पसूत्र' के सम्पादक एवं अनुवादक—महोपाध्याय श्री विनयसागर, आंग्लभाषानुवादक डॉ० मुकुन्द लाठ और चित्र-परिचय लेखिका डॉ० चन्द्रमणिसिंह के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। मैं, जयपुर प्रिन्टर्स के श्री सोहनलाल जैन और उनके प्रेस के समस्त अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने बड़ी लगन के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ के छपाई आदि कार्य को समीचीन रूपेण सम्पन्न किया। वकील एण्ड सन्स प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई के श्री गुणवन्त मेहता ने इस प्रकाशन की प्राचीन पाण्डुलिपि के चित्रों की रंगीन प्रतिकृतियां निर्मित करने में विशेष प्रयास किया है। श्री पारस भंसाली ने इस ग्रन्थ की साज-सज्जा को नयनाभिराम एवं आकर्षक बनाने में उद्यम किया है। प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई के निदेशक, श्री सदाशिव गोरक्षकर ने इस पुस्तक में प्रस्तुत चित्रों के सम्बन्ध में अपनी मान्यता प्रदान की। मैं इन सब महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। श्री ए. एल. संचेती और श्री गजसिंह राठोड़ ने बड़े उपयोगी परामर्शों के साथ-साथ प्रूफ पढ़ने में अपना योगदान दिया है। श्री प्रकाश वापना और श्री हरिसिंह ने भी इस प्रकाशन में अपना सहयोग प्रदान किया है। मैं इन सब सज्जनों एवं इस प्रकाशन में सहयोग देने वाले अन्य सभी महानुभावों को भी धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

इस प्रकाशन में यदि कहीं किसी प्रकार की स्खलना रह गई हो तो उसका उत्तरदायित्व मुझ पर है।

देवेन्द्रराज मेहता
मंत्री
प्राकृत भारती, जयपुर
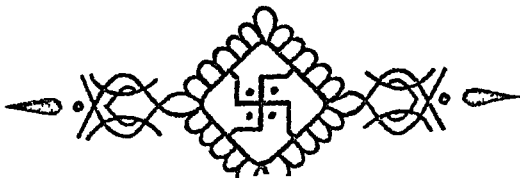
PUBLISHER'S NOTE

On behalf of Prakrit Bharati, I am happy to present this publication of Kalpasutra in original Prakrit along with English and Hindi Translations. It projects the life and ideals of Lord Mahavira and some other Tirthankaras.

On behalf of Prakrit Bharati, I am grateful to the Editor and Hindi translator Mahopadhyaya Shri Vinay Sagar, Dr. Mukund Lath, who prepared the English version and Dr. (Smt.) Chandra Mani Singh for her note on the Jaina Miniature paintings reproduced in this book. Thanks are also due to Shri Sohan Lal Jain and the staff of Jaipur Printers who took special interest in its printing. Shri Gunwant Mehta of Vakil & Sons Private Limited, Bombay, devoted time and efforts for the printing of the coloured reproductions. Shri Paras Bhansali took special pains in designing the cover and advising us regarding the get-up of this book. Shri Sadashiv Gorakshkar, Director, Prince of Wales Museum, Bombay, approved the paintings. I am obliged to all of them. Sarvashri A. L. Sancheti and Gajsingh Rathore read through the proofs and made useful suggestions. Shri Prakash Bapna and Shri Hari Singh too rendered assistance to us in the project. My thanks are due to all of them as also to others who have helped us in one or other capacity.

If there are any deficiencies in the work the responsibility is mine.

DEVENDRA RAJ MEHTA
Secretary
Prakrit Bharati, Jaipur.
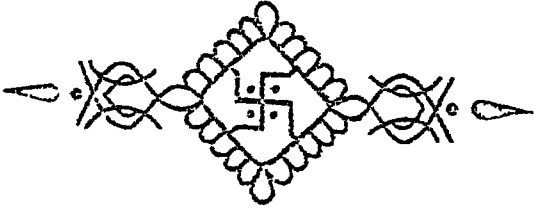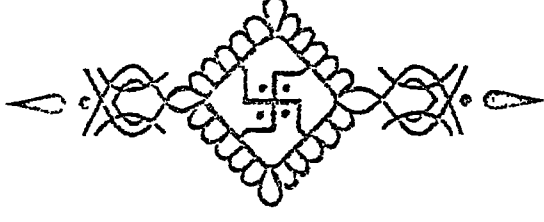
द्वितीय संस्करण के सन्दर्भ में

प्राकृत भारती अपने पाठकों के समक्ष कल्प सूत्र का दूसरा संस्करण सहर्ष प्रस्तुत कर रही है। हमें गर्व है कि इस ग्रन्थ के पहले संस्करण का विद्वज्जनों ने अच्छा समादर किया। हमने जिस रूप में कल्प सूत्र को पाठकों के सामने रखा था इसका अब दूसरा परिचय देने की, हम समझते हैं, आवश्यकता नहीं। पर हम जैन श्वेताम्बर नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ ट्रस्ट, मेवानगर एवं अन्य उदार व्यक्तियों के प्रति अपना आभार जताये बिना नहीं रह सकते। इनके दाक्षिण्य के बिना यह संस्करण संभव नहीं हो पाता। वकील एण्ड सन्स, बम्बई और ऑल इण्डिया प्रेस, पाण्डिचेरी के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापन करते हैं। जिनके कौशल के बिना पुस्तक इस रूप में आपके सामने न आ पाती।

आषाढी पूर्णिमा २०४१

(देवेन्द्रराज मेहता)
सचिव,
प्राकृत भारती, जयपुर (राज०)
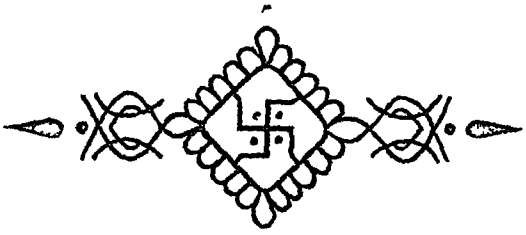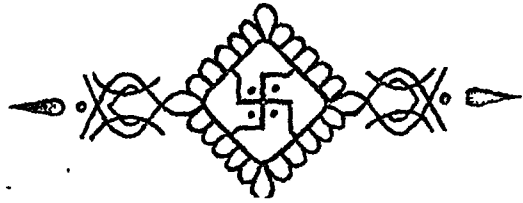
PREFACE TO THE SECOND EDITION

The Prakrit Bharati is happy to present this second edition of the *Kalpasutra* to the public, which had, to our gratification, responded well to the first edition. The publishers have nothing new to say by way of introducing the text in the form that we have presented it. We must however, express our thankfulness to the trustees of the Jain Nakoda Parshvanath Tirth Trust, Mewanagar, among others for their generous help without which the present edition would not have been possible. Our thanks are also due to Vakil & Sons, Bombay, for printing the reproductions faithfully and to All India Press, Pondicherry for an efficient job.

13th July, 1984.

DEVENDRA RAJ MEHTA,
Secretary,
Prakrit Bharati, Jaipur, Rajasthan.
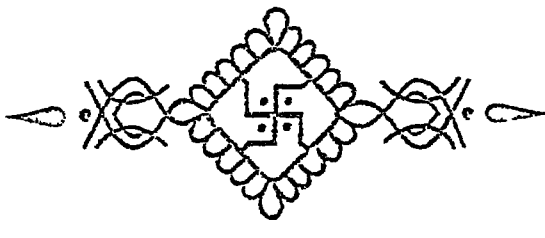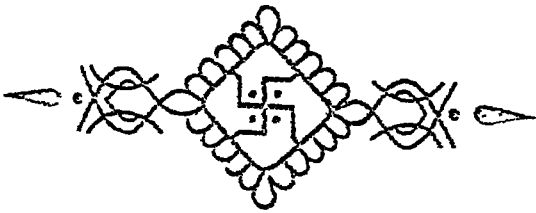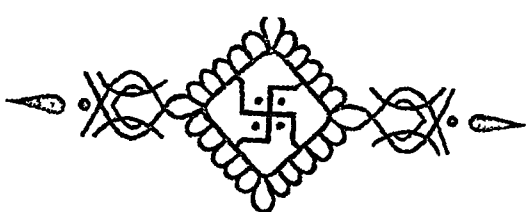
भूमिका

नाम – 'कल्पसूत्र' शब्द स्वतन्त्र रूप से सूत्र के अस्तित्व का वोध कराते हुए भी दशाश्रुतस्कन्ध नामक छेदसूत्र का 'पज्जोसवणाकप्पो' (सं० पर्युषणाकल्प) नाम का आठवां अध्ययन मात्र है।[1] 'पज्जोसवणा'-पर्युषण शब्द का अर्थ है :– १. एक स्थान में वर्षाकाल व्यतीत करना, २. भाद्रपद के आठ दिनों का एक प्रसिद्ध जैन पर्व।[2] कल्प का अर्थ है आचार, मर्यादा, व्यवहार-नीति, विधि और समाचारी। गीतार्थ प्रवर श्री उमास्वाति के मतानुसार "जो कार्य ज्ञान, शील और तप की वृद्धि करता है एवं दोषों का परिहार करता है, वह कल्प है।[3] पर्युषणकल्प का अर्थ है :– पर्युषण में करने योग्य शास्त्रविहित आचार।[4] पर्युपशमन कल्प का अर्थ है – क्षमा-प्रधान आचार। इस शब्द के अन्य भी कई रूप प्राप्त होते हैं – पज्जोसमणा (पर्युपशमना), परिवसणा (परिवसना), पज्जुसण (पर्युषण), वासवास (वर्षावास), पढम समोसरण (प्रथम समवसरण) आदि।[5] अर्थात् वर्षाकाल – चातुर्मास में आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा[6] से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त साधुजनों के करने योग्य शास्त्रविहित आचार, क्षमा-प्रधान आचार को पर्युषणा-कल्प कहते हैं। वर्तमान समय में भाद्रपद कृष्णा द्वादशी

---

[1] मुनि पुण्यविजय: कल्पसूत्र प्रास्ताविक पृ० ८–९

[2–4] पाइअ-सद्द-महण्णवो, द्वि० संस्करण, पृ० ५१३

[3] प्रशमरति प्रकरण १४३

[5] कल्पसूत्र चूर्णी, मुनि पुण्यविजय संपादित पृ० ८५

[6] वर्तमान मान्यता आषाढ़ शुक्ला १४ से कार्तिक शुक्ला १४ है।
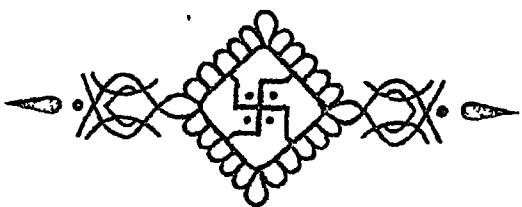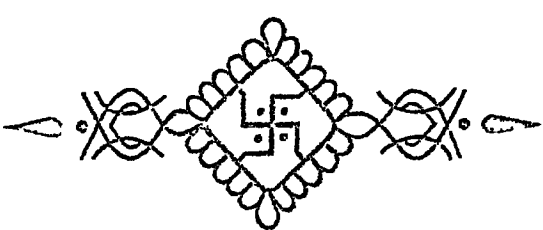
से भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी तक आठ दिवसीय पर्व को पर्युषणा पर्व कहते हैं। इन आठ दिनों में चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) सम्यक् प्रकार से इस पर्व की आराधना करता है और विधि एवं महोत्सव के साथ इस सूत्र का पारायण करता है।

शताब्दियों से इस आठवें अध्ययन का अत्यधिक प्रचार-प्रसार होने के कारण सूत्र शब्द इससे सम्बद्ध हो गया और यह अध्ययन पर्युषणा-कल्पसूत्र के नाम से कहलाते हुए क्रमशः कल्पसूत्र के नाम से सर्वाधिक प्रसिद्ध हो गया। यही कारण है कि पूर्वाचार्यों ने कल्पसूत्र नामक स्वतन्त्र छेद सूत्र को इससे पृथक् सिद्ध करने के लिये बृहत् शब्द का प्रयोग कर उसे बृहत् कल्पसूत्र नाम प्रदान किया, जो कि आज भी प्रसिद्ध है।

१२१५ श्लोक परिमाण का ग्रन्थ होने से यह 'बारह सौ सूत्र' अथवा 'साढ़े बारह सौ सूत्र' के नाम से भी रूढ़ है, प्रसिद्ध है।

स्वरूप – यह सूत्र गद्यात्मक है। सूत्रांक संख्या २९१ है तथा अनुष्टुप् श्लोक परिमाण से पद्यसंख्या (ग्रन्थाग्रन्थ) १२१५ या १६ मानी गई है। इसमें तीन अधिकार (वाचनायें) हैं :– १. जिन चरित्र, २. स्थविरावली और ३. साधु समाचारी। तीनों अधिकारों की क्रमशः २००,२३,६८ सूत्रांक संख्या है। इन तीनों वाचनाओं का संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है :–

१. **जिन चरित्र** :– इसमें पश्चानुपूर्वी से श्रमण भगवान् महावीर, पुरुषादानीय पार्श्वनाथ, अर्हत् अरिष्टनेमि (नेमिनाथ), २० तीर्थंकरों का अन्तरकाल (मध्यकाल) और कौशलिक अर्हत् ऋषभदेव के जीवन की प्रमुख घटनाओं का आलेखन है। सामान्यतया चारों तीर्थंकरों के पांचों कल्याणकों (च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण) का और उनके परिवार का तथा अन्तकृद्भूमि का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। केवल महावीर के चरित्र में इसके अतिरिक्त निम्नांकित विषयों का विशदतम वर्णन प्राप्त है – इन्द्र, गर्भापहार, चौदह स्वप्न, अट्टणशाला, स्वप्नफल कथन, जन्मोत्सव, दीक्षोत्सव, चातुर्मास और निर्वाण। पार्श्व, नेमि, ऋषभदेव के सम्बन्ध में गर्भापहार की घटना को छोड़कर शेष वर्णनों के लिये सूत्रकार ने "महावीर चरित्र के समान ही
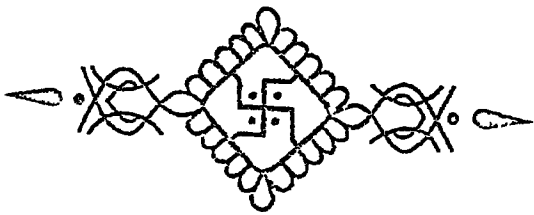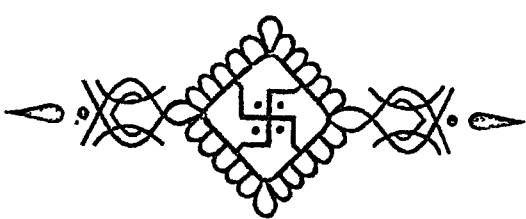
समझना चाहिए," कहा है। ऋषभदेव के प्रसंग में पुरुषों की ७२कलाओं, महिलाओं के ६४ गुण, और शिल्पशत का विशिष्ट उल्लेख है।

२. **स्थविरावली** :– प्रारम्भ में महावीर के ६ गण और ११ गणधरों के सम्बन्ध में ऊहापोह करते हुए, महावीर की परम्परा आर्य सुधर्म से स्वीकार की गई है। आर्य सुधर्म, जम्बू, प्रभव, शय्यम्भव, यशोभद्र का उल्लेख कर, संक्षिप्त वाचना द्वारा यशोभद्र से लेकर आर्य वज्र के शिष्यों तक का उल्लेख किया है। पश्चात् विस्तृत वाचना द्वारा आर्य यशोभद्र से लेकर आर्य फल्गुमित्र तक का वर्णन किया गया है। इस वर्णन में प्रमुख-प्रमुख पट्टधरों, शिष्यों, उनसे निःसृत कुल, गण और शाखाओं का उल्लेख किया गया है। अन्त की गाथाओं में आर्य फल्गुमित्र से लेकर देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक को वन्दना की गई है।

३. **समाचारी** :– वर्षावास–चातुर्मास में रहे हुए क्षमाप्रधान साधु और साध्वियों को किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए, किस प्रकार का आचार-व्यवहार, मर्यादा-पालन करना चाहिए, कैसे स्थान पर रहना चाहिए, किस प्रकार का भोजन ग्राह्य है, कहां तक भ्रमण कर सकता है आदि विविध आचारों-नियमों का उत्सर्ग एवं अपवाद के साथ २८ समाचारियों में वर्णन किया गया है।

४. **प्रमाण** :– निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु विरचित कल्पसूत्र निर्युक्ति गाथा ६२ "पुरिमचरिमाण कप्पो, मंगलं वद्धमाण-तित्थंमि। इह परिकहिया जिणगणहराई थेरावलि चरित्तं।" से स्पष्ट है कि प्रारम्भ के दोनों अधिकार जिन-चरित्र और स्थविरावली पर्युषण-कल्प नामक आठवें अध्ययन के ही अंश हैं, प्रक्षिप्तांश नहीं।

इन्द्र, गर्भापहार, अट्टणशाला, जन्म प्रीतिदान, दीक्षा आदि विषयक सूत्र एवं वर्णक चूर्णिकार द्वारा चूर्णि में स्वीकृत होने से प्रक्षिप्तांश नहीं हैं।

चौदह स्वप्न सम्बन्धी वर्णक मौलिक हैं या प्रक्षिप्त, यह अवश्य ही शंकास्पद होने से विचारणीय है।[1]

[1] मुनि पुण्यविजयः कल्पसूत्र, प्रास्ताविक पृ० ६–१०
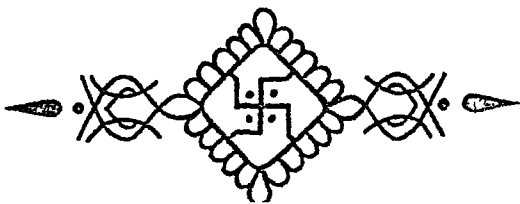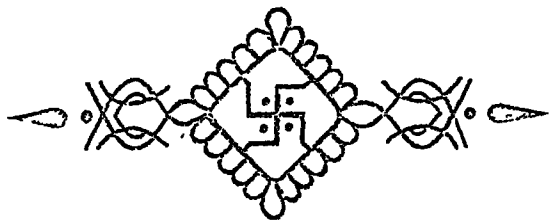
स्थविरावली वर्तमान में जिस रूप में प्राप्त है, वह निश्चित रूप से आगमों को पुस्तकारूढ़ करते समय प्राचीन स्थविरों द्वारा परिवर्द्धित है । इस दृष्टि से इस सूत्र के प्रमाण में कमी-वेशी मानी जा सकती है ।

चरम श्रुतकेवली भद्रबाहु –

दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र की निर्युक्ति करते हुए प्रारम्भ में आचार्य भद्रबाहु ने लिखा है – "दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प (बृहत्कल्प) और व्यवहार-सूत्र के प्रणेता, अन्तिम श्रुतकेवली, प्राचीन गोत्रीय भद्रबाहु को मैं नमस्कार करता हूँ ।"

वंदामि भद्दबाहुं पाइणं चरिम-सयल-सुयनाणिं ।
सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे ।

निर्युक्ति के इस पद्य में आगत 'चरिमसयलसुयनाणिं' शब्द से स्पष्ट है कि चरम श्रुतकेवली भद्रबाहु भगवान् महावीर के शासन के सातवें पट्टधर और यशोभद्र के शिष्य थे और इन्होंने दशाश्रुतस्कन्ध छेदसूत्र की रचना की, जिसका कि यह कल्पसूत्र आठवां अध्ययन है ।

आवश्यक चूर्णि, आवश्यक सूत्र हारिभद्रीया-बृहद्वृत्ति, तित्थोगालियपयन्ना, परिशिष्ट-पर्व आदि ग्रन्थों में भद्रबाहु के जीवन-प्रसंग में जो कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं, उनका सारांश इस प्रकार है :–

वीर नि० सं० ९४ में प्रतिष्ठान पुर के प्राचीन गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ । ४५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने वीर नि० सं० १३९ में आर्य यशोभद्र के पास दीक्षा ग्रहण की । गुरु की सेवा में रहते हुए इन्होंने द्वादशांगी का अध्ययन किया और अन्तिम श्रुतकेवली वने । वीर नि० सं० १४८ में आर्य सम्भूतिविजय के साथ ही इन्हें आचार्य पद प्राप्त हुआ । सम्भूतिविजय के स्वर्गारोहण के पश्चात् वीर नि० सं० १५६ में आप पट्टधर संघनायक वने । इनके समय में वारह वर्षी दुष्काल पड़ा । लगभग १२ वर्ष तक नेपाल प्रदेश में रहते हुए इन्होंने योगारूढ़ होकर महाप्राण नामक ध्यान की साधना की । इनके समय में, किन्तु इनकी अनुपस्थिति में पाटलीपुत्र नगर में आगम वाचना हुई । इन्होंने आर्य स्थूलिभद्र को १० पूर्वों की अर्थ सहित और शेष ४ पूर्वों की
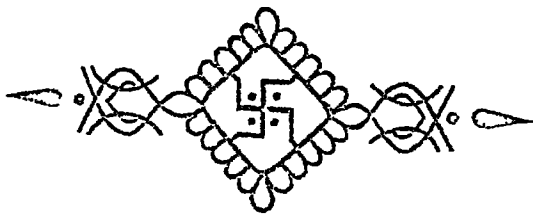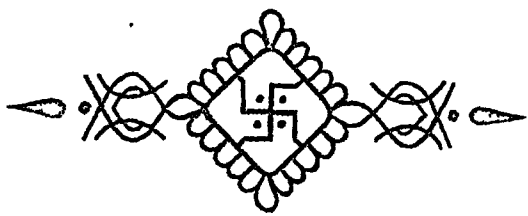
केवल मूल वाचना प्रदान की। इन्होंने दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र, वृहत्कल्पसूत्र, व्यवहार सूत्र और निशीथ सूत्र–इन ४ छेद सूत्रों की रचना की। वीर नि० सं० १७० में इनका स्वर्गवास हुआ।[1]

परम्परा के अनुसार आचारांग, सूत्रकृत्, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प, व्यवहार, सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋषिभाषित इन दश ग्रन्थों पर निर्युक्ति की रचना करने वाले निर्युक्तिकार भी यही भद्रबाहु थे। प्रवादों के अनुसार उपसर्गहर स्तोत्र के प्रणेता भी यही थे, प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वराहमिहिर के भ्राता भी यही थे तथा चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्नों का अर्थ भी इन्होंने किया था इत्यादि अनेकों किम्वदन्तियाँ इनके सम्बन्ध में प्राप्त होती हैं। जैन शासन में भद्रबाहु नाम के कई आचार्य हुए हैं। नामसाम्य की भ्रान्ति के कारण समग्र घटनाएं प्रथम भद्रबाहु नाम के साथ सम्बद्ध कर दी गई हों, ऐसा स्पष्टतया प्रतीत होता है।

चरम श्रुतकेवली भद्रबाहु उपरोक्त १० ग्रन्थों के निर्युक्तिकार नहीं हैं किन्तु अन्य भद्रबाहु नाम के आचार्य हैं। इस सम्बन्ध में आगम प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी ने वृहत्कल्पभाष्य की प्रस्तावना में, आचार्य श्री हस्तीमलजी ने जैन धर्म का मौलिक इतिहास नामक पुस्तक के द्वितीय भाग में, श्री दलसुख मालवणिया ने मुनि पुण्यविजयजी के मत को आधार मानते हुए, अगस्त्यसिंह कृत चूर्णि सहित दशकालिक की प्रस्तावना में विशदता के साथ विचार करते हुए स्पष्टतया प्रतिपादित किया है कि निर्युक्ति की रचना करने वाले आचार्य भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवली न होकर प्रसिद्ध दैवज्ञ वराहमिहिर के भ्राता हैं और निर्युक्तियों का रचना-काल ईस्वी छठी शताब्दि का प्रारम्भ है।

महत्ता :– टीकाकारों की मान्यतानुसार वर्षाकल्प प्रारम्भ से ५०वें दिन (सम्वत्सरी) की रात्रि में, जहाँ-जहाँ भी साधुगण रहते थे, वहाँ-वहाँ पर वे इस सूत्र का वाचन करते थे अथवा एक साधु वाचन करता था और अन्य साधु एकाग्रचित से श्रवण करते थे। चतुर्विध संघ के समक्ष पारायण की पद्धति नहीं थी। किन्तु कहते हैं

[1] आचार्य हस्तिमल्ल : जैन धर्म का मौलिक इतिहास, द्वितीय भाग
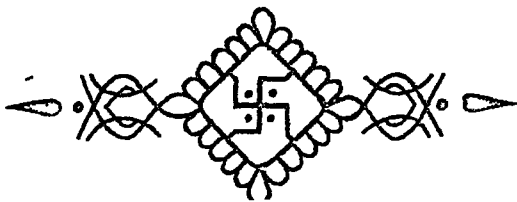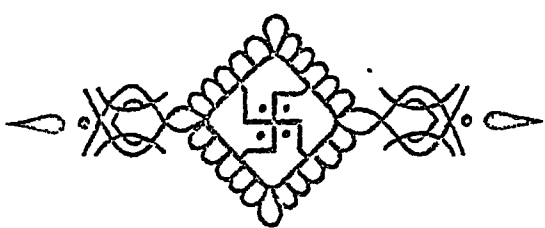
कि वीर नि० सं० ९८० में शास्त्रलेखन के पश्चात् वीर नि० सं० ९९३ में[1] किसी गीतार्थ आचार्य [2] ने आनन्दपुर (वड़नगर) के मूल चैत्यगृह [3] में राजा ध्रुवसेन[4] और समस्त संघ के सन्मुख लोक-कल्याण की भावना से सूत्र का सर्वप्रथम वाचन किया था। उस समय से लेकर आज तक पर्युषण पर्व के दिनों में संघ के सन्मुख कल्पसूत्र का वाचन होता आ रहा है और सम्वत्सरी के दिन मूल पाठ का वाचन अनिवार्य रूप से होता आ रहा है।

श्वेताम्बर परम्परा के समग्र गच्छों द्वारा समान रूप से समाहत होने के कारण इस मंगलमय कल्पसूत्र के पठन-पाठन का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार हुआ। प्रत्येक ग्राम और नगर स्थित चतुर्विध संघ के सन्मुख महा-मांगलिक सर्वोत्कृष्ट पर्युषण पर्व के समाराधन का प्रमुख स्रोत कल्पसूत्र होने से इस सूत्र का महत्त्व सर्वोपरि हो गया। प्रत्येक वाचक के पास इसकी एक प्रति का रहना आवश्यक हो गया। फलतः प्रचुर परिमाण में इसकी प्रतिलिपियां होने लगीं। १२वीं शती से २०वीं शती के मध्य में लिखित सहस्राधिक प्रतियां आज भी अनेकों भण्डारों में उपलब्ध हैं। इनमें से सैकड़ों प्रतियाँ तो सचित्र प्राप्त होती हैं। इनमें से कई प्रतियों में ७ से १२५ तक कलापूर्ण चित्र प्राप्त होते हैं। इनमें से कई प्रतियें कलापूर्ण बोर्डर युक्त हैं, तो कई स्वर्णाक्षरों में लिखित हैं, तो कई रजताक्षरों में लिखित हैं, तो कई स्वर्ण-रजत संयुक्त हैं, तो कई लाल-काली स्याही में लिखित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वाधिक और कलापूर्ण प्रतियाँ जितनी इस सूत्र की प्राप्त हैं, उतनी किसी भी आगम ग्रन्थ की प्राप्त नहीं हैं। प्रचार-प्रसार की दृष्टि से इसकी महत्ता आज भी सर्वोपरि है।

व्याख्यायें :— कल्पसूत्र प्राकृत भाषा में निबद्ध है। प्रत्येक अध्येता इसके सूत्रार्थ को समझ सके, रहस्य को हृदयंगम कर सके, सूत्रानुरूप आचरण कर सके, इस मंगलमय सर्वजनहिताय उदार दृष्टि को ध्यान में रखकर,

---

[1] आचार्य हस्तिमल्ल; जैन धर्म का मौलिक इतिहास, द्वितीय भाग पृ० ६६२

[2] वही; पृ० ६६२ के अनुसार आचार्य कालक (चतुर्थ) ने इस सूत्र का संघ के सन्मुख सर्वप्रथम वाचन किया था।

[3] पृथ्वीचन्दसूरि: कल्पसूत्र टिप्पणक, सूत्र २९१वें की व्याख्या।

[4] कल्पसूत्र टीकाएँ।
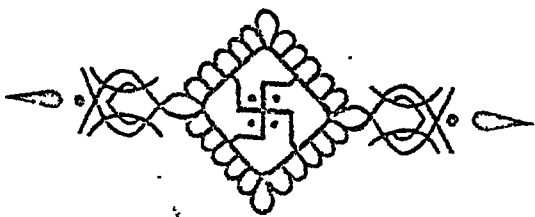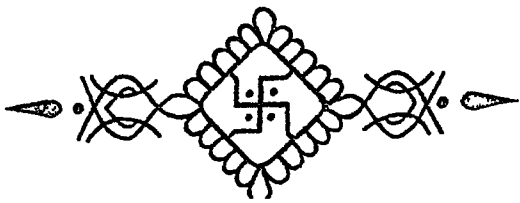
अनेक समर्थ विद्वानों ने समय-समय पर इस सूत्र पर प्राकृत भाषा में निर्युक्ति तथा चूर्णि, संस्कृत भाषा में टीकायें लिखीं। बदलते हुए समय को ध्यान में रखकर प्राचीन राजस्थानी, गुजराती में बालावबोध एवं स्तवक लिखे गये। २०वीं शताब्दी में हिन्दी, गुजराती, बंगला और अंग्रेजी भाषा में अनेक अनुवाद हुए। इस सूत्र पर जितना विशाल साहित्य लिखा गया है, उतना विपुल साहित्य किसी भी आगम ग्रन्थ पर प्राप्त नहीं होता है। प्राप्त साधन स्रोतों के आधार से कल्पसूत्र पर प्राप्त व्याख्यादि ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है :

व्याख्या नाम	कर्त्ता	रचनाकाल
निर्युक्ति	आचार्य भद्रबाहु	६ठी शती
निर्युक्ति वृत्ति		११६४
कल्पनिर्युक्ति वृत्ति[1]	जिनप्रभसूरि (जिनसिंहसूरि के शिष्य)	१४वीं शती
निर्युक्ति अवचूरि	माणिक्यशेखरसूरि	
दुर्गपद निरुक्त	विनयचन्द्र (रत्नसिंह के शिष्य)	१३२५
निरुक्त निरुक्ति[2]		
चूर्णि		
चूर्णि	नन्नसूरि[3]	
टीकाएँ		
टिप्पणक	पृथ्वीचन्द्रसूरि (देवसेनगणि के शिष्य)	११वीं शती
संदेहविषौषधि टीका	जिनप्रभसूरि (जिनसिंहसूरि के शिष्य)	१३६४

[1] केटलॉग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, जैसलमेर कलेक्शन, क्रमांक ४४ (२)

[2] जिनरत्न कोष, पृ० ७८ (३६)

[3] नन्नसूरि कृत चूर्णि कल्पसूत्र पर है या बृहत्कल्पसूत्र पर, यह सन्देहास्पद है।
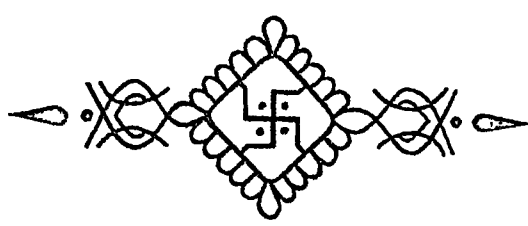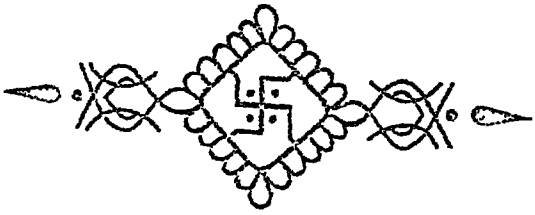
व्याख्या नाम	कर्त्ता	रचनाकाल
वृत्ति	मेरुतुंगसूरि	
किरणावली	धर्मसागरोपाध्याय (विजयदानसूरि के शिष्य)	१७वीं शती
कल्पलता	शुभविजय (हीरविजयसूरि के शिष्य)	१६७१
प्रदीपिका	संघविजय गणि (विजयसेनसूरि के शिष्य)	१६७४
दीपिका	जयविजय गणि (विमलहर्ष के शिष्य)	१६७७
मञ्जरी	सहजकीर्ति गणि (हेमनन्दन के शिष्य)	१६८५
सुबोधिका	विनयविजय (कीर्तिविजय के शिष्य)	१६९६
दीपिका सुखबोधिनी	अजितदेवसूरि, पल्लीवालगच्छ	१६९८
कल्पलता	समयसुन्दरोपाध्याय (सकलचन्द्र के शिष्य)	१६९९
सुखावबोध विवरण	जयसागरसूरि अंचलगच्छ	
कल्पलता	गुणविजयगणि (कमलविजय के शिष्य)	१७वीं शती
कल्पोद्योत	नयविजय	
टीका	राजसोम (जयकीर्ति के शिष्य)	१७०६
कौमुदी	शान्तिसागर (श्रुतसागर के शिष्य)	१७०७
दानदीपिका	दानविजय गणि (विजयराजसूरि के शिष्य)	१७५०
कल्पसुबोधिका	कीर्तिसुन्दर (धर्मवर्धन के शिष्य)	१७६१
कल्पबोधिनी	न्यायसागर (उत्तमसागर के शिष्य)	१७८८
कल्पद्रुमकलिका	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय (लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य)	१८वीं शती
दीपिका	भावविजय	

व्याख्या नाम	कर्त्ता	रचनाकाल
टीका (तृतीय वाचना)	धीशेन्द्रसिंह	१८१२ (खैरवा)
कल्पचन्द्रिका	सुमतिहंस (जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय के शिष्य)	१८वीं शती
दीपिका	वृद्धिविजय	
सूत्रार्थ-प्रवोधिनी	विजयराजेन्द्रसूरि	१९५४
टीका	केशरमुनि	२०वीं शती
टीका	लब्धिमुनि उपाध्याय	२०वीं ,,
टीका सुखबोधिका	मुक्तिविमल गणि	२०वीं ,,
संक्षेप व्याख्या[1]		
लघुवृत्ति[2]		
कल्पसूत्र समाचारी टीका	विमलकीर्ति (विमलतिलक के शिष्य)	१७वीं ,,
टीका और अवचूरि[3]		
अवचूरि संज्ञक रचनायें		
कल्पसूत्र अवचूरि	जिनसागरसूरि	१४४३
कल्पसूत्र अवचूरि	अमरकीर्ति	१६४४
कल्पसूत्र अवचूरि	उदयसागर (धर्मशेखर अंचलगच्छ के शिष्य)	
कल्पसूत्र अवचूरि	महीमेरु उपाध्याय	

---

[1] जिनरत्नकोष, पृष्ठ ७८ (३८)
[2] वही, पृष्ठ ७८ (३५)
[3] वही, पृष्ठ ७८ (४०)
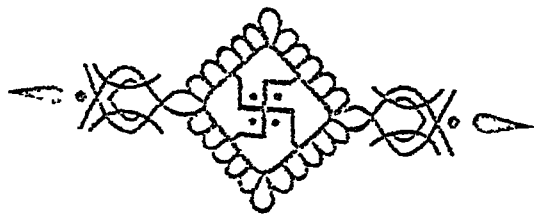
व्याख्या नाम	कर्त्ता	रचनाकाल
अन्तर्वाच्य संज्ञक रचनाय		
कल्पान्तर्वाच्य	कुलमण्डनसूरि	
कल्पान्तर्वाच्य	गुणरत्नसूरि (देवसुन्दरसूरि के शिष्य)	१४५७
कल्पान्तर्वाच्य	सोमसुन्दरसूरि	
कल्पान्तर्वाच्य	रत्नशेखर	
कल्पान्तर्वाच्य	जयसुन्दरसूरि	
कल्पान्तर्वाच्य	भक्तिलाभोपाध्याय (रत्नचन्द्र के शिष्य)	१६वीं शती
कल्पान्तर्वाच्य	जिनहंससूरि (जिनसमुद्रसूरि के शिष्य)	१६वीं ,,
कल्पान्तर्वाच्य	जिनसमुद्रसूरि बेगड	१८वीं ,,
अन्तर्वाचनिकाम्नाय	जिनसागरसूरि (?)	
बालावबोध संज्ञक भाषा-टीकायें		
कल्पसूत्र बालावबोध	साधुकीर्ति उपाध्याय (अमरमाणिक्य के शिष्य)	१७वीं शती
कल्पसूत्र बालावबोध	समयराजोपाध्याय (जिनचन्द्रसूरि के शिष्य)	१७वीं ,,
कल्पसूत्र बालावबोध	गुणविनयोपाध्याय (जयसोम के शिष्य)	१७वीं ,,
कल्पसूत्र बालावबोध	शिवनिधानोपाध्याय	१६८०
कल्पसूत्र बालावबोध	कमललाभोपाध्याय (अभयसुन्दर के शिष्य)	१७वीं शती
कल्पसूत्र बालावबोध	क्षमाविजय	१७०७
कल्पसूत्र बालावबोध	बुधविजय (शान्तिविजय के शिष्य)	१७०७
कल्पसूत्र बालावबोध	मेरुविजय	
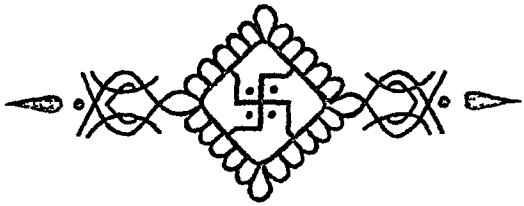
व्याख्या नाम	कर्त्ता	रचनाकाल
कल्पसूत्र बालावबोध	लावण्यविजय (भानुविजय के शिष्य)	१७२४
कल्पसूत्र बालावबोध	सुखसागर	१७३३
कल्पसूत्र बालावबोध	जिनसमुद्रसूरि बेगड	१८वीं शती
कल्पसूत्र बालावबोध	सुमतिहंस (जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय के शिष्य)	१८वीं ,,
कल्पसूत्र बालावबोध	रत्नजय-रत्नराज	१८वीं ,,
कल्पसूत्र बालावबोध	रामविजयोपाध्याय (रूपचन्द्र) (दयासिंह के शिष्य)	१८१६
कल्पसूत्र बालावबोध	राजकीर्ति (रत्नलाभ के शिष्य)	१६वीं शती
कल्पसूत्र बालावबोध	चन्द्र (देवधीर के शिष्य)	१६०८
कल्पसूत्र बालावबोध	महोपाध्याय रामऋद्धिसार	२०वीं शती
मांगलिकमाला भापाटीका[1]		१७६३
स्तबक संज्ञक भाषा टीकायें		
कल्पसूत्र स्तबक	सोमविमलसूरि (हेमविमलसूरि के शिष्य)	१६२५
कल्पसूत्र स्तबक	पार्श्वचन्द्रसूरि	१६वीं शती
कल्पसूत्र स्तबक	रामचन्द्रसूरि मडाहडगच्छ	
कल्पसूत्र स्तबक	कमलकीर्ति (कल्याणलाभ के शिष्य)	१७०१
कल्पसूत्र स्तबक	विद्याविलास (कमलहर्ष के शिष्य)	१७२६
हिन्दी पद्यानुवाद		
कल्पसूत्र हिन्दी पद्यानुवाद	रायचन्द्र	१८३८ बनारस

[1] जिनरत्न कोप पृ० ७६ (५७)

व्याख्या नाम	कर्त्ता	रचनाकाल
हिन्दी अनुवाद		
कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद	जिनकृपाचन्द्रसूरि	२०वीं शती
कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद	जिनमणिसागरसूरि	२०वीं ,,
कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद	वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि	२०वीं ,,
कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद	प्यारचन्द उपाध्याय (स्थानकवासी)	२०वीं ,,
कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद	देवेन्द्रमुनि (स्थानकवासी)	२१वीं ,,
कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद	माणकमुनि	२०वीं ,,
गुजराती अनुवाद		
कल्पसूत्र गुजराती अनुवाद	पं० बेचरदास जीवराज दोसी	२१वीं ,,
कल्पसूत्र गुजराती अनुवाद	बुद्धिमुनि	२१वीं ,,
कल्पसूत्र गुजराती अनुवाद	भद्रंकरविजय	२१वीं ,,
कल्पसूत्र गुजराती अनुवाद	देवेन्द्रमुनि	२१वीं ,,
बंगला अनुवाद		
कल्पसूत्र बंगला अनुवाद	वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय	२१वीं ,,
अंग्रेजी अनुवाद		
कल्पसूत्र आंग्ल अनुवाद	डॉ० हर्मन याकोबी	

अज्ञातकर्तृक बालावबोध एवं स्तवक संज्ञक रचना की अनेकों प्रतियां प्राप्त होती हैं किन्तु कर्त्ता का नामोल्लेख न होने से यहां उल्लेख नहीं किया जा सका है। गुजराती और अंग्रेजी भाषा में इसके अनेकों अनुवाद प्रकाशित हुए हैं किन्तु सामग्री के अभाव में यहां उन सब का उल्लेख करना संभव नहीं हो सका है।
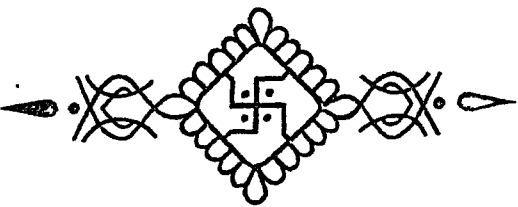
प्रति-परिचय – प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन में मैंने मुख्यतया एक हस्तलिखित प्रति और दो मुद्रित पुस्तकों का उपयोग किया है। तीनों का परिचय इस प्रकार है :–

१. **हस्तलिखित प्रति** :– राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर संग्रह की है। क्रमांक ५३५४ है। पत्र संख्या १३६ है। माप २८.५×११.३ सेन्टीमीटर है। मूल पाठ की पंक्ति ७ और अक्षर २६ हैं। अवचूरि सहित है। पत्र के चारों ओर संस्कृत भाषा में अवचूरि लिखी हुई है। पत्र के एक तरफ मध्य में आकृति दे रखी है और पत्र में दूसरी तरफ तीन डिजाइनें दे रखी हैं, जो आसमानी और लाल स्याही से तथा आकृति का मध्य स्वर्ण स्याही से अंकित है। बोर्डर में दो-दो लाल स्याही की लकीरों के मध्य में स्वर्ण स्याही की लाइन दी है। इस प्रति में पश्चिमी भारत की जैन चित्र शैली, मुख्यतः राजस्थानी जैन चित्रकला के कुल ३६ चित्र हैं, जो कि स्वर्ण प्रधान पांच रंगों में हैं। चित्र निम्नांकित पत्रों पर अंकित हैं :–

पत्र १ब, २अ, ५अ, ७ब, ११अ, १८अ, २१ब, २२अ, ३७ब, ४२ब, ४३अ, ४६ब, ५२अ, ५२ब, ६०ब, ६२ब, ६३ब, ६७ब, ६६ब, ७०ब, ७६ब, ७७अ, ७६ब, ८३ब, ८४अ, ८५ब, ८८ब, ८६अ, ६३ब, ६४ब, ६५ब, १००ब, १०६अ १०६ब, १३३ब और १३४अ।

लेखन सम्वत् वि० सं० १५६३ है। प्रति के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार दी है :–

स्वस्तिप्रद-श्रीविधिपक्षमुख्या – धीशाः समस्तागमतत्त्वदक्षाः।
श्रीभावतः सागरसूरिराजा, जयन्ति सन्तोषितसत्समाजाः ।।१।।

श्रीरत्नमालं किल पुष्पमालं, श्रीमालमाहुश्च ततो विशालम्।
जीयाद् युगे नाम पृथग् दधानं, श्रीभिन्नमालं नगरं प्रधानम् ।।२।।

ओएसवंशे सुखसन्निवासे, आभाभिधः साधुसमा(मो)बभासे।
भाति स्म तज्जो भुवि सादराज – स्तदङ्गजः श्री घुडसी रराज ।।३।।
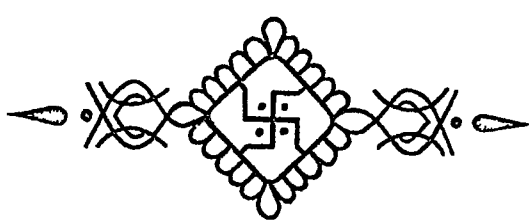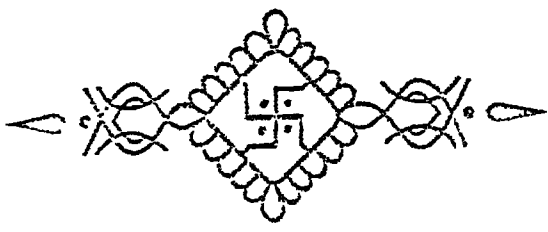
तस्यास्ति वाछूर्दयिता प्रशस्या, कोऽलं गुणान् वर्णयितुं न यस्याः ।
याऽजीजनत् पुत्रगणं प्रधानं, लोलाभिधानं सुरगोसमानम् ।।४।।

जागाह्वयी तस्य गुणौघखानी, चन्द्राउलिश्चाऽन्यतमाऽथ जानी ।
विश्वम्भरायां विलसच्चरित्राः, सुता अमी पञ्च तयोः पवित्राः ।।५।।

वज्राङ्ग - दूदाभिध - हेमराज - यचाम्पाभिधानोऽप्यथ नेमराजः ।
सुता च भांभूरपरा च साम्पू, तथा तृतीया प्रतिभाति पातू ।।६।।

इत्यादिनिःशेषपरिच्छदेन, परिवृतेन प्रणतोत्तमेन ।
शुद्धक्रियापालनपेशलेन, श्रीलोलसुश्रावकनायकेन ।।७।।

सुवर्णदण्डप्रविराजमाना, विचित्ररूपावलिभिःसमाना ।
श्रीकल्पसूत्रस्य च पुस्तिकेयं, कृशानुषट्पञ्चधरामितेऽब्दे (१५६३) ।।८।।

संलेखिता श्रीयुतवाचकेन्द्र - श्रीभानुमेर्वाह्वयसंयतानाम् ।
विवेकतः शेखरनामधेय - सद्वाचकानामुपकारिता च ।।९।।

न जातु जाड्यादिधरा भवन्ति, न ते जना दुर्गतिमाप्नुवन्ति ।
वैराग्यरङ्गं प्रथयत्यमोघं, ये लेखयन्तीह जिनागमौघम् ।।१०।।

श्रीजिनशासनं जीयाद् जीयाच्च श्रीजिनागमः ।
तल्लेखकश्च जीयासु - र्जीयासुर्भुवि वाचकाः ।।११।।

इति प्रशस्ति (:) ।

।।छ।। ।।श्रीः।। ।।छ।। ।।श्रीः।। ।।छ।।
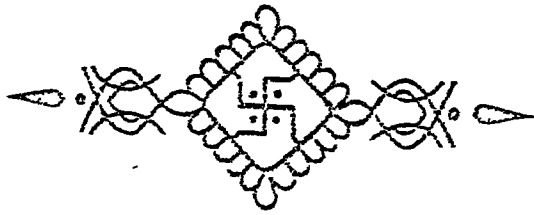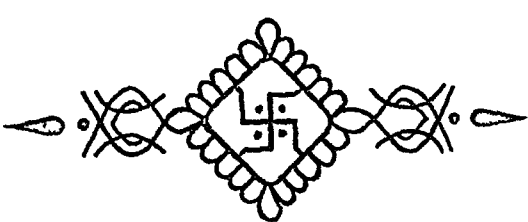
अर्थात् पूर्व समय में जो रत्नमाल, पुष्पमाल और श्रीमाल नगर के भिन्न-भिन्न नाम से विख्यात था और जो आज भिन्नमाल के नाम से प्रसिद्ध है, उस नगरी में ओसवाल वंश के आभा नामक श्रावक रहते थे। आभा का पुत्र सादराज था और सादराज का पुत्र घुडसी था। घुडसी की धर्मपत्नी का नाम वाछू था। घुडसी के पुत्र का नाम लोला था। लोला की दो पत्नियां थीं – चन्दाउलि और जानी। लोला श्रावक के वज्रांग, दूदा, हेमराज, चम्पा और नेमराज नाम के पांच पुत्र थे तथा झांझू, सांपू और पातू नामक तीन पुत्रियां थीं।

विधिपक्ष (अंचलगच्छ) के गणनायक श्री भावसागरसूरि[1] के धर्मसाम्राज्य में वाचकेन्द्र (उपाध्याय) श्री भानुमेरु के उपदेश से तथा वाचक विवेकशेखर के उपयोग के लिये इस लोला श्रावक ने समस्त परिवार के साथ वि० सं० १५६३ में चित्रसंयुक्त कल्पसूत्र की इस पुस्तक को लिखवाया।

इस प्रशस्ति के पश्चात् भिन्नाक्षरों में २०वीं शती के अन्तिम चरण में लिखित एक पुष्पिका और लिखी हुई है :-

"श्रीराणपुरनगर-वास्तव्य सुश्रावक-श्राद्धगुणसम्पन्न-सेठ-श्रीपुरुपोत्तमात्मज-वाडीलालाख्यनामधेयेन कल्प-सूत्राख्यमिदं पुस्तकं स्वश्रेयसे श्रीमद्पन्न्यासपदविभूपितानां पूज्यपादानां देवविजयाख्यानां पठनार्थं सर्मपितम्। वि० सं० १९८२ पौपकृष्णा १।"

अर्थात् – वि० सं० १९८२ पौष कृष्णा प्रतिपदा को राणपुरनगर निवासी सेठ पुरुषोत्तम के पुत्र वाडीलाल ने यह कल्पसूत्र की पुस्तक पन्नयास देवविजयजी को पठनार्थ सर्मपित की।

---

[1] इन्हीं भावसागरसूरि के उपदेश से श्रीवंशीय श्रेष्ठि संग्रामसिंह के वंशज श्रेष्ठि हंसराज द्वारा वि० सं० १५६० में लिखापित आचारांग निर्युक्ति की प्रति मेरे संग्रह में है।
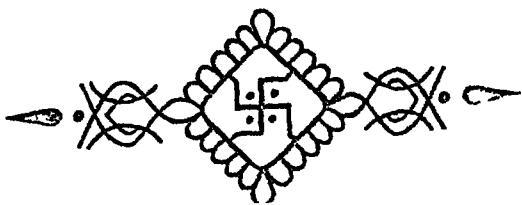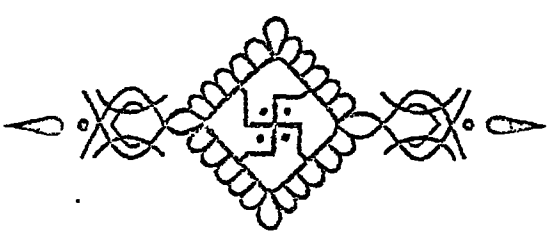
इस प्रति के अक्षर बड़े, सुन्दर और मोड़युक्त हैं। प्रतिलिपिकार ने पड़ी मात्रा का भी प्रयोग किया है। प्रति का लेखन शुद्धतम है और किसी प्राचीनतम संस्करण की प्रति से प्रतिलिपि की गई है, क्योंकि स्थविरावली में आर्य फल्गुमित्र के पश्चात् ६ गाथायें मात्र प्राप्त हैं। अर्वाचीन प्रतियों में फल्गुमित्र के पश्चात् जो गद्य पाठ और अधिक गाथाएँ हैं, वे इसमें प्राप्त नहीं हैं। मुनि पुण्यविजयजी ने प्राचीन प्रतियों के आधार से जो मूलपाठ स्वीकृत किया है, वही इस प्रति में प्राप्त है, इतना सा अन्तर अवश्य है कि गाथा ८ के स्थान पर ६ है। निम्नगाथा अधिक है :

थेरं च अज्जवुड्ढं, गोयमगुत्तं नमंसामि ।।४।।

तं वंदिऊण सिरसा थिरचित्तचरित्तनाणसम्पन्नं ।

सूत्रांक दो में देवलोक के नाम वर्णन प्रसंग में "महाविजय-पुप्फुत्तर-पवरपुंडरीयाओ महाविमाणाओ" के स्थान पर "महाविजयपुप्फुत्तरपवरपुंडरीयाओ दिसासोवत्थियाओ वद्धमाणगाओ महाविमाणाओ" पाठ प्राप्त है। अद्यावधि मुद्रित संस्करणों में तथा पचासों हस्तप्रतियों में 'दिसासोवत्थियाओ वद्धमाणगाओ' पाठ प्राप्त नहीं होता है। यह पाठ केवल आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध के पन्द्रहवें अध्ययन में प्राप्त होता है। इस दृष्टि से भी यह प्रति महत्त्व की कही जा सकती है। इस पाठ का प्रचलन न होने से प्रस्तुत प्रति के अवचूरिकार भी वास्तविक अर्थ को हृदयंगम न कर सके। अवचूरिकार ने अर्थ किया है :- "दिक्षु वस्थितात् आवलिकागत-विमानमध्यस्थात् ।"

२. मुद्रित पुस्तक कल्पसूत्र (चूर्णि, निर्युक्ति तथा टिप्पणक सहित), सम्पादक, मुनि पुण्यविजय, प्रकाशक, साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद, सन् १९५२।

३. मुद्रित प्रति कल्पसूत्र, संपादक आनन्दसागरसूरि, प्रकाशक, देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, सन् १९१४।
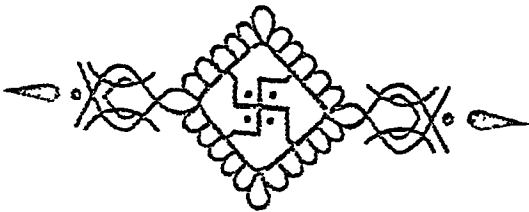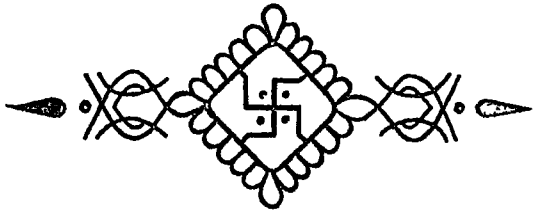
सम्पादन पद्धति :—प्रस्तुत सम्पादन में उपरोक्त १५६३ की लिखित प्रति को आदर्श मानकर इसी का मूल पाठ दिया गया है। मुनि पुण्यविजयजी सम्पादित संस्करण में उनके द्वारा स्वीकृत मूल पाठ में कई स्थलों पर कतिपय शब्द अधिक प्राप्त होते हैं, उनमें से जो शब्द प्रसंगोचित होने से आवश्यक प्रतीत हुए, उन्हें मैंने [ ] कोष्ठकान्तर्गत दिया है। कुछ स्थानों पर प्रतिलिपिकार की भूल से जो पाठ छूट गये हैं, उन पाठों को भी मैंने [ ] कोष्ठक के भीतर दिया है। एक दो स्थान पर प्रतिलिपिकार की भूल से कुछ शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है, उन शब्दों का इस संस्करण में मैंने परिहार कर दिया है। कई विस्तृत आलापक (पाठ) अर्वाचीन प्रतियों में अविकल रूप से प्राप्त होते हैं, जब कि प्राचीन प्रतियों में उस पाठ के स्थान पर केवल "जाव" शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। ऐसे स्थलों को श्री पुण्यविजयजी ने अपने संस्करण में –। –। चिह्नांकित कर मूल पाठ में स्थान दिया है। मैंने भी उसी परम्परा को सुरक्षित रखते हुए उन आलापकों को [ ] कोष्ठक के भीतर दिया है यथा पृ० १३०, १६०, १७० आदि।

प्रति में हुत्था-होत्था, गुत्त-गोत्त, भवइ-भवति, विइक्कंत-वितिक्कंत, तओ-ततो, तए-तते अ के स्थान पर य, अथवा य के स्थान पर अ आदि शब्दों के प्राकृत के वैकल्पिक रूप भी प्राप्त होते हैं। प्रति में जिस रूप में पाठ प्राप्त हैं, मैंने एकरूपता का लोभ न रखकर यथासम्भव उसी रूप में देने का प्रयत्न किया है।

इस प्रति में आरम्भ से लेकर स्थविरावलि पर्यन्त सूत्रांक संख्या नहीं दी गई है, केवल साधुसमाचारी में सूत्रांक संख्या प्राप्त होती है। पाठकों की सुविधा को दृष्टिपथ में रखते हुए मैंने मुनि पुण्यविजयजी द्वारा सम्पादित संस्करण के अनुसार ही सूत्रांक संख्या प्रदान की है।

मुख्यतया उपरोक्त १५६३ की लिखित प्रति को ही आदर्श मानकर सम्पादन किया गया है, इसी कारण पाठान्तर देकर कलेवर को नहीं बढ़ाया गया है। पाठान्तर की दृष्टि से पाठकों को मुनि पुण्यविजयजी सम्पादित संस्करण देखना चाहिये।
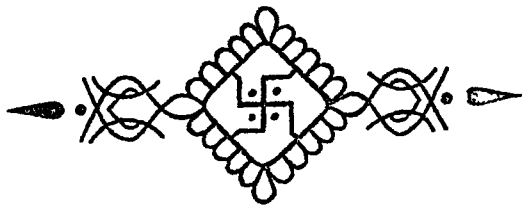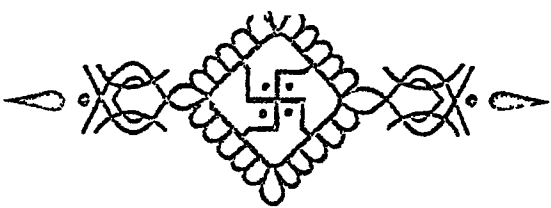
हिन्दी अनुवाद—

हिन्दी अनुवाद में कोई वैशिष्ट्य नहीं है। मैंने शब्दशः अनुवाद करने का प्रयत्न किया है। कोष्ठकान्तर्गत पाठ का अनुवाद भी कोष्ठक के भीतर ही दिया गया है। अनुवाद कैसा हुआ है और उसे करने में कहां तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे।

तेरापंथी समुदाय के विशिष्ट विद्वान् मुनि श्री नथमलजी एवं मुनि श्री दुलहराजजी ने इस अनुवाद का अवलोकन कर जहां कहीं शाब्दिक परिवर्तन करने का संकेत दिया था, मैंने उसी प्रकार परिवर्तन कर दिया है। मुनिश्री के इस सौजन्य के लिए मैं उनका आभारी हूँ।

आंग्ल भाषा में अनुवाद डॉ. मुकुन्द लाठ ने किया है। इस अनुवाद के सम्बन्ध में उन्होंने 'दो शब्द' में अपना मन्तव्य प्रकट किया है।

प्रस्तुत संस्करण का वैशिष्ट्य

प्रस्तुत संस्करण कई कारणों से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यद्यपि कल्पसूत्र के अद्यावधि अनेकों सचित्र संस्करण, अनेकों अंग्रेजी एवं हिन्दी अनुवादों के पृथक्-पृथक् संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं तथापि प्रकाशित सचित्र संस्करणों में प्रायशः चित्र एक, दो या तीन रंगों में छपे हैं। विविध रंगों वाले चित्र सारी पुस्तक में दो या तीन ही प्राप्त होते हैं। जब कि इस संस्करण में प्रयुक्त प्रति के पश्चिम भारतीय जैन शैली के समग्र—छत्तीसों ही चित्र, मूल चित्रों में प्रयुक्त समस्त रंगों के साथ पहली बार ही प्रकाशित हो रहे हैं।

हिन्दी और अंग्रेजी के पृथक्-पृथक् अनुवादों में, किसी में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है, किसी में टीका के आधार से अनुवाद हुआ है तो किसी में सारांश, भावार्थ दिया गया है, जबकि इस संस्करण के हिन्दी अनुवाद में विवेचन या सारांश शैली को न अपनाकर, मूल के भाव को स्पष्ट करते हुए प्रत्येक शब्द का अनुवाद किया गया है। साथ ही दोनों भाषाओं के अनुवाद भी एक स्थान पर ही दिये गये हैं।
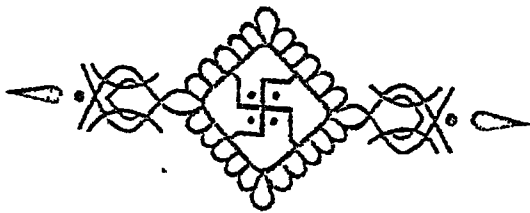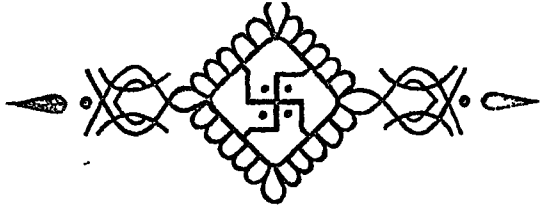
इस संस्करण की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि सामने (ऊपर) के पृष्ठ पर जितना मूल पाठ दिया गया है उतना ही नीचे के पृष्ठ पर एक विभाग (कॉलम) में हिन्दी और दूसरे विभाग (कॉलम) में अंग्रेजी अनुवाद दिया गया है। इस पद्धति से पाठक प्राकृत भाषा के मूल पाठ के साथ-साथ दोनों भाषाओं के अनुवादों का रसास्वादन भी सहजभाव से कर सकता है।

आभार

भगवान् महावीर २५वीं निर्वाण शताब्दी वर्ष में राजस्थान सरकार ने राज्यस्तर पर माननीय मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में समारोह समिति की स्थापना की और श्री देवेन्द्रराज मेहता को इसका सचिव नियुक्त किया।

समिति ने श्रमण भगवान् महावीर के जीवन से सम्बन्धित, चतुर्दश पूर्वधर श्री भद्रबाहु स्वामी प्रणीत कल्पसूत्र को सचित्र, हिन्दी-अंग्रेजी भाषा के साथ प्रकाशित करने का निर्णय लिया। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद का गुरुतर कार्यभार मुझे सौंपा गया। एतदर्थ समिति के सचिव श्री देवेन्द्र राजजी मेहता का मैं हृदय से अत्यन्त ही आभारी एवं कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझे भगवान् महावीर को श्रद्धा-सुमन अर्पित करने का यह अवसर प्रदान किया।

श्री जिनेन्द्रकुमार जैन, तत्कालीन निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, एवं निदेशक, राजस्थान राज्य अभिलेखागार ने सम्पादन-उपयोग हेतु राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर संग्रह से कल्पसूत्र की सचित्र प्रति प्रदान कर सहयोग दिया, अतएव मैं इनका भी आभारी हूँ।

अनुवाद कार्य में श्री शुभकरणसिंहजी बोथरा, भूमिका का आंग्ल भाषा में परिवर्तन करने में डॉ० मुकुन्द लाठ, समय-समय पर परामर्श देने में श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल, निदेशक, पुरातत्त्व एवं संग्रहालय, श्री अगरचन्दजी नाहटा, मुद्रण कार्य में जयपुर प्रिण्टर्स के संचालक, श्री सोहनलालजी जैन, श्री राजमलजी जैन तथा श्री सूरजप्रकाश शर्मा, श्री प्रकाशचन्द्रजी गोयल आदि कर्मचारी वर्ग और टंकण कार्य में श्री राजेन्द्र जैन
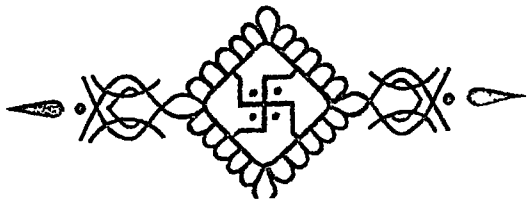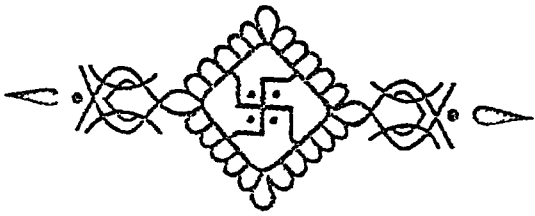
आदि का जो सौहार्दपूर्ण सहयोग मुझे मिला है, एतदर्थ मैं इन सब का हृदय से आभारी हूँ और धन्यवाद देता हूँ।

मैं, मेरे पूज्य गुरुदेव खरतरगच्छालंकार हिन्दी आगमोद्धारक शान्तमूर्ति गीतार्थप्रवर श्रीजिनमणि-सागरसूरिजी महाराज की कृपा और आशीर्वाद का ही फल मानता हूँ कि मेरे जैसा अर्धदग्धविदग्ध व्यक्ति भी कल्पसूत्र जैसे आगम ग्रन्थ का सम्पादन एवं हिन्दी अनुवाद कर सका, अतः उनके श्रीचरणों में कोटिशः वन्दन !

चैत्र शुक्ला ६, रामनवमी, २०३४
जयपुर

म० विनयसागर
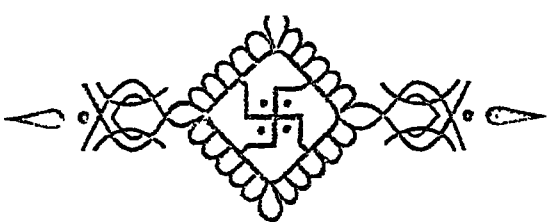
INTRODUCTION

The name *Kalpasūtra* may lead one to believe that the work is an independent *Sūtra* or canon. Actually, the *Kalpasūtra* forms the eighth chapter *(adhyayana)* of the *Daśāśrutaskandha,* a canonic text of the *Cheda* class.[1] This chapter is named *Pajjosavaṇā-kalpa*, or, alternatively, *Pajjosamaṇā-kalpa.* *Pajjosavaṇā* is translated as *paryuṣaṇa,* a word used in two somewhat different senses : it means 'to spend the rainy season at one specific place' ; it is also the name given to a well-known Jain festival which is celebrated for eight days during the rain month of *Bhādrapada.*[2] The word *pajjosamaṇā* is translated as *paryuṣa-śamana,* which means 'forgiveness'. *Kalpa* connotes : 'conduct', 'propriety', 'right behaviour', 'moral duty,' 'prescribed ascetic rules' and the like.[3] *Pajjosavaṇā-kalpa*, consequently, means : 'conduct appropriate during the rain-rest'.[4] And *pajjosamaṇā-kalpa* means : 'conduct governed by forgiveness'.

Kalpasūtra, then, is a treatise concerned with the right, forgiving conduct to be followed by *bhikṣus* during the season of rains : from the day of the full moon in the month of *Āṣāḍha* to the same day in the month of *Kārtika.* The eight days, from the thirteenth of the dark-half of the month of *Bhādrapada* to the fourth of the bright half of the same month, are days when the festival of *paryuṣaṇa* is celebrated. It is celebrated with great pomp and religious fervour by the entire Jain community including monks and the laity. Recitations of the *Kalpasūtra* are held during this period.

---

1. Muni Punyavijaya, *Kalpasutra,* Introduction, pp. 8-9.
2. *Paia Sadda Mahannavo,* second edition, p. 513.
3. *Prasamarati Prakarana,* 143.
4. *Kalpasutra Curni,* edited by Muni Punyavijaya, p. 85.

The *Kalpsūtra* has been thus recited as an almost independent work for centuries. This has led to its being called a *Sūtra*, a canon in its own right. It came to be known as *Paryuṣaṇa Kalpasūtra* and subsequently just *Kalpasūtra*. Another work, a canonic text of the *Cheda* class, also bears the name *Kalpasūtra* : this work has been renamed *Bṛhat Kalpasūtra* in order to distinguish it from our present text.

The *Kalpasūtra* is also known popularly as the *Sūtra* with 1200 or 1250 *ślokas*, because its number of syllables measure that amount.

Form and Content

The *Kalpasūtra* is mostly in prose. It has been divided into 291 *sūtras* or paragraphs. It has three distinct sections, each with a different subject matter :

1. Jina Caritra : covering 200 *sūtras*.
2. Sthavirāvali : with 23 *sūtras*
3. Sādhu Samācārī : having 68 *sūtras*.

1. Jina Caritra

This section describes the lives of the Tīrthaṅkaras. It begins with Bhagavān Mahāvīra and goes back to Arhat Ṛṣabha, the first Tīrthaṅkara. The lives of Mahāvīra, Ariṣṭanemi and Ṛṣabha are described at some length. Attention is focused on what have been called 'the five prime events' of their lives : namely, their descent from a heavenly existence, birth, initiation into the monastic life, attainment of the highest *kevala*-knowledge and, finally, *nirvāṇa*. A list of the chief family-members of these Tīrthaṅkaras is also given. Mahāvīra's life has more details than others. It not only contains a detailed account of the above five prime events, but much more besides. This extra material includes the episode of his transfer from one womb to another at the instigation of Indra.
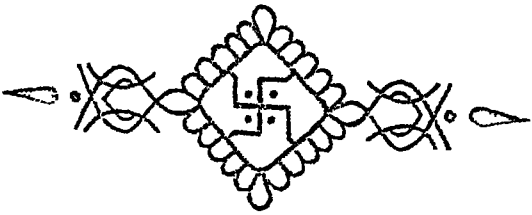
Mahāvīra's life has, indeed, been taken as the model for describing the lives of the other Tīrthaṅkaras. In speaking of Pārśva, Ariṣṭanemi and Ṛṣabha, the author of the *Kalpasūtra* says that the events in the lives of these three should be taken as being exactly parallel to those described in the case of Mahāvīra, except for the incidence of the transfer of embryo. Ṛṣabha is, in addition, described as a great sovereign, the first who taught men and women the various arts and crafts of civilization and culture.

2. Sthavirāvalī

This section, as the name indicates, contains a genealogy of prominent Jain teachers. The list begins with the immediate disciples of Mahāvīra. The last teacher to be mentioned is Devarddhigaṇi Kṣamāṣramaṇa.

After recording the names of Mahāvīra's eleven immediate disciples, called *gaṇadharas*, the Sthavirāvalī reports that these together propagated nine *gaṇas*, since four of the disciples formed two pairs for the purpose of propagating the *dharma*. Of these nine *gaṇas*, the Sthavirāvalī further continues, only one was handed down in tradition. This was the *gaṇa* initiated by Ārya Sudharma. The spiritual lineage of Ārya Sudharma is said to be continued by Jambu, Prabhava, Śayyambhava and Yaśobhadra. Teachers after Yaśobhadra are recorded in a list which the text calls the shorter list *(saṅkṣipta vācanā)*: this takes the genealogy from Yaśobhadra down to Vajra and his disciples. This list is followed by a longer list *(vistṛta vācanā)* which also begins the genealogy with Yaśobhadra but carries it down further to Phalgumitra. The longer list gives the names of the prominent disciples of each teacher. It also names various *śākhās*, *kulas* and *gaṇas* (branches or schools) initiated by different teachers. The Sthavirāvalī ends with a passage in which veneration is offered to a series of teachers from Phalgumitra to Devarddhi Kṣamāśramaṇa.

Sādhu Samācārī

This contains a group of 68 *sūtras* which record the rules of conduct and propriety to be followed by monks and nuns during the rainy season when they give up their normal wandering and spend the whole season in a single place. The rules speak of matters like the maximum distance to which a monk can travel during this period, the kinds of food he may accept, the kind of shelter he should resort to in case of rain, the way he should deport himself and the like. These rules are qualified by exceptions in cases of contingency. The text ends with a passage that extols the value of forgiveness and exhorts the monks to remain steadfast in their pursuit of spiritual perfection.

Authenticity of the Kalpasūtra

Bhadrabāhu, the author of the *Niryukti* on the *Daśāśrutaskandha*, has given an account of the contents of this work as he knew it. Commenting on the eighth chapter of this work—i. e. the present *Kalpasūtra*—he says that this chapter contains the Jina Caritra and the Sthavirāvalī.[1] Evidently, then, the first two sections of the *Kalpasūtra* have been part of the eighth chapter of the *Daśāśrutaskandha* since ancient times. Again the *Cūrṇi* on the *Kalpasūtra*, which is a fairly ancient text, accepts as authentic the *sūtras* connected with the following episodes : Indra and his role in Mahāvīra's transfer, from one womb to another, Siddhārtha's visit to his gymnasium, Mahāvīra's birth and the feast held to celebrate the occasion, and Mahāvīra's initiation into the ascetic life and so on. These *sūtras* which the *Cūrṇi* accepts, are certainly authentic. But *sūtras* which describe Triśalā's dreams in an elaborate *kāvya*-like manner appear to be of doubtful authenticity.[2]

1. purima carimana kappo mangala vaddhamana titthammiha parikahiya jinaganaharai theravali caritam (*Niryukti* gatha. 62).
2. Muni Punyavijaya, *Kalpasutra*, Introduction, pp. 9-10

The Sthavirāvalī, as it has come down to us, seems to have been inflated by additions made after Devarddhigaṇi, as his name figures last in the teacher-list. Thus, though much of the Sthavirāvalī is, no doubt, authentic, the same degree of authenticity does not attach to the whole of it.

Bhadrabāhu, the author of the Kalpasūtra

I have spoken above of a Bhardrābahu who wrote a *Niryukti* on the *Daśāśrutaskandha*. At the beginning of his work, he offers his obeisance to a more ancient Bhadrabāhu who was the author of the treatise he was commenting upon :

> "My obeisance to Bhadrabāhu, of the Prācīna *gotra*, the last of the *śruta-kevalins* (one who knows all fourteen *Pūrva*-treatises), Bhadrābahu who wrote the *Daśāśruta [skandha]*, the *[Bṛhat] kālpa* and the *Vyavahārasūtra*."[1]

The epithet 'last of the *śruta-kevalins*' clearly shows that the person referred to was the renowned ancient Bhadrabāhu who was the disciple and successor of Yaśobhadra as the seventh head of the Jain order of monks established by Mahāvīra.

The little biographical details that we know of this Bhadrābahu, the author of the *Daśāśrutaskandha* (and hence the *Kalpasūtra)*, are culled from comparatively late works like the *Āvaśyaka Cūrṇi*, the *Bṛhadvṛtti* on the *Āvaśyakasūtra* by Haribhadra, the *Titthogāliyapayannā* and the *Pariśiṣṭaparvan*. These may be summarised as follows :

Bhadrābahu was born in a *brāhmaṇa* family at Pratiṣṭhānapura in the year 94 after Mahāvīra's *nirvāna*. When he was forty-five years of age, he was initiated into the Jain order by Ārya Yaśobhadra.

1. Vandami bhaddabahum painam carima sayala suyananim
suttassa karagamisim dasasu kappe ya vavahare *Dasasrutaskandha Niryukti.*

This occurred in the year 139 after Mahāvīra's *nirvāṇa*. He studied all the twelve canonic *Aṅga* treatises with his *guru* Yaśobhadra, and lived to be the last of the *śruta-kevalins*. In the year 148 after Mahāvīra's *nirvāṇa*, he was accorded the status of an *ācārya* along with Ārya Sambhūtavijaya. When Sambhūtavijaya died, in the year 148 after Mahāvīra's *nirvāṇa*, Bhadrabāhu became the head of Mahāvīra's order of monks. A great famine occurred at this time and lasted for full twelve years. Bhadrabāhu spent this period in Nepal, where he practised *yoga* and the meditation known as *mahāprāṇāyama*. While Bhadrābahu was still in Nepal, a council of monks met to collect and record the canon. Ārya Sthūlabhadra was sent to Bhadrabāhu in order to study the canonic works with him, for Bhadrabāhu was the only living person who knew the canon in its entirety. Bhadrabāhu taught Sthūlabhadra the fourteen *Pūrva*-treatises, ten of them with exegetic explanations and the other four in just their original forms. He also wrote four works which are placed in the *Cheda* class of the Jain canonic *Sūtras*. These are : *Daśāśrutaskandha, Bṛhatkalpasūtra, Vyavahārasūtra* and *Niśīthasūtra*. He died in the year 170 after Mahāvīra's *nirvāṇa*.[1]

Tradition also ascribes to him the authorship of *Niryuktis* on the following ten canonic works : *Ācārāṅga, Sūtrakṛt, Āvaśyaka, Daśavaikālika, Uttarādhyayana, Daśāśrutaskandha, Bṛhatkalpa, Vyavahāra, Sūryaprajñapti* and *Ṛṣibhāṣita*. He is also said to have composed the celebrated hymn called the *Upasargaharastotra*. There are legends that speak of him as a brother of Vārāhamihira, the famous astronomer. Other legends relate the story of how he had divined the sixteen dreams of Chandragupta Maurya. There is large body of such legendary material, whose worth as history is dubious. There have been many Bhadrabāhus among Jain monks, and as it often happens, stories current about later Bhadrabāhus have come to associated with the most ancient and the most celebrated of them all, namely the author of the *Kalpasūtra*.

1. Acarya Hastimalla, *Jain Dharma ka Maulik Itihasa*, Part II.

The Bhadrabāhu, who wrote the ten *Niryuktis* listed above, flourished much after the ancient Bhadrabāhu. He was a brother of Vārāhamihira and thus lived in the sixth century A. D., many centuries after the ancient Bhadrabāhu. Those who wish to study in detail the arguments for this conclusion may see the discussion on this point in the Introduction to the *Bṛhatkalpabhāṣya* by Muni Punyavijaya. Ācārya Hastimalla in his '*Jain Dharma Kā Maulika Itihāsa*', Part II, also argues the same point. Dalasukh Malvania accepts Mūni Punyavijaya's views and has discussed the matter at length in his Introduction to the *Daśavaikālikasūtra*.

Kalpasūtra and the Jain tradition

Commentaries on the *Kalpasūtra* report that all Jain monks recited the *Kalpasūtra* on the fiftieth night after the day they commenced their rain-rest. This had become an almost established custom and monks observed it wherever they happend to be. Often one of the monks was given the task of reading the *Kalpasūtra* to the others. But the custom, now common, of reciting the *Kalpasūtra* in large gatherings where the laity also participates, did not become current till a comparatively later date. It is reported that a teacher bearing the epithet Gītārtha was the first to give a public recitation of the *Kalpasūtra*.[1] This event occurred in the year 983 after Mahāvīra's *nirvāṇa*,[2] in the city of Ānandapura (modern Badanagar). Gītārtha recited the *Kalpasūtra* before a large congregation that had assembled at the main Jain temple in the city.[3] The audience is said to have included King Dhruvasena, along with

1. Acarya Hastimalla, *Jain Dharma ka Maulika Itihasa*, Part II, p. 602. Hastimalla believes that this monk was Kalaka (the IVth).
2. *Ibid*, p. 692. Gitartha (or Kalaka the IVth) gave this recitation to celebrate his completion of copying the *sastras*, a task he had begun three years earlier.
3. Prthvicandra Suri, *Kalpasutra Tippanaka*, note an *sutra* 291.
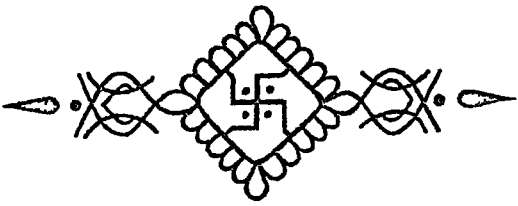
the entire Jain community. Since then the practice of reciting the *Kalpasūtra* publicly during the *paryuṣaṇa* festival has continued to this day. The recitations are held in every village and every town with any sizeable Jain community.

The *Kalpasūtra* has been held in a position of special honour among Śvetāmbara Jains of all communities. Its study and its recitation has, consequently, been more popular among the Śvetāmbaras.

For the purpose of public recitations, it was necessary that a copy be made available to every *vācaka* who gave a public recitation. As a result, innumerable copies of the work were made. Hundreds of *Kalpasūtra* manuscripts, prepared over a period ranging from the twelfth to the twentieth centuries, are available in manuscript libraries and collections. Many of these are illustrated manuscripts, containing from 7 to 125 miniature paintings. Quite a few manuscripts have been written in excellent calligraphy with letters of gold, silver or a beautiful red and black. Decorative borders are also not uncommon. No other canonic text employed the skill of as many painters, calligraphists and decorators as the *Kalpasūtra*.

Exegetic literature on the Kalpasūtra

In view of the great popular import of the *Kalpasūtra*, it was natural that many commentaries were written to explain the sense and significance of the Prakrit original. Many *Ṭīkās* in Sanskrit as well as *Niryuktis* and *Cūrṇis* in Prakrit composed at different times have come down to us. A number of explanatory works are also available in Old Rajasthani and Gujarati : these were, evidently,

1. See *Tikas* on *Kalpasutra*.
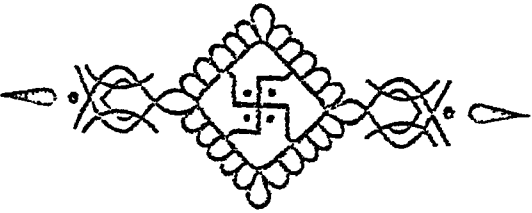
written for the common reader. Over the last few decades, the *Kalpasūtra* has been translated into Hindi, Gujarati, English, Bengali and other modern languages.[1]

The manuscript used for the present edition

This edition of the *Kalpasūtra* is based mainly upon a single illustrated manuscript in the library of the Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur. The readings have, however, been collated with the help of two published editions : (1) Muni Punyavijaya's edition of the *Kalpasūtra*, published by Sarabhai Manilal Nawab, Ahmedabad (1954) and (2) Anandasagara Suri's edition published by Devachand Lalbhai Jain Pustakoddharaka Fund, Surat (1914).

The manuscript used is ms. no. 5354 of the above institute. It contains 136 folios, each measuring 28.5 × 11.3 centimetres. Every folio contains seven lines of writing, each line having roughly 26 syllables. The text is accompanied by an *Avacūri* in Sanskrit copied on the margins. The obverse of every folio bears a decorative motif in the centre while the reverse carries three such motifs. The motifs are in gold with borders of sky-blue and red. The text on each page is enclosed within two attractively drawn margins consisting of a thick gold line flanked by two thin red lines. The manuscript contains 36 polychrome illustrations in the Western Indian style. These occur on the following pages :

1 B, 2 A, 5 A, 7 B, 11 A, 18 A, 21 B, 22 A, 37 B, 42 B, 43 A, 49 B, 52 A, 52 B, 60 B, 62 B, 63 B, 67 B, 69 B, 70 B, 76 B, 77 B, 79 B, 83 B, 84 A, 84 B, 88 B, 89 A, 93 B, 94 B, 95 B, 100 B, 106 A, 106 B, 133 B and 134 A. (A=obverse, B=reverse).

1. For a list of major exegetic works and translations, see the original Hindi version of this introduction.

The manuscript was copied in the Vikrama year 1563. The final colophon includes a *praśasti*, i.e. a eulogy of the donor who arranged for the text to be copied. The *praśasti* begins with a veneration to a certain monk named Bhāvasāgara Sūri who was the chief *ācārya* of the Añcalagaccha.[1] The donor was called Lola and belonged to the Oswal community of Jain *śrāvakas*. Lola lived in the town of Bhinnamāla. Lola had this manuscript copied at the behest of the great *vācaka (vācakendra)* Bhānumeru. It was meant for the use of the *vācaka* Vivekaśekhara.

The manuscript is written in large letters, with an attractive well-rounded calligraphic style. The readings are generally free of error. The copyist seems to have had a fairly old edition of the text at hand when making this manuscript. This is evident from the fact that the text does not contain the additional matter which most late manuscripts insert after the name of Phalgumitra in the Sthavirāvalī. Here our manuscript agrees with the reading accepted by Muni Punyavijaya in his critical edition of the *Kalpasūtra*.[2]

A few words concerning the present edition

The readings in this edition follow, for the most part, the manuscript described above. At places Muni Punyavijaya's edition was found to contain words or phrases missing in our manuscript. These have been inserted within square brackets wherever they gave a happier reading. At places, the copyist has obviously dropped some words; these have been restored, again within brackets. In many modern editions of the *Kalpasūtra*, passages which are usually abbreviated with a '*jāva*', have been

1. I have in my collection, a manuscript of the *Acaranga Niryukti*, copied in the year 1560 of the Vikrama era at the instance of this very personage. The donor was Sresthi Hamsaraja, a descendant of Sresthi Sangramasimha of the Srivamsa clan.

2. There are, however, one or two minor differences, discussed in the original Hindi introduction.
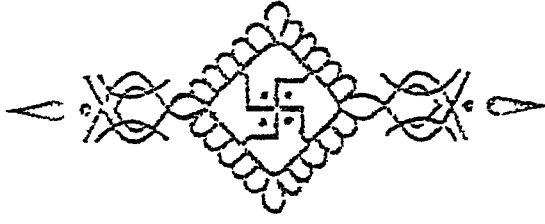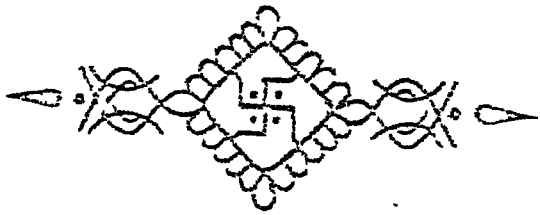
given in their full. In such cases Muni Punyavijaya adopts the procedure of bracketing these passages with the signs : -1 -1. I have followed Muni Punyavijaya, except that I have enclosed these passages within square brackets.

The manuscript does not have uniform spellings. Thus we find the same words in different forms : *hottha, hutthā*; *gutta, gotta*; *bhavai, bhavati*; *viikkanta, vitikanta*, etc. The syllable 'a' is often substituted for 'ya'. I have retained variant spellings in most cases, resisting the temptation to institute uniformity.

Sūtras in our manuscript have no indication noting their numerical order, right upto the Sādhu Samācārī section. I have restored the number-marks on the basis of Muni Punyavijaya's edition.

This edition relies essentially on a single manuscript, thus variant readings have not been noted. For these, the reader is referred to Muni Punyavijaya's edition.

Ramnavami
29th March, 1977.

M. Vinaya Sagar
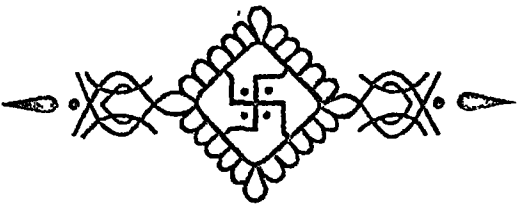
ENGLISH TRANSLATOR'S NOTE

A reader who is curious enough to read both the Hindi and the English versions presented here, will notice that the two translators have a somewhat different approach. M. Vinaya Sagar has, as he remarks, attempted to reproduce the original in all its contours. I have, on the other hand, intended to provide the reader with a version that tries to avoid some of the encumbrances of the original.

Let me explain. The Prakrit original, like many other canonic works, is replete with repetitions. Time and again whole passages are repeated word for word. A set of *varṇakas*, which are fixed and stereotyped strings of descriptive epithets, are introduced recurrently in order to describe objects, events and even feelings. Indeed, the whole style of the *Kalpasūtra* is pervaded by a strong repetitive tenor which hampers the flow. It also imparts to the work an unnecessary length. This had let ancient teachers to adopt a shortcut for notating passages to be repeated and we constantly encounter the phrase : 'repeat from such a word to *(jāva)* such an such a word'.

A faithful translator has two courses open to him. He may either give the complete text of each repetition, or else, as is usual, he may follow the practice of ancient writers and give abbreviated instructions referring the reader back to the passage being reiterated. But whichever course one may adopt, the flow is bound to become cluttered and faltering. I have, therefore, chosen for the most part to omit or paraphrase repetitions.
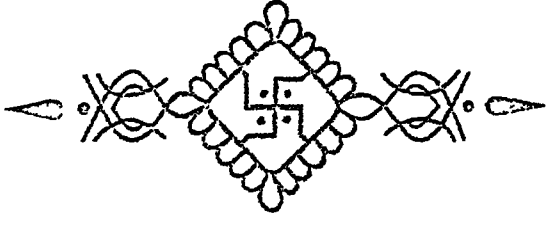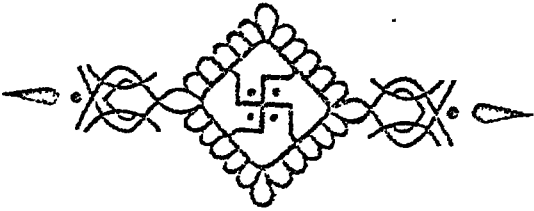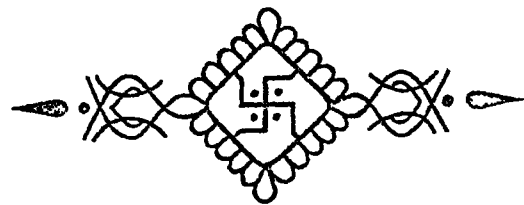
However, I have done my best not to leave out anything which was not purely repetitive or redundant. I felt I could take a little liberty with the text because the more scholarly task of rendering the original in all its movements has already been admirably accomplished in English by no less an indologist than the erudite Jacobi. In this edition, too, M. Vinaya Sagar's version provides the Hindi knowing reader with a similar rendering. The English and the Hindi versions will, I hope, serve to complement each other.

I have prepared my translation with the general reader in mind. I have thus paraphrased technical terms wherever I could. Yet many unfamiliar terms and phrases of a rather technical nature still remain. The more important of these have been explained in the glossary at the end.

I would like to add a word of caution here. One cannot really do justice to a technical term while paraphrasing it within the flow of a narrative. I have sometimes given up total exactness in favour of a simple rendering without doing undue violence to the spirit of the original. Here is an instance. In describing the austerities undertaken by the Tīrthaṅkaras and their disciples, the text recounts the number of fasts that each had observed. Thus Mahāvīra is said to have fasted '*chaṭṭhenaṁ bhattaṇaṁ*' after he gave up his life as a householder. I have translated '*chaṭṭhenaṁ bhatthenaṁ*' as: 'taking one out of six regular meals'. This is broadly correct, but it does not totally portray the procedure followed in such cases. A person who fasts '*chaṭṭhenaṁ bhattenaṁ*' misses a meal on the day he begins his fast; then for the next two days he misses all four meals and, finally, on the fourth day he takes one meal, missing the other. Phrases similar to '*chaṭṭhenaṁ bhattenaṁ*', like '*aṭṭhenaṁ bhattenaṁ*,' '*cautthenaṁ bhattenaṁ*' etc. occur repeatedly. I have translated them simply as 'missing one out of eight meals', 'one out of four meals' etc. But in truth-the procedure was analogous to the one followed for '*chaṭṭhenaṁ bhattenaṁ*'.

In many places my interpretation may disagree with those of other translators. This I think is natural. For an old text does admit of more than one interpretations. In coming to my own conclusions
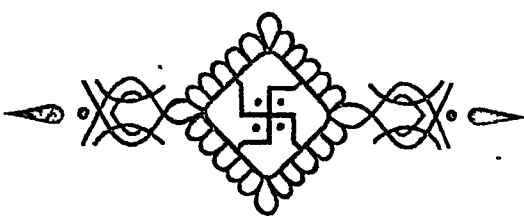
regarding the meaning of certain words and phrases, I have relied on existing translations (the English translation by Jacobi, the Gujarati translation by Bahechardas Jivaraj Doshi, the Bengali translation by Basant Kumar Chattopadhyaya and the Hindi translation by Vinay Sagar) as well as the *Ṭippaṇaka* by Pṛthvīcandra Sūri.

Acknowledgements

I owe thanks to many. To begin with I must thank Sri D. R. Mehta, for entrusting me with this task. M. Vinaya Sagar has been a constant source of guidance on many points of detail and doctrine. I owe my sincerest thanks to him. Shri S. S. Bothra was kind enough to examine my translation and offer scholarly advise. I am obliged to him. I am also obliged to Sri Gajasingh Rathore for his suggestions during proof-reading. My thanks are due to Shri A. L. Sancheti for drawing my attention to certain errors of inadvertence. Many friends have given fruitful suggestions, especially Mrs. Francine E. Krishna, Dr. Gurudeva Singh, Dr. G. S. P. Mishra and Shri R. S. Mishra. I am thankful to them all. Finally, I must not forget to thank Shri Ratnani for his efficient typing.

Mukund Lath

Mahavir Jayanti, 2.4.77
Jaipur
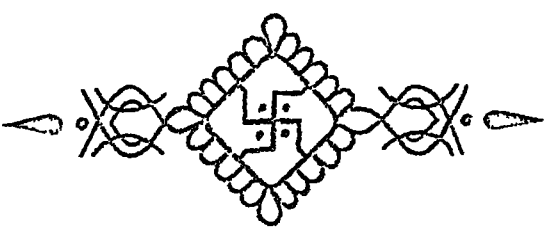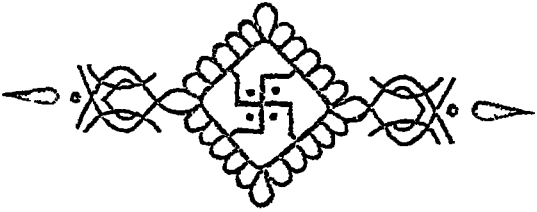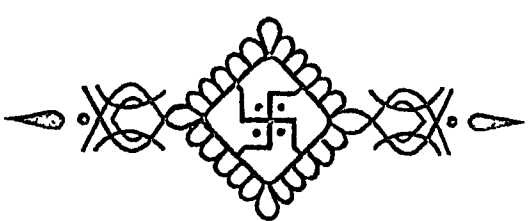
चरिमसुयकेवलिसिरिभद्दबाहुसामिविरइयं

कप्पसुत्तं

(दसासुयक्खंधसुत्तस्स अट्ठमं अज्झयणं)

सचित्रं हिन्दी-आंग्ल-भाषानुवाद-सहितञ्च
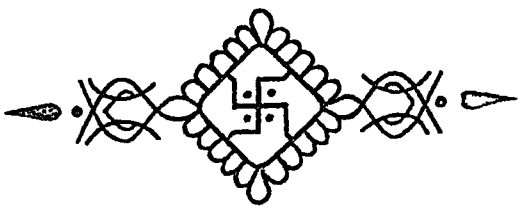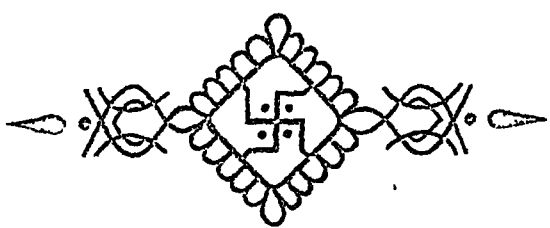
णमो अरहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच णमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥
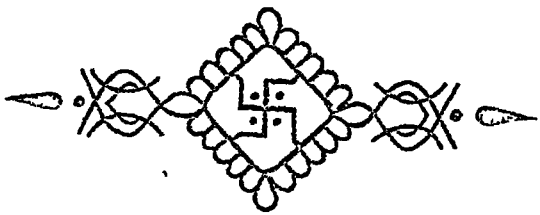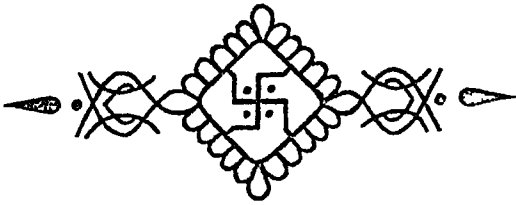
ग्रर्हतों को नमस्कार	Obeisance to the Arhats
सिद्धों को नमस्कार	Obeisance to the Siddhas
ग्राचार्यों को नमस्कार	Obeisance to the Ācāryas
उपाध्यायों को नमस्कार	Obeisance to the Upādhyāyas
लोक में स्थित समग्र साधुग्रों को नमस्कार।	Obeisance to all Sādhus.
यह पंच-परमेष्ठि—नमस्कार सम्पूर्ण पाप-कर्मो का नाश करने वाला ग्रौर सर्व मंगलों में प्रथम (सर्वश्रेष्ठ) मंगल है।	This five-fold obeisance destroys all sin and is the foremost of all that is auspicious.
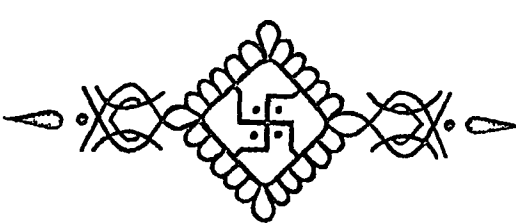
॥ ॐ ॥ अर्हम् ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था । तं जहा – हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १, हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए २, हत्थुत्तराहिं जाए ३, हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वईए ४, हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे
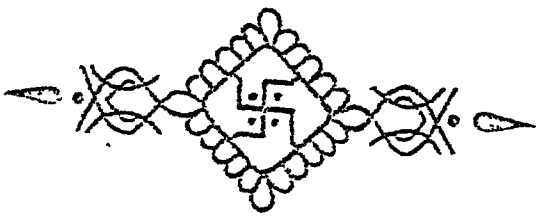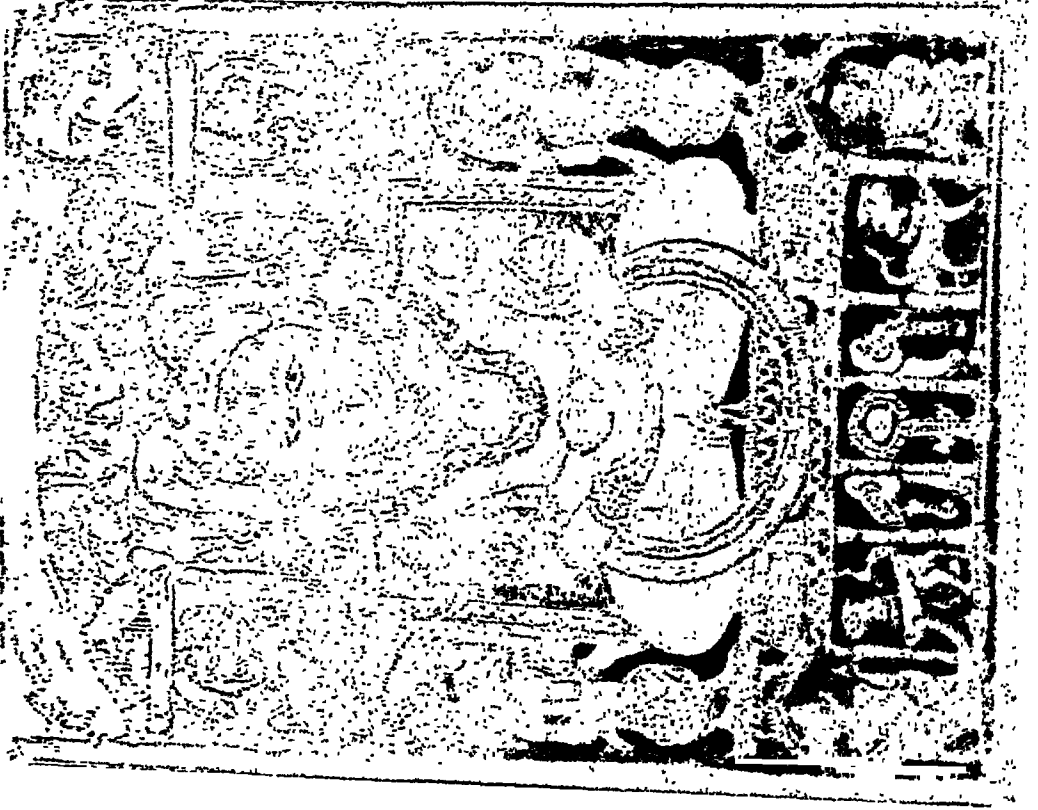
१. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पांच (कल्याणक) हस्तोत्तरा अर्थात् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुए। वे इस प्रकार हैं:— भगवान् महावीर हस्तोत्तरा नक्षत्र में देवलोक से च्युत होकर (देवानन्दा के) गर्भ में आये १, हस्तोत्तरा नक्षत्र में भगवान् को (देवानन्दा के) गर्भ से हटाकर (त्रिशला के) गर्भ में स्थापित किया गया २, हस्तोत्तरा नक्षत्र में भगवान् का जन्म हुआ ३, हस्तोत्तरा नक्षत्र में भगवान् मुण्डित होकर गार्हस्थ्य से अनगारत्व में प्रव्रजित हुए ४, हस्तोत्तरा नक्षत्र में ही महावीर को अनन्त, अनुत्तर, अप्रतिहत, आवरण रहित, समग्र,

1. In those times, in those days, all five prime events in the life of Bhagvān Mahāvīra, occurred when the moon was in conjunction with the *uttarāphālguni* constellation. It was during this conjunction that he descended into the womb (of Devānandā) and was transferred from one womb to another: (to that of Triśalā). During this conjunction he pulled out his hair and became a *homeless mendicant.*

Then during this same conjunction he attained that supreme knowledge *(kevala-jñāna)* which is
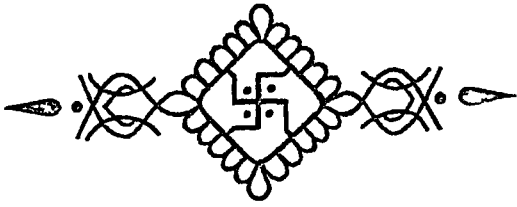
पडिपुन्ने केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ५, साइणा परिनिव्वुए भयवं ६ ॥१॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स छट्ठी दिवसेणं महा-विजय-पुप्फुत्तर-पवर-पुंडरीयाओ दिसासोवत्थियाओ वद्धमाणगाओ महाविमाणाओ
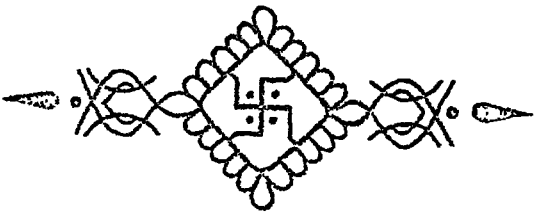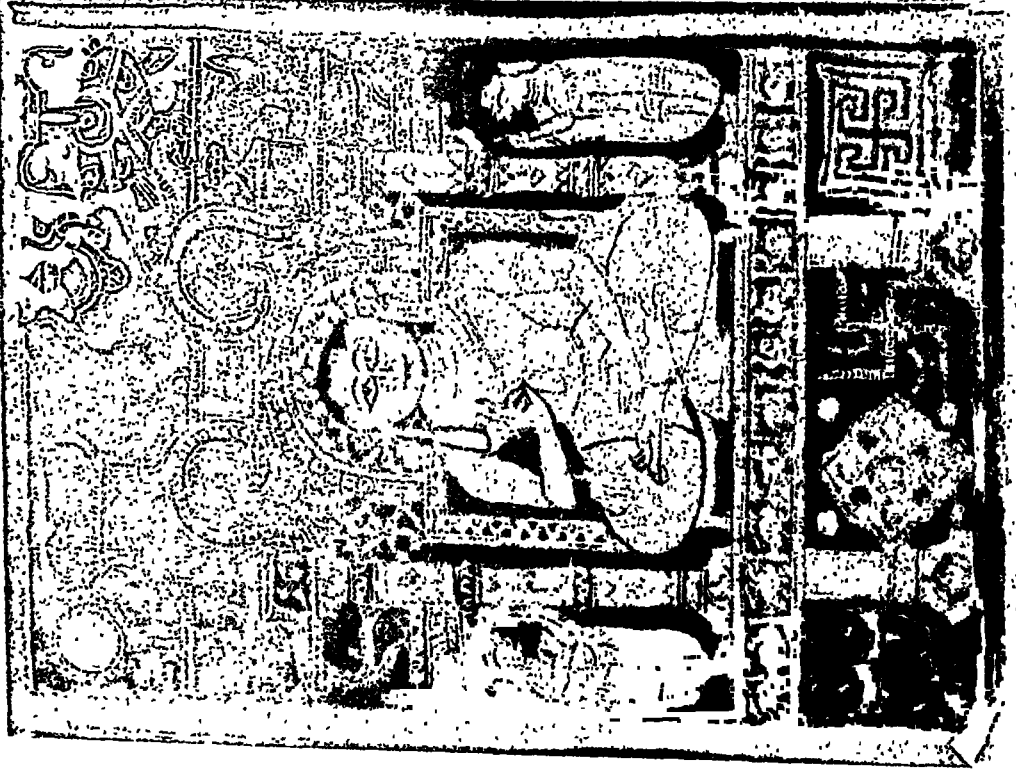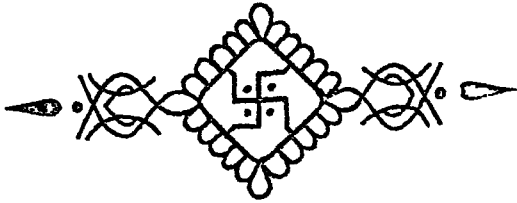
परिपूर्ण एवं श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ ५, तथा स्वाति नक्षत्र में भगवान् महावीर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ६।

२. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर जब ग्रीष्मकाल का चतुर्थ मास, आठवां पक्ष आषाढ़ शुक्ल चल रहा था, तब उस आषाढ़ शुक्ल की छठ के दिन महाविजय पुष्पोत्तर प्रवर पुण्डरीक दिशा-सौवस्तिक वर्धमान नामक महाविमान से

ultimate, infinite, unimpeded, unclouded, total and all-embracing. He attained *parinirvāṇa* during the *svāti* constellation.

2. In those times, in those days, eight summer fortnights had passed and it was the fourth month of summer, the month of *Āṣāḍha*, when on the sixth day of the bright half *(śukla-pakṣa)* of this month the Śramaṇa Bhagvān Mahāvīra descended from the great celestial abode called the *Mahāvijaya-puṣpottara-pravara – puṇḍarīka – diśā – sauvastika-vardhamānaka*. He had lived there for a period of twenty *Sāgaropamas*. His time there had now run its full course and he descended to this land of Bhārata situated in *Jambudvīpa*.
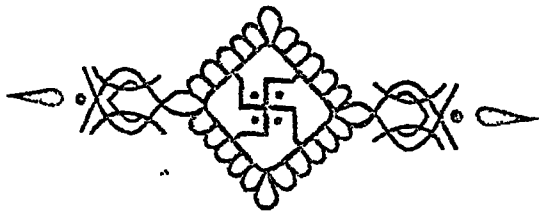
वीसं सागरोवमट्ठितीयाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता, इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे [दाहिणद्धभरहे] इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए, सुसमाए समाए विइक्कंताए, सुसमदुस्समाए समाए वितिक्कंताए, दुस्समसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए [सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणियाए] पंचहत्तरीए वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं, एक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खागकुलसमुप्पन्नेहिं कासवगुत्तेहिं, दोहि य हरिवंसकुलसमुप्पन्नेहिं गोयमसगोत्तेहिं, तेवीसाए तित्थयरेहिं विइक्कंतेहिं, समणे भगवं महावीरे चरिमतित्थयरे पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठे, माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं
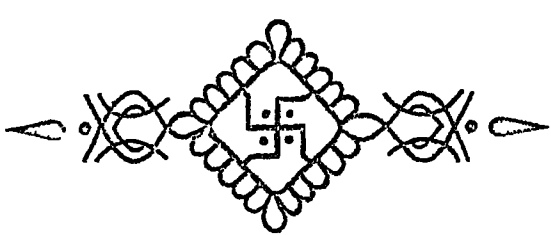
वीस सागरोपम की आयु, भव और स्थिति का क्षय होने के पश्चात् च्युत हुए। च्युत होकर इसी जम्बूद्वीपस्थ भारतवर्ष [दक्षिणार्द्ध भरत] में इसी अवसर्पिणी काल के सुषम-सुषम १, सुषम २, सुषम-दुःषम ३ नामक तीनों आरों के व्यतीत हो जाने, दुःषम सुषम नामक चौथे आरक [जो कि बयालीस हजार वर्ष न्यून एक कोटा-कोटि सागरोपम का है] के भी अधिकांशतः व्यतीत हो चुकने, इस चौथे आरे के केवल पचहत्तर वर्ष और साढे आठ मास शेष रह जाने तथा इस से पूर्व इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न काश्यप गोत्रीय २१ तीर्थंकरों और हरिवंश कुल में उत्पन्न गौतम गोत्रीय २ तीर्थंकरों, इस प्रकार २३ तीर्थंकरों के हो जाने पर, "श्रमण भगवान् महावीर अन्तिम तीर्थंकर होंगे" ऐसा पूर्व में हुए तीर्थंकर द्वारा निर्दिष्ट भगवान् महावीर का जीव माहणकुण्डग्राम नामक नगर में कोडाल गोत्रीय ब्राह्मण ऋषभदत्त की पत्नी जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में, मध्य रात्रि के समय हस्तोत्तरा

He was conceived unto the womb of Devānandā,a *brāhamaṇa* woman of *Jālandhara gotra.* She was the wife of Ṛṣabhadatta, a *brāhmaṇa* of the *Ikṣvāku* clan and *Koḍāla gotra,* who lived in the *brāhmaṇa* sector of the town of Kuṇḍagrāma.

At the time of his conception, the cycle of ages had taken more than half a turn. The six-phased wheel of time had completely traversed three phases, namely, *suṣama-suṣama, suṣama, suṣama-duḥṣama,* and was nearing the end of the the present fourth phase, the *duḥṣama-suṣama,* which has a span of forty-two thousand years less than a *koḍākoḍi sāgara.* Only seventy-five years, eight-and-a-half months remained for its completion.

Bhagvan Mahāvīra was preceded by twenty-three *Tīrthaṅkars,* who had all prophecied his coming. Twenty one of these past *Tīrthaṅkaras* were born in the *Ikṣvāku* clan and were of the *Kāśyapa gotra;* two were born in the *Harivaṁsa* clan and were of the *Gotama gotra.*
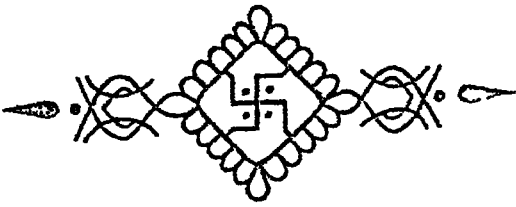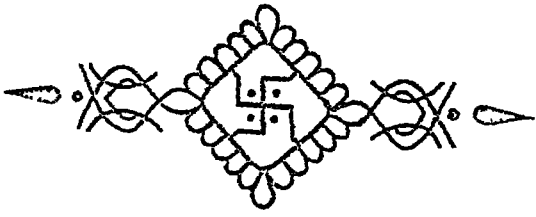
नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥२॥

समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए यावि होत्था — चइस्सामि त्ति जाणइ, चइमाणे न याणइ, चुए मि त्ति जाणइ ॥३॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधर-सगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी२ इमे एयारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा ॥४॥

तंजहा—गय-वसह-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुंभं ।
पउमसर-सागर-विमाण-भुवण-रयणुच्चय-सिहिं च ॥१॥-॥५॥
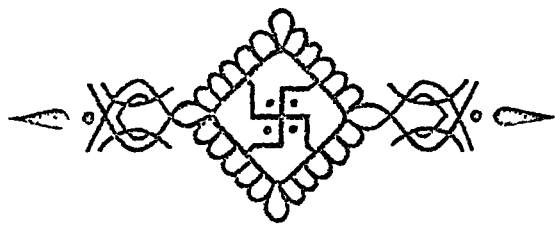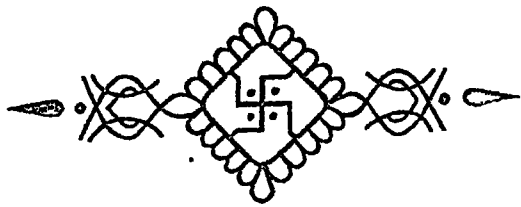
नक्षत्र का योग आने पर (देव सम्बन्धी से मानव सम्बन्धी) आहार, भव और शरीर का संक्रमण करते हुए गर्भरूप में अवतीर्ण हुआ।

३. श्रमण भगवान् महावीर तीन ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि) से युक्त थे। 'मैं च्युत होऊंगा' ऐसा वे जानते थे। "मैं च्युतमान हूँ" यह वे नहीं जानते थे और "मैं च्युत हो गया हूं" ऐसा वे जानते थे।

४. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भरूप से उत्पन्न हुए, उस रात्रि में शय्या पर अर्धनिद्रावस्था में सोती हुई देवानन्दा ब्राह्मणी उदार, कल्याण-कारक, शिवकारक, धन्य एवं मंगलकारक तथा शोभा-युक्त ऐसे इन चौदह महास्वप्नों को देखकर जागृत हुई।

५. इन चौदह महास्वप्नों के नाम इस प्रकार हैं :—
१. हस्ति, २. वृषभ, ३. सिंह, ४. लक्ष्मीदेवी का अभिषेक, ५. पुष्पमाला, ६. चन्द्र, ७. सूर्य, ८. ध्वजा, ९. कुम्भ, १०. पद्मसरोवर, ११. सागर, १२. देव-विमान अथवा भवन, १३. रत्नराशि और १४. निर्धूम अग्नि।

Bhagvān Mahāvīra was conceived unto the womb at midnight, when the moon was in conjunction with the constellation *uttaraphālguni.* At that moment he entered into a new existence, with a new body and a new repast.

At the moment of his conception Śramaṇa Bhagvān Mahāvīra had a three-fold cognition: he was aware that he was about to descend from his heavenly state; he was not aware of the descent itself, but he was aware that he had descended.

4. On that night, when Bhagvān Mahāvīra descended unto the womb of Devānandā, she lay half asleep on her bed. She saw fourteen wondrous dreams which were good, auspicious and sublime and were full of bounty, blessings and fortune. The vision woke her up.

5. In her dreams, Devānandā had seen an elephant, a bull, a lion, the anoinment of Goddess Śri, a garland, the moon, the sun, a flag, an urn, a lotus-pond, the sea, a *vimāna* (celestial vehicle), a heap of jewels and a burning fire.
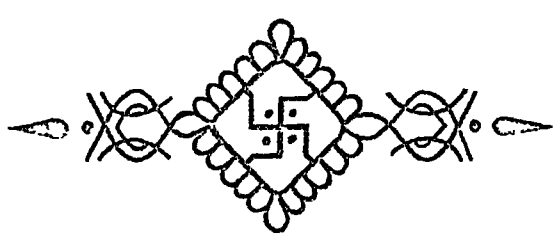
तए णं सा देवाणंदा माहणी इमे एयारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणसिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समुस्ससियरोमकूवा सुमिणुग्गहं करेइ, सुमिणुग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता [अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबिआए रायहंससरिसीए गईए] जेणेव उसभदत्ते माहणे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता उसभदत्तं माहणं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता भद्दासणवरगया आसत्था वीसत्था करयलपरिग्गहीयं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमे एयारूवे ओराले जाव सस्सिरीए

६. उस समय वह देवानन्दा ब्राह्मणी इस प्रकार उदार, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्य एवं मंगलरूप तथा श्रीयुक्त चौदह महास्वप्नों को देखकर जागृत हुई। हर्षित हुई। संतुष्ट हुई। मानस में आनन्दित हुई। हृदय में प्रीति युक्त हुई। परम सौमनस्य को प्राप्त हुई। हर्ष से उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ। जैसे मेघ की धाराओं से कदम्ब पुष्प खिल जाता है उसी प्रकार देवानन्दा की रोमराजि खिल उठी। उसने स्वप्नों को याद किया। स्वप्नों को स्मरण करके वह शय्या से उठी और शय्या से उठकर [राजहंसी की भांति मंद-मंद, चपलता, वेग एवं विलम्ब रहित गति से चलकर] जहां ऋषभदत्त ब्राह्मण था, वहां जाती है और उसके समीप जाकर ऋषभदत्त ब्राह्मण को 'जय हो, विजय हो' शब्दों से वधाती है। वधा कर भद्रासन पर बैठकर आश्वस्त और विश्वस्त होनेपर दश नखों अर्थात् अंगुलियों सहित दोनों करपल्लव जोड़, उन्हें शिर पर घुमा साञ्जलि शीश झुका कर वह इस प्रकार वोली — "यह निश्चय ही सत्य है कि हे देवानुप्रिय ! मैं आज जिस समय अर्धनिद्रावस्था में मीठी झपकियां लेती हुई शय्या पर सोई हुई थी, उस समय इस प्रकार के उदार यावत् शोभायुक्त

6. After seeing these fourteen beautiful, bountiful benign, fortunate, supremely good and auspicious dreams, Devānandā woke up with a deep feeling of joy and contentment. Her heart was elated; she was full of bliss and equanimity. She was exhilarated with a thrill causing the hair of her body to stand erect like a *kadamba* flower at the touch of rain. Her mind kept pondering over the vision she had seen. She rose from her bed with her thoughts possessed by her dreams and leaving her bed, she walked with a steady, unhurried gait, like that of a graceful swan, to the place where Ṛṣabhadatta was taking his rest. She felicitated Ṛṣabhadatta with the words : "may you be victorious, may you be ever successful" and took her seat by him on a good, comfortable chair. She bowed to Ṛṣabhadatta, placing her folded palms, all ten fingers touching, on her forehead. Then, with her mind composed and devoid of any excitement, she said: "O beloved of gods, today while I lay half asleep in my bed, I saw in my fitful sleep

चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तंजहा-गय-जाव-सिंहिं च। एतेसि णं देवाणुप्पिया ओरालाणं जाव चोद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फल वित्तिविसेसे भविस्सइ ? ॥६॥

तए णं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियए धाराहयकलंबुयं

चौदह महास्वप्नों को देखकर जागृत हुई। वे स्वप्न इस प्रकार हैं — हाथी से लेकर निर्धूम अग्निशिखा तक। हे देवानुप्रिय ! मैं ऐसा मानती हूं कि इन उदार यावत् शोभायुक्त चौदह महास्वप्नों का कल्याणकारी ऐसा कोई विशेप प्रकार का फल होगा।"

७. तदनन्तर वह ब्राह्मण ऋपभदत्त देवानन्दा ब्राह्मणी से स्वप्नों से सम्वन्धित वात सुनकर, समझकर हर्षित एवं प्रसन्न हुआ, यावत् उसका हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित तथा मेघ की धारा से धौत कदम्ब पुष्प
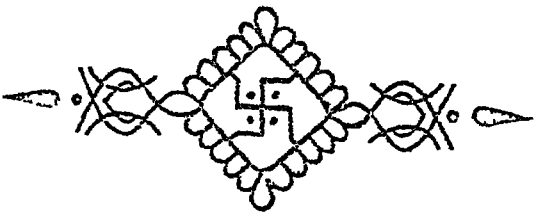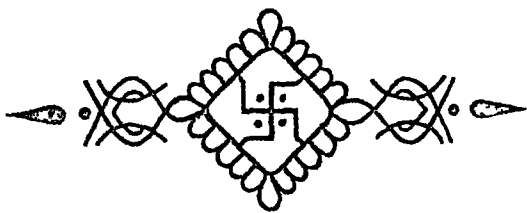
fourteen wondrous, beautiful and bountiful dreams and suddenly woke up." She recounted the objects she had seen in her dreams and then added: "O beloved of gods, I feel that these prodigious and bountiful dreams will surely bear exceedingly blessed fruits."

7. Having heard Devānandā's words, Ṛṣabhadatta, too, was filled with joy and contentment; his heart, like hers, overflowed with happiness. He pondered

पिव समूससियरोमकूवे सुमिणोग्गहं करेइ, करित्ता ईहं [अणु] पविसइ, ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साहाविएणं मतिपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थुग्गहं करेइ, करित्ता देवाणंदं माहणिं एवं वयासी ॥७॥

ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरोग्गतुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा। तंजहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोगलाभो [देवाणुप्पिए!], पुत्तलाभो [देवाणुप्पिए!], सुक्खलाभो देवाणुप्पिए!, एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुन्न-पंचिंदियसरीरं लक्खण-वंजणगुणोववेयं माणुम्माण-पमाण-पडिपुन्न-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं
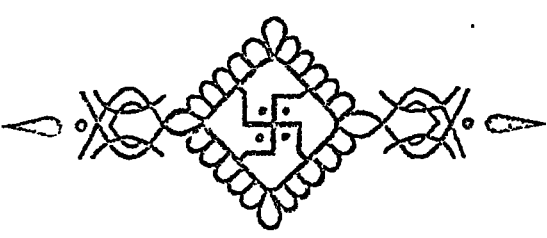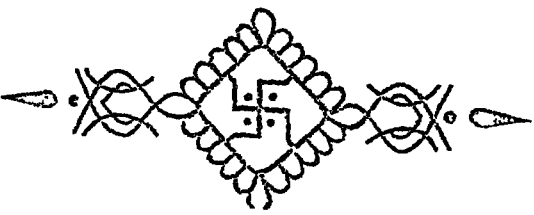
के रूप में उसका रोम रोम पुलकित हो उठा। उसने उक्त स्वप्नों को स्मरण किया। स्मरण करके उनके फल के सम्बन्ध में वह विचार करने लगा। फल का विचार कर अपने स्वाभाविक विचारयुक्त बुद्धि-विज्ञान से इन स्वप्नों के अर्थ का उसने निश्चय किया। अर्थ का निश्चय करके वह देवानन्दा ब्राह्मणी से इस प्रकार बोला —

८. "हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार स्वप्न देखे हैं। कल्याण-रूप, शिवरूप, धन्य, मंगलमय और शोभायुक्त स्वप्न देखे हैं। तुमने आरोग्यकारक, संतोपदायक, दीर्घायुकारक, कल्याणकारक और मंगलकारी स्वप्नों को देखा है। हे देवानुप्रिये ! इन स्वप्नों का विशेष फल इस प्रकार है — हे देवानुप्रिये ! अर्थ-लक्ष्मी का लाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! भोग का लाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! पुत्र का लाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! सुख का लाभ होगा। इस प्रकार निश्चय ही, हे देवानुप्रिये ! नव महीने और साढे सात रात-दिन व्यतीत होने पर, हाथ-पैरों से सुकुमाल, हीनतारहित और पांचों इन्द्रियों से परिपूर्ण शरीर वाले, शुभ लक्षण (स्वस्तिकादि चिह्न) एवं व्यंजन (तिल आदि) के गुणों से युक्त, मान, उन्मान एवं प्रमाण से युक्त सुगठित देह वाले, सर्वांग-सुन्दर, चन्द्र के समान सौम्य, मनोरम, प्रियदर्शी और स्वरूपवान्

over the dreams. He ruminated over them in his mind and in the light of his inborn wisdom and acquired knowledge reflected on the nature of what they augured. Then he said to Devānandā :

8. "Truly, O beloved of gods, your dreams are benign and bountiful. They presage long life, good health, well-being and auspicious prosperity. They foretell a pleasant, enjoyable future, a life of happiness. They also indicate the birth of a son. Nine months seven-and-a-half days from this day, you will give birth to a son who will be radiantly beautiful like a godchild and eye-alluring like the tranquil moon. He will have shapely, attractive limbs, so proportioned as to have just the right measure of length, breadth and weight. His senses will be sharp and alert. He will have soft hands and soft feet and a physique devoid of any defect.
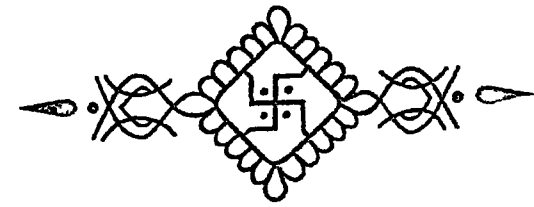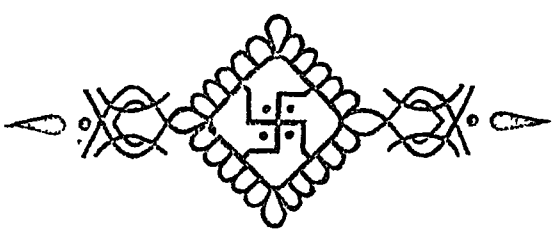
[देवकुमारोवमं] दारयं पयाहिसि ॥८॥

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वण-गमणुप्पत्ते, रिउव्वेय-जउव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेय-इतिहासपंचमाणं निघंटुछट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेयाणं सारए पारए धारए सडंगवी सट्ठितंतविसारए संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसामयणे अन्नेसु य बहूसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु नएसु सुपरिनिट्ठिए यावि भविस्सति ॥९॥

तं ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! [सुमिणा दिट्ठा,] जाव आरोग्ग-तुट्ठिदीहाउय-मंगल्ल-कल्लाणकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठ त्ति भुज्जो भुज्जो अणुवूहइ ॥१०॥

तए णं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तस्स माहणस्स अंतिए एयमट्ठं
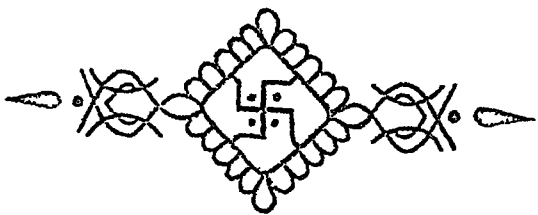
[देवकुमार के सदृश] पुत्र को तुम जन्म दोगी।

९. वह बालक बाल्यावस्था पूर्ण होने, सुज्ञ एवं विचारशील होने पर जब युवावस्था को प्राप्त होगा, उस समय वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद – ये चारों वेद, पांचवां इतिहास और छठा निघण्टु इन छहों का सांगोपांग तथा इनके रहस्यों को जानने वाला ज्ञाता होगा। चारों वेदों के विषयों को स्मरण कराने वाला, रहस्यों का पारगामी तथा इन चारों वेदों का धारक होगा। वेद के छहों अंगों का वेत्ता होगा। षष्टितंत्र का विशारद होगा। गणितशास्त्र, आचारशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, छन्दःशास्त्र, निरुक्त-व्युत्पत्ति शास्त्र, ज्योतिषशास्त्र आदि तथा अन्य अनेकों ब्राह्मण-शास्त्रों, परिव्राजक-शास्त्रों एवं न्यायशास्त्र का महानिष्णात विद्वान् होगा।

१०. अतः हे देवानुप्रिये! तुमने उदार स्वप्नों को देखा है। हे देवानुप्रिये! यावत् आरोग्य, संतोष, दीर्घायु, मंगल और कल्याण करने वाले स्वप्नों को तुमने देखा है।" इस प्रकार वह स्वप्नों की वार-वार प्रशंसा करने लगा।

११. तदनन्तर वह देवानन्दा ब्राह्मणी ऋषभदत्त के पास (मुख) से स्वप्नों के फलों को

Every desirable quality, sign and symptom of auspiciousness will be manifest on his person.

9. When, growing out of infancy, he will reach the threshold of manhood with a ripening intellect, your son will become learned in many disciplines. He will master the four *Vedas:* the *Ṛgveda*, the *Yajurveda*, the *Sāmaveda*, the *Atharvaveda* with *Itihāsa* as the fifth and *Nighaṇṭu* as the sixth *Veda*. He will also become versed in other disciplines connected with Vedic lore such as the *Vedāṅgas*, the *Upāṅgas* and the secret doctrines *(rahasya)*. His study will be deep in comprehension and retentiveness. He will have a penetrating knowledge of *Ṣaḍaṅga*, *Ṣaṣṭitantra*, *Sāṁkhya*, *Śikṣā*, *Kalpa*, grammar, metrics, etymology, astronomy and other branches of Brahmanical learning. He will also be versed in Śramaṇic lore.

10. Therefore, I say, O beloved of gods, that you have seen bountiful dreams, dreams that augur good.

11. These words gladdened Devānandā's heart. She again bowed to Ṛṣabhadatta with folded palms and exclaimed:
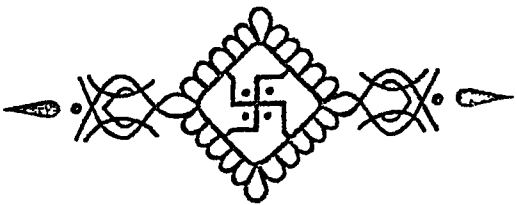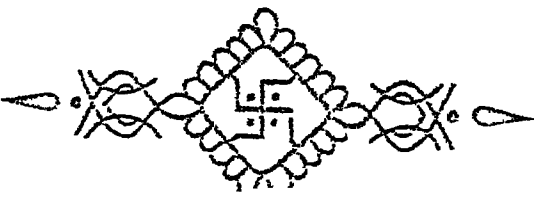
सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिर-सावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तं माहणं एवं वयासी ॥११॥

एवमेयं देवाणुप्पिया !, तहमेयं देवाणुप्पिया !, अवितहमेयं देवाणुप्पिया !, असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया !, इच्छियमेयं देवाणुप्पिया !, पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया !, इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया !, सच्चे णं एसमट्ठे, से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, सम्मं पडिच्छित्ता उसभदत्तेणं माहणेणं सद्धिं ओरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरति ॥१२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीस-विमाणसयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे
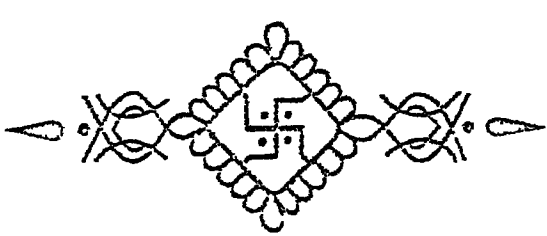
सुनकर, समभकर हर्षित हुई, सन्तुष्ट हुई। यावत् दशनखों एवं करपल्लवों को साथ मिलाकर मस्तक पर आवर्त्त करती हुई अंजलि शिर से लगा ऋषभदत्त ब्राह्मण को इस प्रकार कहने लगी :

१२. "हे देवानुप्रिय ! आपने जिन स्वप्नों का फल कहा है, वह इसी प्रकार है। हे देवानुप्रिय ! इनका फल उसी प्रकार है। हे देवानुप्रिय ! यह सर्वथा सत्य है। हे देवानुप्रिय ! यह संदेहरहित है। हे देवानुप्रिय ! यह इच्छित–अभिलपित है। हे देवानुप्रिय ! यह प्रतीच्छित–प्रमाणभूत है। हे देवानुप्रिय ! यह इच्छित और प्रतीच्छित है। हे देवानुप्रिय ! इनका जो अर्थ-फल आप कहते हैं, वह सत्य है और मैं इसी प्रकार इन स्वप्नों का फल स्वीकार करती हूँ।" इन स्वप्नों का फल पूर्णतया मान्य कर वह देवानन्दा ऋषभदत्त ब्राह्मण के साथ मानवोचित उदार-श्रेष्ठ भोगने योग्य सुखों का उपभोग करती हुई रहने लगी।

१३. उस काल और उस समय में शक्र, देवेन्द्र, देवराज, वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्धलोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानों का स्वामी, ऐरावण नामक हाथी पर बैठने वाला, सुरेन्द्र, रजरहित गगन - सदृश निर्मल वस्त्रों को धारण करने वाला,

12. "You are uttering the truth, O beloved of gods, you are expressing a certainty. What you say is inevitable without a shred of doubt. And it is desirable, O beloved of gods, extremely desirable, it is desirable beyond compare." With these words Devānandā acclaimed her husband's prognostication of the dreams and lived happily with Ṛsabhadatta enjoying bountifully the pleasures which fall to the lot of man.

13. During that time, at that moment, Indra the thousand-eyed king of gods was seated on his throne named *Śakra*, in his council-hall called *Sudharma*. Indra is the Lord of the Southern Region. He possesses thirty-two hundred-thousand *vimānas*. He rides on the elephant, *Airāvaṇa*. He is celebrated through many epithets. He is called the Wielder-of-the-Thunderbolt, Destroyer-of-Ungodly-Cities, *Performer-of-Hundred-Sacrifices*, Ruler-over-Clouds and Arch-Enemy-of-the Demon-Pāka. Indra was sitting in counsel on the *vimāna*, *Saudharmāvataṁsaka* in the celestial sphere called *Sudharma*; his body glowed with light and he was wearing garments spotless as the sky. On his
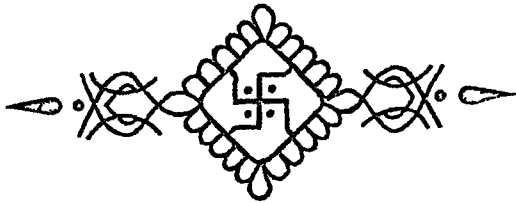
आलइयमालमउडे नवहेम-चारु-चित्त-चंचल-कुंडल-विलिहिज्जमाणगंडे भासुरबुंदी पलंबवणमाले सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगे विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि [निसण्णे] ॥१३॥

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणवाससयसाहस्सीणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं,
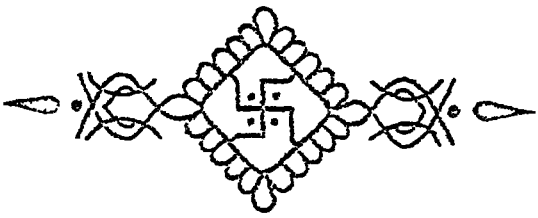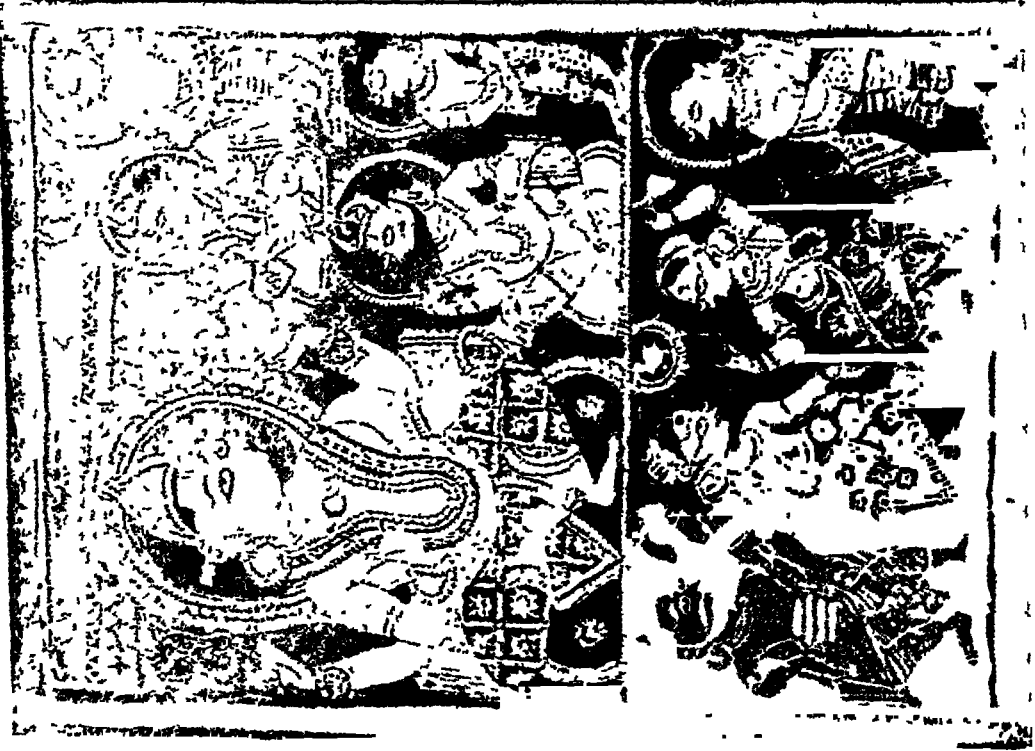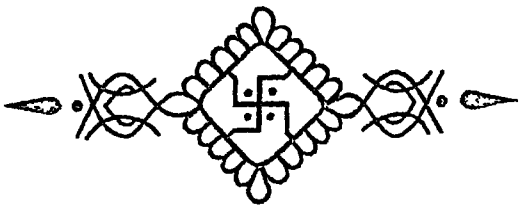
यथोचित रीति से माला और मुकुट को धारण करने वाला, जिसके कपोलद्वय स्वर्ण के नवनिर्मित, सुन्दर, चंचल, चित्रविचित्र और चलायमान कुण्डल-युग्म की प्रभा से प्रदीप्त हैं, जिसका शरीर ओज से देदीप्यमान हो रहा है, जिसके कण्ठ में प्रलम्बमान (पैरों तक लटकती हुई) वन-पुष्पों की माला है, जो सौधर्म कल्प (देवलोक) के सौधर्मावतंसक नामक विमान की सुधर्म सभा में शक्र नामक सिंहासन पर बैठा हुआ है।

१४. वह इन्द्र वहां बत्तीस लाख विमानों, चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों,

cheeks, softly touching them, hung trembling earrings of shining new gold, wrought with marvellous artistry. A wreathed crown was on his head and a garland of wild flowers hung down his chest.

14. Indra had eight chief queens, each with her own retinue. Around him were body-guards numbering four times eighty-four thousand. Seven army-

चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, चउण्हं चउरासीए आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीय-वाईय-तंतीतल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुपडह-वाइयरवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥१४॥
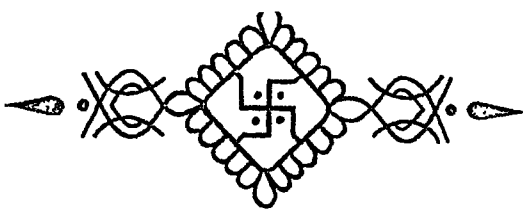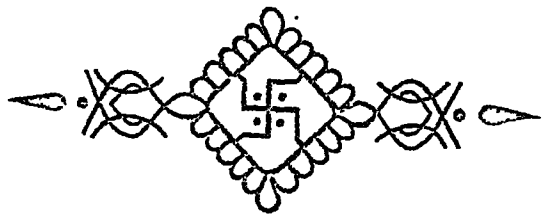
इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे २ पासइ, तत्थ [णं] समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिसि
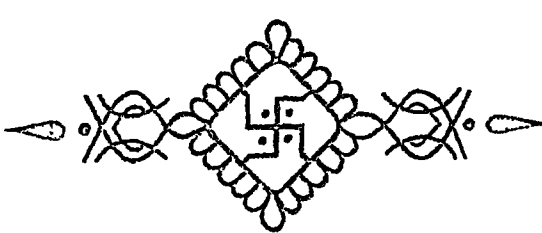
चार लोकपालों, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों (प्रमुख पट्टरानियों), तीन परिषदों (सभाओं), सात सेनाओं, सात सेनाधिपतियों, तीन लाख छत्तीस हजार अंगरक्षक देवों तथा सौधर्मकल्प में रहने वाले और भी अनेक वैमानिक देवों एवं देवियों पर आधिपत्य करता है। वह उन सभी का अग्रेसर, पालक, स्वामी, भर्त्ता-पोषक और महत्तर-महामान्य है। वह इन सभी देवों को अपने प्रमुख सेनापतियों द्वारा अपने आदेश प्रदान करने वाला है। इस प्रकार आज्ञा प्रदान करता हुआ और अपनी प्रजा का पालन करता हुआ तथा निरन्तर उच्च ध्वनि वाले नाटक, संगीत, मुखरित वीणा, करताल, त्रुटित, मेघ के समान गंभीर रव-शब्द करने वाले मृदंग, उत्तम जाति के पटह-ढोल, इन सभी के मधुर स्वरों को सुनता हुआ और भोगने योग्य दिव्य भोगों का उपभोग करता हुआ वह इन्द्र रहता है।

१५. वह इन्द्र अपने विपुल अवधिज्ञान से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की ओर पुनः पुनः देखता है। वहां वह श्रमण भगवान् महावीर को जम्बूद्वीपस्थ भारतवर्ष के दक्षिणार्ध भरत के माहणकुण्डग्राम नगर में कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में

chiefs with their seven armies served under him. He ruled over the gods of the group of thirty-three (*trāyastriṁśa*), the eighty four thousand *sāmānika* gods who were his equals in glory, the denizens of the thirty two thousand *vimānas* and a host of other gods and goddesses who lived in the celestial sphere called *Sudharma* and in various *vimānas*. Among these Indra was the greatest. He was the leader, the chief, the master and also the guardian. He commanded his armies and looked after his people. He enjoyed great heavenly pleasures amidst surroundings that reverberated with the sound of song and dance and of music made by strings, hand cymbals, horns, the deeptoned *mṛdaṅga*-drum and the softvoiced *paṭaha*-drum.
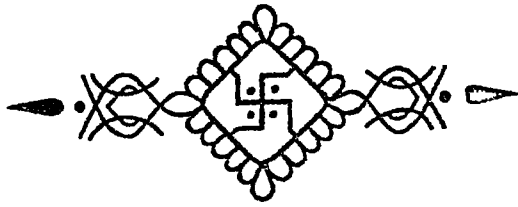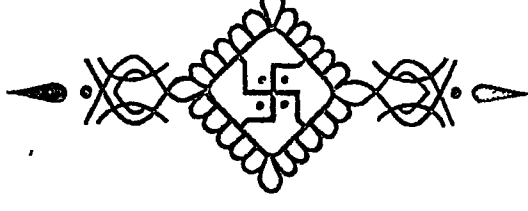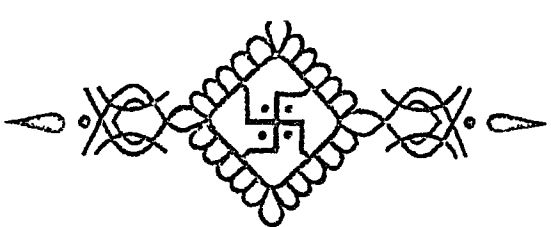
गब्भत्ताए वक्कंतं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिते [णंदिए परमाणंदिए] पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए धाराहय-नीवसुरहि-कुसुमचंचुमालइय-ऊससिय-रोमकूवे वियसियवर-कमलनयणवयणे पयलिय-वर-कडग-तुडिय-केऊर-मउड-कुंडल-हारवि-रायंत-वच्छे पालंब-पलंबमाण-घोलंत-भूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेरुलिय-वरिट्ठ-रिट्ठअंजण-निउणोवियमिसिमि-सिंत-मणिरयण-मंडियाओ पाऊयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता अंजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ-

गर्भरूप में उत्पन्न हुए देखता है। देखकर, उसका हृदय हर्षित, तुष्ट, आनन्दविभोर [परमानन्दित एवं मन प्रीति से ओतप्रोत] हो जाता है। वह परम सौमनस्य को प्राप्त करता है। हर्ष-वश उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। मेघधारा से सिंचित कदम्ब के सुगन्धित एवं सुविकसित पुष्प की केसर के समान उसका रोम-रोम पुलकित हो जाता है। उत्फुल्ल उत्तम कमल के समान उसके नेत्र और मुख प्रफुल्लित हो जाते हैं। इस हर्ष के कारण उसके पहने हुए श्रेष्ठ कटक (कड़े), पहुंची, केयूर-भुजबन्ध, मुकुट, कुण्डल और वक्ष में शोभित हार हिल उठते हैं। लम्बे लटकते हुए और पुनः पुनः दोलायमान आभूषणों को धारण किया हुआ सुरेन्द्र ससम्भ्रम--हठात् त्वरितगति से शीघ्रतापूर्वक सिंहासन से उठ कर खड़ा हो जाता है। सिंहासन से उठ कर पादपीठ से नीचे उतरता है। पादपीठ से नीचे उतर कर वह कुशल कारीगरों द्वारा वरिष्ठ वैडूर्य और अंजन रत्नों से निर्मित तथा चमचमायमान मणिरत्नों से जटित अपनी पादुका को उतारता है। पादुका को उतार कर वह दुपट्टे से उत्तरासण धारण करता है। उत्तरासण धारण करके अंजलि से मुकुलित अग्रहाथ वाला वह इन्द्र तीर्थंकर के सम्मुख सात-आठ
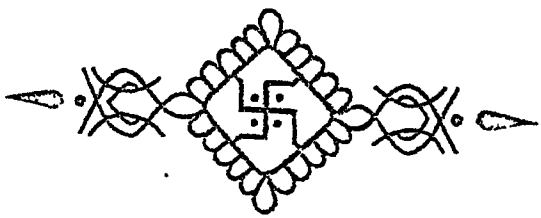
15. Indra kept constant watch over the continent of Jambudvīpa with his all-embracing, super-sensory and almost omniscient vision. He saw that *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra had entered the womb of Devānandā, wife of Ṛṣabhadatta, who lived in the land of Bhārata and was filled with joy, content-ment, bliss. He rejoiced and was transported with delight, bliss and ecstasy. His mind overflowed with the thrill of elation, causing the hair of his body to stand erect like a fragrant *kadamba* flower at the touch of rain. His face and eyes beamed like lotuses in full bloom. Hastily (with an eager flurry born of deference), he got up from the throne in all his finery. His priceless bejewelled ornaments, bracelets, wristlets, the *keyura* of the upper arm, ear-rings, necklaces and the crown—all shook with his sudden movement. His low-hanging garlands were thrown against each other in confused medley. Hurriedly, he climbed down the footstool of his throne and removed his shoes which were skilfully studded with glowing jewels and precious stones such as *vaiḍūrya*, *variṣṭha*, *riṣṭha*, and *anjaña*. He flung his shawl over his left shoulder and with palms folded to form a bud, he took seven or eight steps in
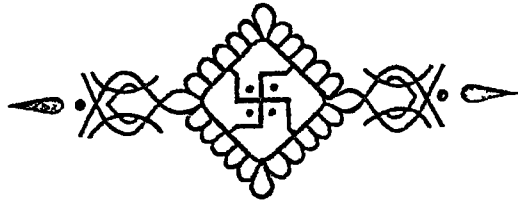
पयाइं अणुगच्छइ, सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, वामं जाणुं अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडियथंभियाओ भुयाओ साहरति, साहरित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ।।१५।।

नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थगराणं सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं, धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं
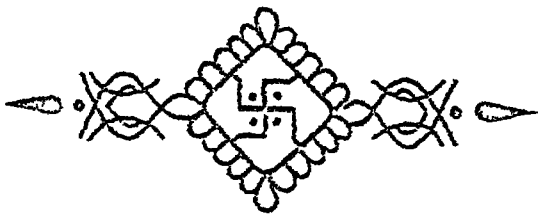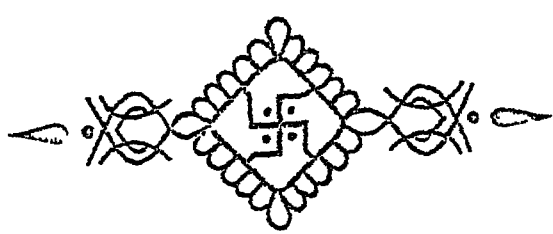
कदम आगे जाता है। सात-आठ कदम आगे जाकर वायें घुटने को ऊंचा करता है। वायें घुटने को ऊंचा करके वह दाहिने घुटने को भूमि पर संकुचित कर तीन वार मस्तक को पृथ्वी पर लगाता है। मस्तक को तीन वार पृथ्वी पर लगा कर किंचित् सीधा वैठता है। सीधा वैठकर, कटक (कड़े), त्रुटित (पंहुंची) शब्द रहित स्तंभित-सी हो जाय इस प्रकार दोनों भुजाओं को संकुचित करता है। दोनों भुजाओं को संकुचित कर, दसों नाखून एक दूसरे से संलग्न रहें, इस प्रकार दोनों हथेलियों को शिर से स्पर्श कर, आवर्तकर अंजलि-वद्ध हो वह इस प्रकार वोला :

१६. अरहंत भगवान् को नमस्कार हो। धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ (धर्मतीर्थ) की स्थापना करने वाले, स्वतः सम्यक् वोध प्राप्त करने वाले, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक कमल के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितकारक, लोक में दीपक के समान, लोक में उद्योत-प्रकाश करने वाले, अभय देने वाले, ज्ञाननेत्र देने वाले, सिद्धिमार्ग के दायक, शरण देने वाले, जीवन–संयम जीवन देने वाले, वोधि–सम्यक्त्व देने वाले, धर्म के देने वाले, धर्म की देशना देने वाले, धर्म के नायक, धर्म रूप रथ को चलाने में सारथि के समान,

the direction of the Tīrthaṅkara. Then bending his left knee forward and placing his right knee on the ground, he thrice touched the floor with his forehead.

Having done this, he lifted his braceleted arms, joined his palms together—all ten fingers touching-and placed them on his forehead in a gesture of reverence. And he addressed the Tīrthaṅkara thus :

16. "My obeisance to my Lords, the Arhats,
the prime ones, the Tīrthaṅkaras, the enlightened ones,
the best of men, the lions among men,
the exalted elephants among men, lotus among men.
Transcending the world they rule the world,
think of the well-being of the world
and are like lamps unto the world.
Illuminating all, they dispel fear,
bestow vision, show the path,
give shelter, life, enlightenment.
Obeisance to the bestowers of *dharma*,
the teachers of *dharma*,
the leaders of *dharma*,
the charioteers of *dharma*,
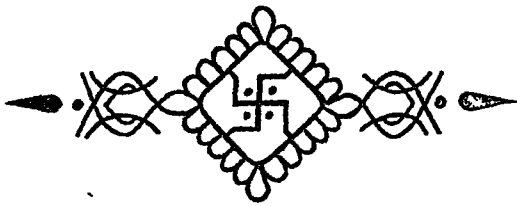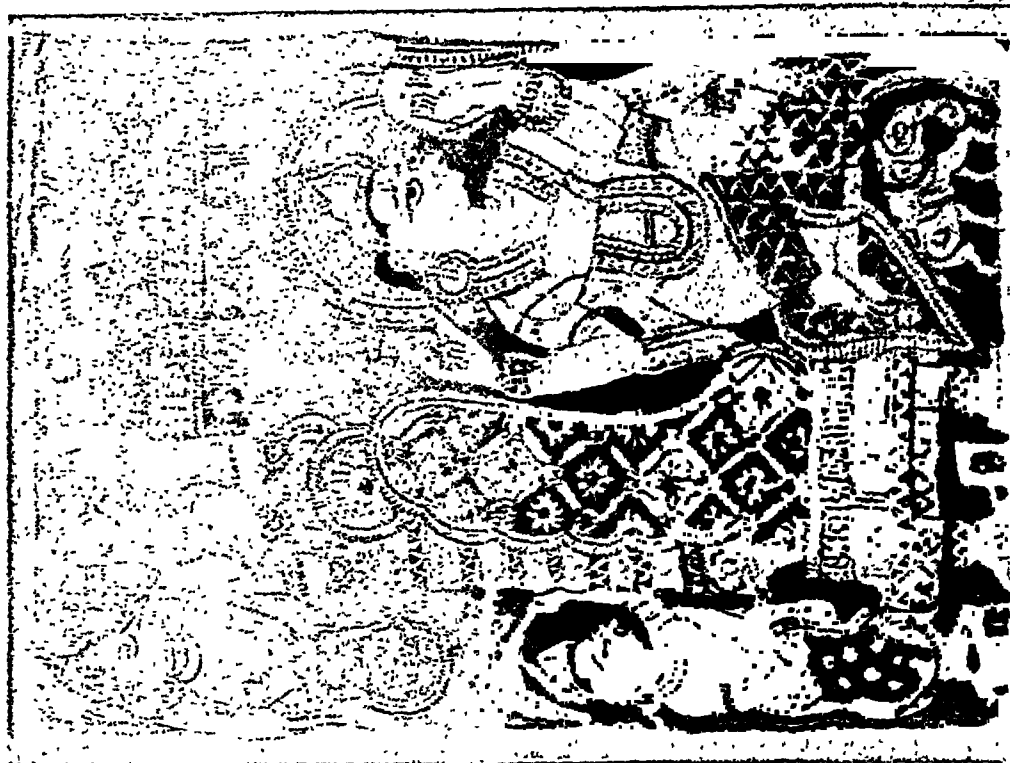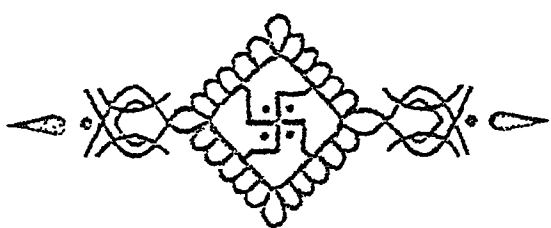
धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं,
दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा
अप्पडिहय वरनाणदंसणधराणं
वियट्टछउमाणं, जिणाणं जाव-
याणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं
बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं,
सव्वन्नूणं सव्वदंसीणं, सिवमय-
लमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाह-
मपुणरावत्ति सिद्धिगइनामधेयं
ठाणं संपत्ताणं [नमो जिणाणं
जियभयाणं]।
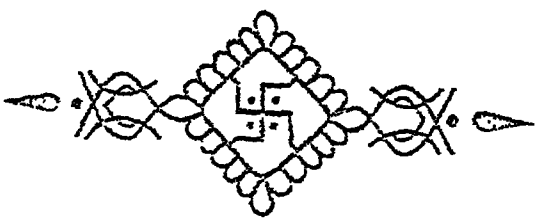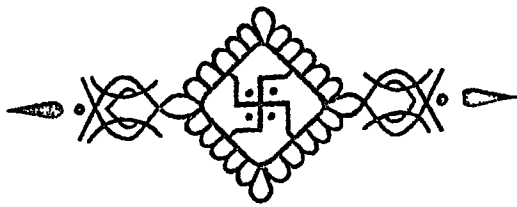
चारों गति का नाश करने वाले श्रेष्ठ धर्म-चक्रवर्ती, भव-समुद्र में द्वीप के समान, रक्षण देने वाले, शरण देने वाले, अववोघ एवं आधार-अवलंवन देने वाले, अप्रतिहत–अस्खलित श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले, छाद्मस्थ्य अर्थात् घातीकर्मों से रहित, राग-द्वेषादि अंतरंग शत्रुओं को जीतने वाले, दूसरों को रागद्वेषादि शत्रुओं से जिताने वाले, संसार समुद्र से तिरे हुए, दूसरों को संसार सागर से तारने वाले, बोध पाए हुये, दूसरों को बोध देने वाले, मुक्ति को पाये हुए, दूसरों को मुक्तिदायक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिवरूप, अचल–स्थिररूप, रोग रहित, अनन्त–अन्तरहित, अक्षय–क्षयरहित, अव्यावाध–वाधा-पीड़ा रहित, अपुनरावर्त–जहां पहुंचने के पश्चात् वापिस लौटना नहीं पड़ता ऐसी सिद्धिगति नामक स्थान पर पहुंचे हुए [भयों को जीतने वाले जिन भगवान् को मेरा नमस्कार हो।]

the monarchs of the four regions of *dharma*.
To them, who have uncovered the veil
and have found unerring knowledge and vision,
the islands in the ocean,
the shelter, the goal, the support.
Obeisance to the Jinas—the victors—
who have reached the goal
and who help others reach it.
The enlightened ones, the free ones,
who bestow freedom,
the Jinas victorious over fear,
who have known all and can reveal all,
who have reached that supreme state
which is unimpeded, eternal, cosmic and beatific
which is beyond disease and destruction,
where the cycle of birth ceases: the goal,
the fulfilment.
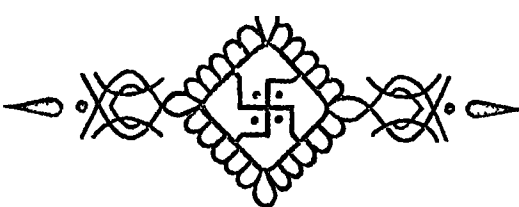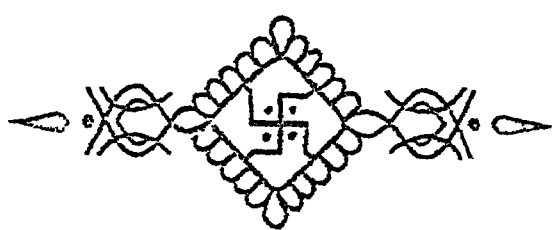
नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स चरमतित्थयरस्स पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठस्स जाव संपाविउकामस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे ॥१६॥

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—नो खलु एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सइ, जं णं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा किविणकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा भिक्खागकुलेसु वा माहणकुलेसु वा आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा। एवं खलु अरहंता वा

तीर्थ की आदि-प्रवर्तना करने वाले, चरम—अन्तिम तीर्थंकर, पूर्व में हुए तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट और पूर्व में वर्णित समग्र गुणों से युक्त यावत् अपुनरावृत्ति—सिद्धिगति को प्राप्त करने की अभिलाषा करने वाले श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो। यहां स्वर्ग में रहा हुआ मैं वहां – देवानंदा की कुक्षि में रहे हुए भगवान् को वन्दन करता हूं। वहां रहे हुए भगवान् यहां रहे हुए मुझे देखें। इस प्रकार कहता हुआ देवराज इन्द्र, श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन करता है और नमस्कार करता है। वन्दन और नमस्कार कर, अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठता है।

१७. तत्पश्चात् उस शक्र देवेन्द्र-देवराज को हृदय में इस प्रकार का चिन्तनरूप, अभिलाषारूप, मनोगत संकल्प उत्पन्न होता है – "निश्चित् रूप से अतीत में न कभी ऐसा हुआ है, वर्तमान में न कभी ऐसा होता है और न कभी भविष्य में ऐसा होगा। अरहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव अन्त्यकुलों – हीनकुलों, प्रान्तकुलों – अधम-कुलों, तुच्छकुलों, दरिद्रकुलों, कृपणकुलों, भिक्षुक-भिखारियों के कुलों तथा माहण—ब्राह्मण कुलों में न कभी आए हैं, न कभी आते हैं और न कभी आयेंगे। इस प्रकार निश्चय ही अरहंत,

My obeisance to the *Śramaṇa* Bhagvān Mahāvīra
The Initiator, the ultimate Tīrthṅkara,

who has come to fulfil the promise of earlier Tīrthaṅkaras.

I bow to him who is there—in Devānandā's womb
from here—my place in heaven.

May he take cognizance of me".

With these words, Indra paid his homage to *Śramaṇa* Bhagvān Mahāvīra and facing east, resumed his seat on the throne.

17. Indra, the supreme god, the king of gods cogitated within himself with deep concern and formed a resolution : "it has never happened, it cannot happen and it never will happen that an Arhat, a Cakravartī, a Baladeva or a Vāsudeva will be born in a minor clan or a fringe-clan or a lowly, destitute or miserly clan, a clan of beggars or of *brāhmaṇas*—this is something that has never been; it cannot be and will never be. Arhats, Cakravartīs, Baladevas and Vāsudevas have

चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइण्णकुलेसु वा इक्खागकुलेसु वा खत्तियकुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा ॥१७॥

अत्थि पुण एसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं उस्सपिणी-ओसप्पिणीहिं वितिक्कंताहिं कयाइं समुप्पज्जति, (ग्रं. १००) णाम-गोत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिण्णस्स उदएणं जं णं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा भिक्खागकुलेसु वा किविणकुलेसु वा माहणकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइ-स्संति वा, कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कमिंसु वा वक्कमंति वा वक्कमि-

चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव उग्रवंशीय कुलों, भोगवंशीय कुलों, राजन्य कुलों, इक्ष्वाकुवंशीय कुलों, क्षत्रिय कुलों, हरिवंशीय कुलों तथा इसी प्रकार के अन्य भी विशुद्ध जाति, विशुद्ध कुल तथा विशुद्ध वंश वाले कुलों में उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे।
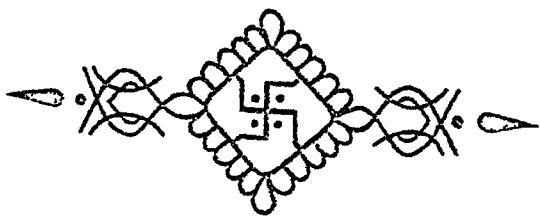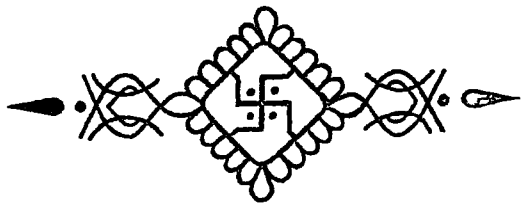
१८. किन्तु लोक में इस प्रकार की आश्चर्यजनक घटना भी अनन्त उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के व्यतीत हो जाने के पश्चात् घटित होती है, (ग्रन्थाग्रन्थ १००) जबकि नाम और गोत्रकर्म के क्षय न होने से, इन कर्मों की निर्जरा नहीं होने से तथा इन कर्मों के उदय में आने पर वे अरहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव अन्त्य कुलों, प्रान्त कुलों, तुच्छ कुलों, दरिद्र कुलों, भिक्षुक कुलों, कृपण कुलों और ब्राह्मण कुलों में अतीत में आए हैं, वर्तमान में आते हैं और भविष्य में आवेंगे अर्थात् उक्त हीनादि कुलों वाली माताओं की कुक्षि में गर्भरूप में अतीत में उत्पन्न हुए हैं, वर्तमान में उत्पन्न होते हैं, और भविष्य में उत्पन्न होंगे

always been born in powerful affluent or princely clans: in the clans of the Iksvākus, in *kṣatriya* clans, in the clans of the Harivaṁśas or in similarly pure and nobly-bred clans or families.

18. "But in the ever-moving time-cycle of endless *avasarpiṇīs* and *utsarpiṇīs*, it is possible that a prodigious exception might occur and an Arhat, a Chakravarti, a Baladeva or a Vāsudeva might enter the womb of a woman from an undeserving clan owing to the potency of an enduring *yet-to-be-destroyed karma*-particle, associated with name and *gotra*.
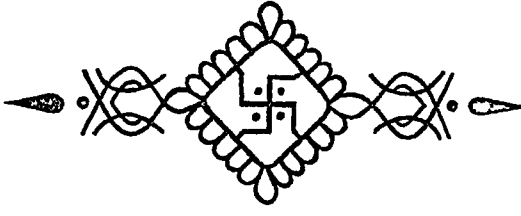
स्संति वा, नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा निक्खमंति वा निक्खमिस्संति वा ॥१८॥

अयं च णं [समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे] माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥१९॥

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं, अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अन्तकुलेहिंतो पंतकुलेहिंतो तुच्छकुलेहिंतो दरिद्दकुलेहिंतो भिक्खागकुलेहिंतो किविणकुलेहिंतो वा तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइन्नकुलेसु वा [नायकुलेसु वा] खत्तियकुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा अण्णतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइ-

परन्तु उक्त निम्नकुलों वाली माताओं के उदर (योनि) से अरहंतादि ने न कभी जन्म लिया है, न कभी जन्म लेते हैं और न कभी जन्म लेंगे।
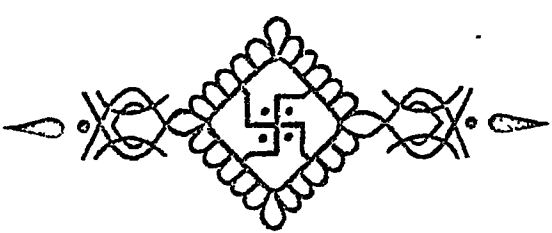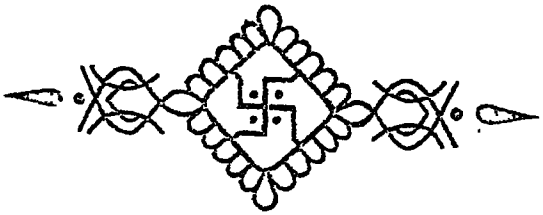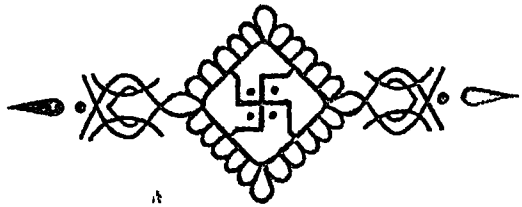
१९. और ये [श्रमण भगवान् महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में] माहणकुण्डग्राम नामक नगर में कोडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालन्धर-गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भरूप में उत्पन्न हुए हैं।

२०. तो अतीत काल, वर्तमान काल और भविष्य काल के शक्र-देवेन्द्र-देवराजों का यह जीताचार–कर्त्तव्य है कि वे अरहंत भगवान् को तथाप्रकार के अन्त्यकुलों, प्रान्तकुलों, तुच्छकुलों, दरिद्रकुलों, भिक्षुककुलों और कृपणकुलों से हटाकर, तथाप्रकार के उग्रकुलों, भोगकुलों, राजन्यकुलों, [ज्ञातकुलों,] क्षत्रियकुलों, हरिवंशकुलों अथवा तथाप्रकार के अन्य भी विशुद्ध जाति

But they have never been born from the womb of such a woman; they are never thus born, nor will they ever be."

19. "Now it so happens that *Śramaṇa* Bhagvān Mahāvīra has entered the womb of the *brāhmaṇa*-woman Devānandā, of Jālandhara *gotra*, wife of the *brāhmaṇa* Ṛṣabhadatta of the Koḍāla *gotra*, who lives in the *brāhamaṇ*—sector of the town of Kuṇḍagrāma, in the land of Bhārata on the continent of Jambudvīpa."

20. "Now it is an established practice among Indras, past, present and future, to see that the embryo of an Arhat is taken from the womb of a woman belonging to a minor clan and is transferred to the womb of a woman belonging to a noble clan."
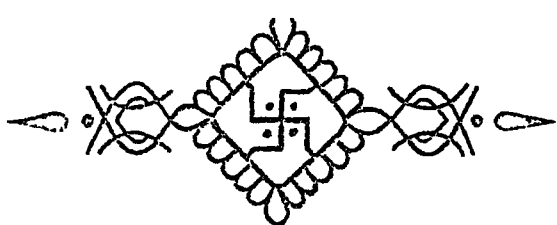
कुलवंसेसु वा साहराक्त्तिए। तं सेयं खलु मम वि समणं भगवं महावीरं चरमतित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं माहणकुंडग्गामाओ णगराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराक्त्तिए। जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराक्त्तिए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावेइ, हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावित्ता एवं वयासी—॥२०॥
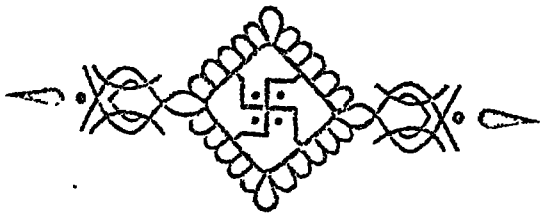
कुल और वंशों में संहृत-स्थापित करें। अत: मेरे लिये यह निश्चितरूप से श्रेयस्कर है कि पूर्व तीर्थकरों द्वारा निर्दिष्ट, श्रमण भगवान् महावीर चरम तीर्थकर (जीव) को माहणकुण्डग्राम नामक नगर से कोडाल-गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालन्धरगोत्रीया देवानन्दा की कुक्षि से (संहृत कर), क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर में ज्ञातवंशी काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की पत्नी वाशिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भरूप में संचारित–स्थापित करूं। और जो उस त्रिशला क्षत्रियाणी का गर्भ है, उसे जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भरूप में स्थापित करूं।" शक्र इस प्रकार पर्यालोचन करता है। इस प्रकार पर्यालोचन करके पैदल सेना के अधिपति हरिनैगमेषी देव को बुलाता है। पदातिसेना के सेनापति हरिनैगमेषी को बुलाकर वह इस प्रकार कहता है :

I should therefore have the embryo of the last Tīrthaṅkara taken from the womb of Devānandā to that of Triśalā, the *kṣatriya*-lady of Vāsiṣṭha *gotra*, belonging to the Jñāta clan, living in the *kṣatriya*-sector of the same town of Kuṇḍagrāma. I should in exchange have the embryo now in the womb of Triśalā carried to the womb of Devānandā." Having formed this resolution, Indra called the chief of his foot-soldiers, the god Harinaigameśī and apprised him of his thoughts:
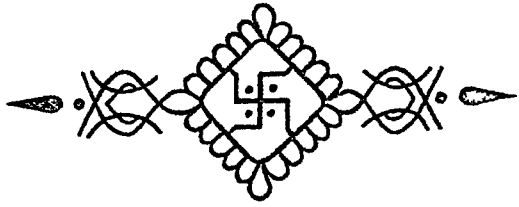
एवं खलु देवाणुप्पिया ! न एयं भूयं, न एयं भव्वं, न एयं भविस्सं, जं णं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा किविणकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा। एवं खलु अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइन्नकुलेसु वा [नायकुलेसु वा] खत्तियकुलेसु वा इक्खागकुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा ॥२१॥

अत्थि पुण एसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं उस्सप्पिणी-[ओसप्पिणीहिं] विइक्कंताहिं समुप्पज्जति, नामगोत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिण्णस्स उदएणं जं णं अरहंता वा
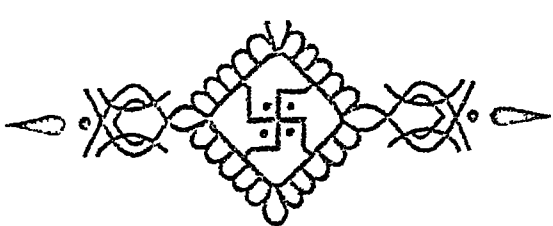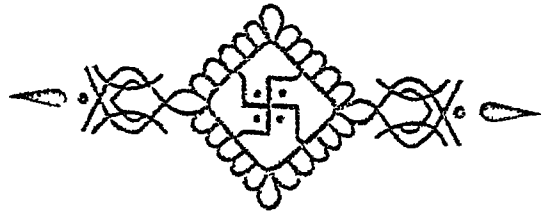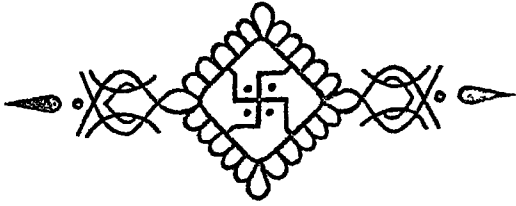
२१. "हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार निश्चय ही अतीत में न कभी ऐसा हुआ है, वर्तमान में न कभी ऐसा होता है और न भविष्य में कभी ऐसा होगा। अरहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव अन्त्यकुलों, प्रान्तकुलों, कृपणकुलों, दरिद्रकुलों, तुच्छकुलों, भिक्षुककुलों में न कभी आए थे, न कभी आते हैं और न कभी आयेंगे। यह निश्चय है कि अरहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव उग्रकुलों, भोगकुलों, राजन्यकुलों [ज्ञातकुलों] क्षत्रिय-कुलों, इक्ष्वाकुकुलों, हरिवंश कुलों और तथाप्रकार के विशुद्ध जाति-कुलवंशों में अतीत में आए थे, वर्तमान में आते हैं और भविष्य में आयेंगे।

२२. किन्तु इस प्रकार की आश्चर्यकारी घटना भी अनन्त उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के बीत जाने पर घट जाती है, जब कि नाम और गोत्र-कर्म के क्षीण न होने से, इनका पूर्ण वेदन न होने से, इनकी निर्जरा न होने से और इन नाम-गोत्र कर्म के उदय में आने से वे अरहंत,

21. "O beloved of gods, it has never happened, it cannot happen and it will never happen that an Arhat, a Cakravarti, a Baladeva, or a Vāsudeva will be born in a minor clan or a fringe-clan. They have always been born in noble clans; they are always so born and will always be so born in the future."

22. "It is possible that during the ever-moving time-cycle of endless *avasarpiṇīs* and *utsarpiṇīs*, a prodigious exception might occur and an Arhat,
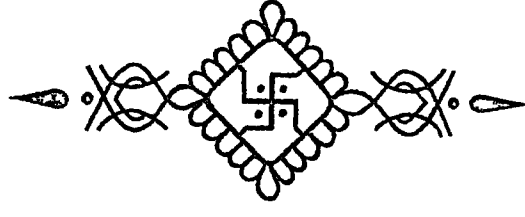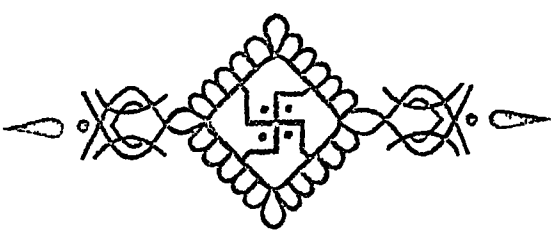
चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छ-कुलेसु वा किविणकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा, आयाइस्संति वा, नो चेव णं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिंसु वा निक्खमंति वा निक्खमिस्संति वा ॥२२॥

अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥२३॥

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो वा अन्तकुलेहिंतो वा पंतकुलेहिंतो वा तुच्छकुलेहिंतो वा किविणकुलेहिंतो वा दरिद्दकुलेहिंतो वा वणीमग्ग-

चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव अन्त्यकुलों, प्रान्तकुलों, तुच्छकुलों, कृपणकुलों, दरिद्रकुलों, भिक्षुककुलों में अतीत में आये हैं, वर्तमान में आते हैं और भविष्य में आयेंगे। किन्तु उन्होंने हीनादि कुलों वाली माता के उदर (योनि) से न कभी अतीत में जन्म लिया था, न कभी वर्तमान में जन्म लेते हैं और न कभी भविष्य में ही जन्म लेंगे।
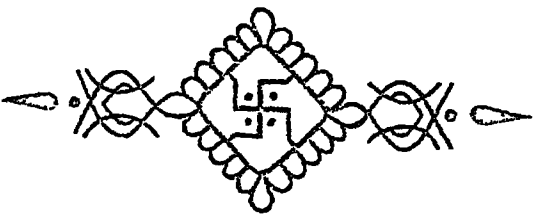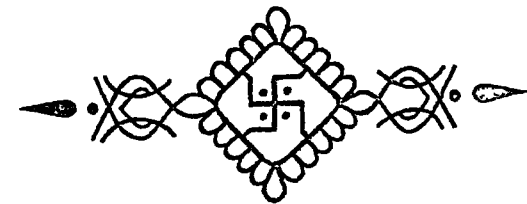
२३. और ये श्रमण भगवान् महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष के माहणकुण्डग्राम नामक नगर में कोडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालन्धर-गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भरूप से उत्पन्न हुए हैं।

२४. तो भूत, वर्तमान और भविष्य काल के शक्र-देवेन्द्र-देवराजों का यह जीताचार — कर्त्तव्य होता है कि, वे अरहंत भगवान् को तथाप्रकार के अन्त्यकुलों, प्रान्त्य-कुलों, कृपणकुलों, दरिद्रकुलों, तुच्छकुलों, वणिक्कुलों

Cakravartī, a Baladeva, or a Vāsudeva might enter the womb of a woman belonging to an undeserving clan, due to the potency of an enduring yet-to-be destroyed *karma*-particle associated with name and *gotra*."

23. "And it so happens that *Śramana* Bhagavān Mahāvīra has entered the womb of the *brāhmana*-woman Devānandā of Jālandhara *gotra*, wife of the *brāhmaṇa* Ṛṣabhadatta of the Koḍāla *gotra*."

24. "Now, it is an established practice among Indras, past, present and future to see that the embryo of an Arhat is taken from the womb of a woman belonging to a minor clan or a fringe-clan and is transferred to the womb of a woman belonging to a noble clan."

कुलेहिंतो वा [जाव माहणकुलेहिंतो] तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा भोग-कुलेसु वा राइण्णकुलेसु वा [नायकुलेसु वा] खत्तियकुलेसु वा इक्खाग-कुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुल-वंसेसु साहरावित्तए ।।२४।।

तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं माहणकुंडग्गा-माओ नयराओ जाव [उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारि-याए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खतियस्स कासवगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराहि,] जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए
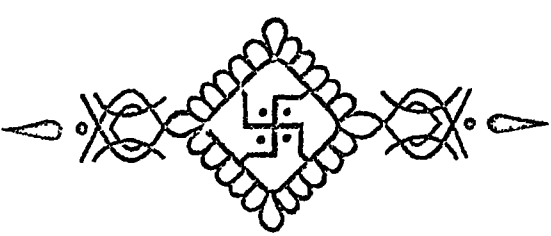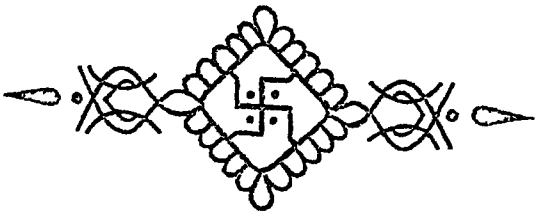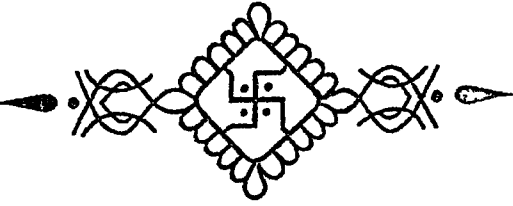
[यावत् ब्राह्मणकुलों] से हटाकर, तथाप्रकार के उग्रकुलों, भोगकुलों, राजन्यकुलों, [ज्ञातकुलों], क्षत्रियकुलों, इक्ष्वाकुकुलों, हरिवंशकुलों अथवा तथाप्रकार के अन्य भी विशुद्ध जाति-कुल वाले वंशों में स्थापन—परिवर्तन कर देते हैं।

२५. हे देवानुप्रिय ! तो तुम जाओ और श्रमण भगवान् महावीर (जीव) को माहणकुण्डग्राम नामक नगर से यावत् [कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से (हटाकर-संहृत कर), क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर में ज्ञातवंशी काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की भार्या वशिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भरूप में स्थापित करो। और] जो उस त्रिशला क्षत्रियाणी का गर्भ है, उसे जालंधर गोत्रीया देवानन्दा

25. Indra then orderd : "go, beloved of gods, carry the embryo of *Śramaṇa* Bhagvān Mahāvīra from the womb of Devānandā to that of Triśalā and transfer the embryo now in the womb of Triśalā to the womb of Devānandā.
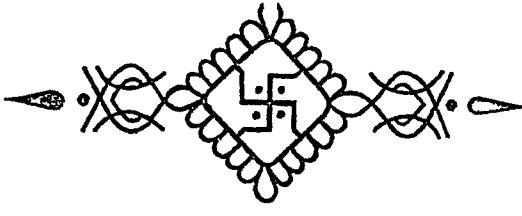
माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भं साहर, साहरित्ता मम एयमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि ॥२५॥

तए णं से हरिणेगमेसी पायत्ताणियाहिवई देवे सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्ठे जाव हयहियए करयल जाव त्ति कट्टु एवं जं देवो आणवेइ [त्ति] आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, एवं पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, तंजहा – रयणाणं वइराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोइरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं [रयणाणं] जायरूवाणं सुभगाणं अंकाणं फलिहाणं
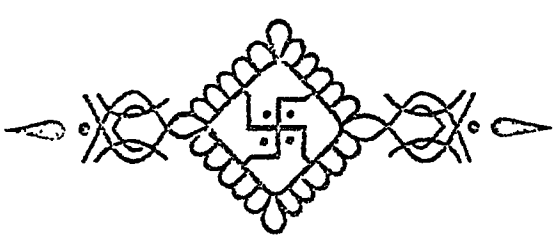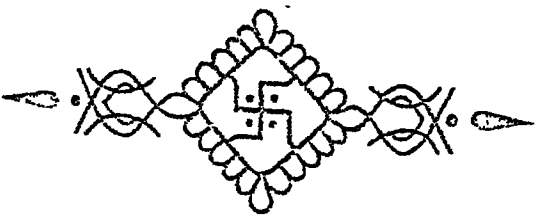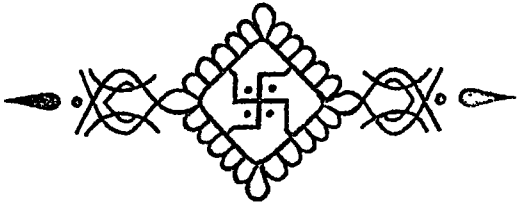
ब्राह्मणी की कुक्षि में स्थापित करो। गर्भरूप में स्थापित करके मुझे यह मेरी आज्ञा तत्काल वापिस करो, अर्थात् मुझे सूचना प्रदान करो।"

२६. तदनन्तर वह पदातिसेना का सेनापति हरिनैगमेषी देव शक्र-देवेन्द्र-देवराज की उक्त आज्ञा को सुनकर प्रसन्न हुआ। यावत् हर्षित हृदय से, यावत् दोनों हथेलियां एकत्रित कर अंजलि जोड़कर "देव, की जैसी आज्ञा" इस प्रकार कहकर वह आज्ञा-वचन को विनय पूर्वक स्वीकार करता है। आज्ञा-वचन को विनय पूर्वक स्वीकार कर वह हरिनैगमेषी देव शक्र-देवेन्द्र-देवराज के पास से निकलता है। निकल कर, उत्तर-पूर्व दिशा अर्थात् ईशानकोण की ओर जाता है। वहां जाकर वैक्रिय समुद्घात कर आत्मप्रदेशों को वाहर निकालता है। वैक्रिय समुद्घात द्वारा आत्मप्रदेशों को वाहर निकाल करके संख्यात योजन का विस्तृत दण्ड निकालता है। यथा – रत्न, वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, ज्योतिरस, अंजन, अंजनपुलक, रजत, जातरूप, सुभग, अंक, स्फटिक और

26. Having received these instructions from Indra, the supreme god, the king of gods, Harinaigameśī, commander of footsoldiers, was exceedingly gladdened with joy. He saluted Indra with folded hands and set forth on his mission. He quickly crossed the north-eastern horizon and exercising his power of transformation, transformed himself into a stick measuring myriads of *yojanas* in length. This stick was composed of various precious stones, precious metals and gems such as *vajra*, *vaiḍūrya*, *lohitākṣa*, *masūragalla*, *haṃsagarbha*, *pulaka*, *saugandhika*, *jyotirasa*, *añjana*, *amjana-pulaka*, silver, gold, *subhaga*, *aṅka*, *sphaṭika*, *and ṛṣṭa*. Harinaigameśī gathered only the subtle essence of these gems and not their gross substance.
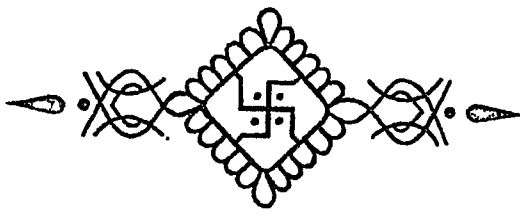
रिट्ठाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पुग्गले परियादियति ॥२६॥

परियादित्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ, उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए छेयाए जयणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे २ तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, जेणेव माहण-कुंडग्गामे नयरे, जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे, जेणेव देवाणंदा माहणी, तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ, करित्ता देवाणंदाए माहणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलइ, ओसोवणिं दलित्ता असुहे पुग्गले

रिष्ट आदि के वादर (स्थूल) स्वरूप के समान स्थूल पुद्गलों को झटकता (निकालता) है और उनके स्थान पर सूक्ष्म तथा साररूप पुद्गलों को ग्रहण करता है।

२७. सूक्ष्म और शुभ पुद्गलों को ग्रहण करके वह पुन: वैक्रिय समुद्घात के द्वारा अपने मूल शरीर से भिन्न दूसरा उत्तर वैक्रिय शरीर वनाता है। दूसरा उत्तर वैक्रिय शरीर वनाकर, वह उत्कृष्ट प्रकार की, त्वरावाली, चपल, वेग के कारण प्रचण्ड, चातुर्यपूर्ण, सावधानीपूर्ण, विशिष्ट वेगवती, उत्कट शीघ्रगामिनी दिव्य देवगति से चलते-चलते तिरछे असंख्य द्वीप समुद्रों के मध्य में होता हुआ जहां जम्बूद्वीप नामक द्वीप है, उसमें जहां भारतवर्ष है, उसमें जहां माहण-कुण्डग्राम नामक नगर है, उसमें जहां ऋषभदत्त ब्राह्मण का घर है और उस घर में जहां देवानन्दा ब्राह्मणी है, वहां पर आता है। वहां पर आकर श्रमण भगवान् महावीर को गर्भस्थ देखते ही प्रणाम करता है। प्रणाम कर परिवार सहित देवानन्दा ब्राह्मणी को अवस्वापिनी निद्रा में सुलाता है। अवस्वापिनी निद्रा (गाढ़ निद्रा) में सुलाकर, वहां रहे हुए अशुभ पुद्गलों को दूर करता है। अशुभ पुद्गलों को

27. Then he exercised his power of transformation for a second time and assumed a form which was beyond transformation. And, forthwith, with a dazzling speed, a quick ready pace and an impetuous, impervious movement, he descended downwards, travelling with a celestial, god-like momentum. He side-stepped innumerable oceans and continents and reached the land of Bhārata situated on the continent of Jambudvīpa. He went directly to the house of Ṛṣabhadatta in the *brāhmaṇa*-sector of the town of Kuṇḍagrāma and came to Devānandā's room. Having espied her, he offered his veneration to *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra and then hypnotized Devānandā and her attendants into a *deep sleep. He effaced from their* persons the subtle particles of unholiness and showered holiness upon them. Then, after asking leave of

अवहरति, अवहरित्ता सुहे पुग्गले पक्खिवति, सुहे पुग्गले पक्खिवित्ता 'अणुजाणउ मे भयवं' ति कट्टु समणं भगवं महावीरं [अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं] करयलसंपुडेणं गिण्हइ, समणं भगवं महावीरं करयलसंपुडेणं गिण्हित्ता जेणेव खत्तियकुंडग्गामे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स गिहे, जेणेव तिसला खत्तियाणी, तेणेव
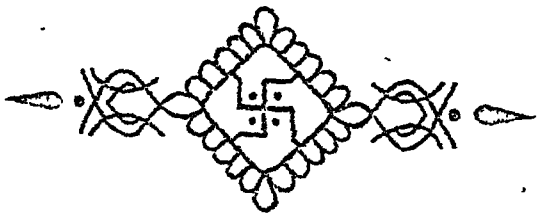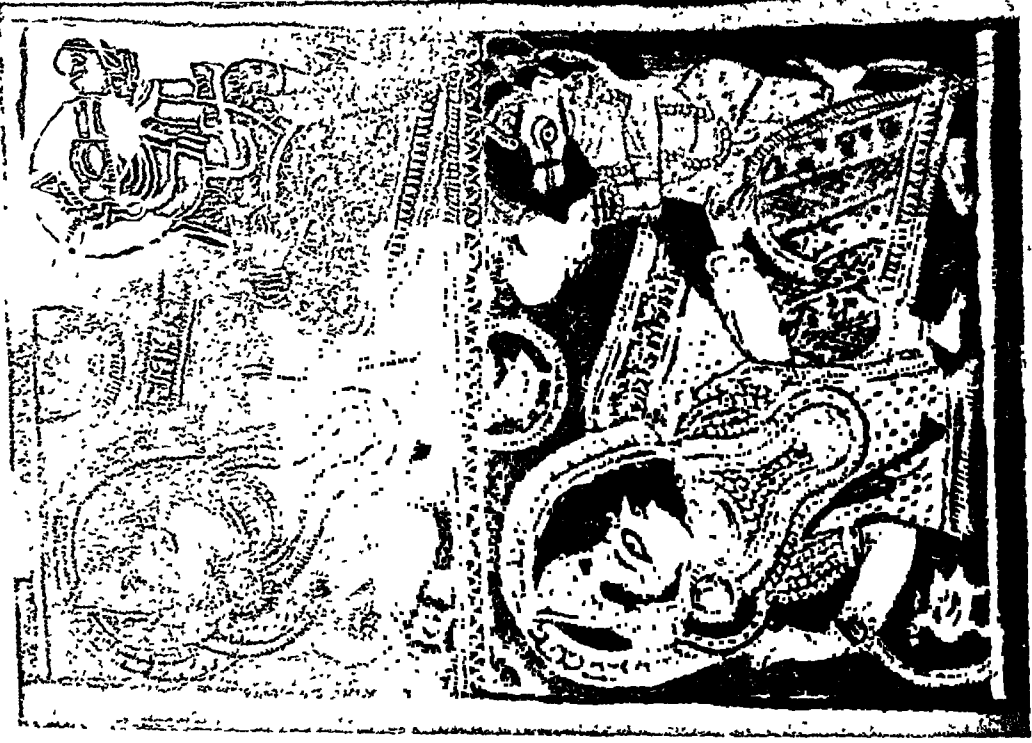
दूर कर शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप करता है। शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप कर – 'भगवन् ! मुझे अनुज्ञा प्रदान करें', यह कहकर श्रमण भगवान् महावीर को [किसी भी प्रकार की पीड़ा न हो इस प्रकार निर्बाधरूप से] हथेलियों के संपुट में ग्रहण करता है। श्रमण भगवान् महावीर को हथेलियों के संपुट में ग्रहण कर, वह जहां क्षत्रिय-कुण्डग्राम नामक नगर है, उसमें जहां सिद्धार्थ क्षत्रिय का घर है, उस घर में जहां त्रिशला क्षत्रियाणी रहती है,
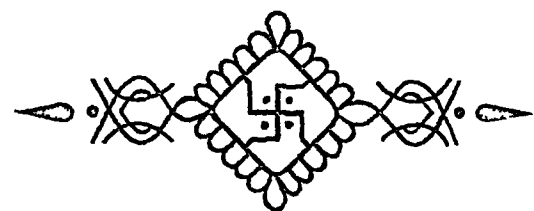
Śramaṇa Bhagavān Mahāvīra, he gently placed him on his palms and carried him to Triśalā at the palace of Siddhārtha, in the *kṣatriya*-sector of Kuṇḍa-grāma. He hypnotized Triśalā and her attendants
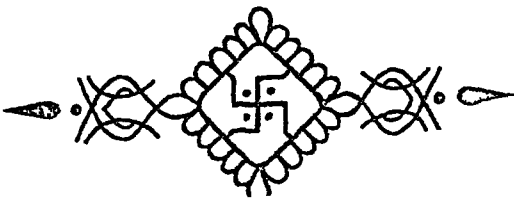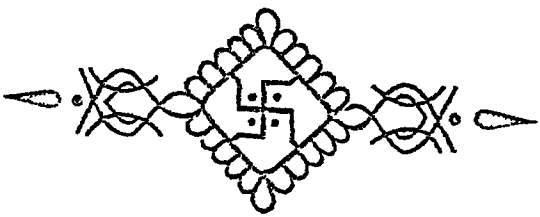
उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलाए खत्तियाणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलइ, ओसोवणिं दलित्ता असुहे पुग्गले अवहरति, असुहे पुग्गले अवहरित्ता सुहे पुग्गले पक्खिवइ, सुहे पुग्गले पक्खिवित्ता समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरति, जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरति, साहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।।२७।।

उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए छेयाए जयणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए, तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जोयणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणे २ जेणामेव सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविंदे देव-

वहां आता है। वहां पर आकर वह परिवार सहित त्रिशला क्षत्रियाणी को अवस्वापिनी निद्रा में सुलाता है। अवस्वापिनी निद्रा में सुलाकर अशुभ पुद्‌गलों को दूर करता है। अशुभ पुद्‌गलों को दूर कर शुभ पुद्‌गलों को फैलाता है। सुगन्धित पुद्‌गलों को फैलाकर, श्रमण भगवान् महावीर को किंचित्‌मात्र भी कष्ट न हो इस प्रकार निर्वाधरूप से त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भरूप में स्थापित करता है तथा त्रिशला क्षत्रियाणी का जो गर्भ है, उसे जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भरूप में स्थापित करता है। स्थापित कर वह हरिनैगमेषी देव जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापिस चला गया।

२८. (वह) उत्कृष्ट प्रकार की त्वरायुक्त, चपल, वेग के कारण प्रचण्ड, चातुर्य युक्त, विशिष्ट वेगवाली, उत्कट, शीघ्र दिव्य देवगति से तिरछे असंख्य द्वीप-समुद्रों के बीचों बीच होता हुआ, हजार-हजार योजन की वक्रगति से ऊपर की ओर चढ़ता-चढ़ता, जहां सौधर्म नामक कल्प में, सौधर्मावतंसक विमान में, शक्र नामक सिंहासन पर शक्र-देवेन्द्र-देवराज

into a deep sleep, and having removed unholy particles, showered holiness upon them. Then he gently placed Bhagavān Mahāvīra in the womb of Triśalā. He then removed the child that lay in Triśalā's womb and carried it to the womb of Devānandā.

28. This accomplished, he returned as he had come with a dazzling speed and reported to Indra who was sitting on his throne in the celestial sphere, Sudharma.
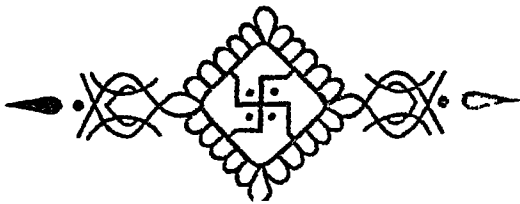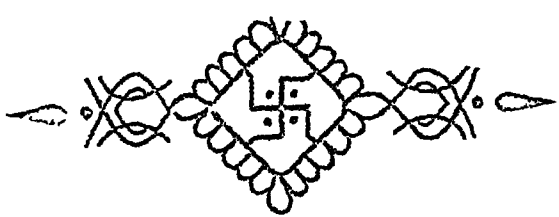
राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो एयमाणत्तिअं खिप्पामेव पच्चप्पिणति ॥२८॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए यावि हुत्था, —साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे न जाणइ, साहरिए मि त्ति जाणइ ॥२९॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले, तस्स णं आसोयबहुलस्स तेरसी-पक्खेणं बासीइराइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणस्स हियाणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमेसिणा सक्कवयणसंदिट्ठेणं माहणकुंडग्गामाओ णगराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तिय-

बैठा हुआ है, वहां पर आता है। आकर, शक्र-देवेन्द्र-देवराज को उसकी आज्ञा शीघ्र ही प्रत्यर्पित करता है अर्थात् आदेशानुसार कार्य सम्पन्न करने की सूचना देता है।
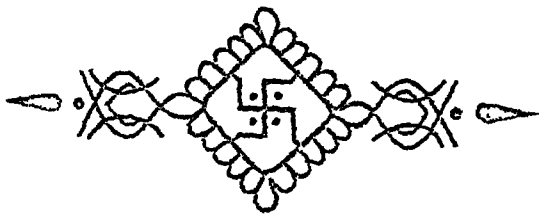
२९. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर तीन (मति-श्रुत-अवधि) ज्ञान से युक्त थे। 'मेरा यहां से संहरण किया जाएगा' यह वे जानते थे। 'संहरण हो रहा है' यह वे नहीं जानते थे, और 'संहरण हो गया है' यह वे जानते थे।

३०. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर को जब वर्षा ऋतु का तीसरा महीना, पांचवां पक्ष आश्विन कृष्ण चल रहा था, तब उस आश्विन कृष्ण त्रयोदशी के दिन, जबकि (उन्हें स्वर्ग से च्युत हुए) बयांसी रात-दिन व्यतीत हो चुके थे और तिरासीवां दिन-रात चल रहा था, उस समय हितानुकम्पी हरिनैगमेषी देव ने शक्रवचनानुसार माहणकुण्डग्राम नगर में से, कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से, क्षत्रिय-

29. At that time, during that moment, *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra had a three-fold awareness : he was aware that he will be transferred, he was not aware of the transfer, but he was aware that he had been transferred.

30/31. At that time, at that moment, when *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra was taken to the womb of Triśalā, it was midnight, the time when
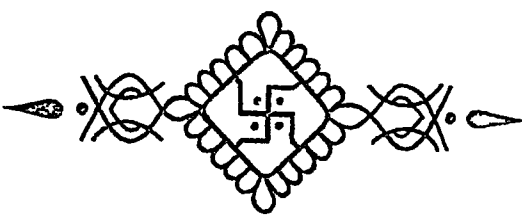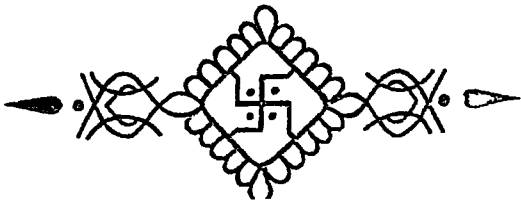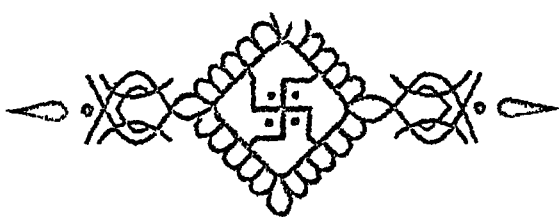
कुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबा-हेणं कुच्छिसि [गब्भत्ताए] साहरिए ॥३०॥

समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए होत्था, साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे न जाणइ, साहरिएमि त्ति जाणइ ॥३१॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालं-धरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरिए, तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमे एयारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे तिसलाए खत्तियाणीए
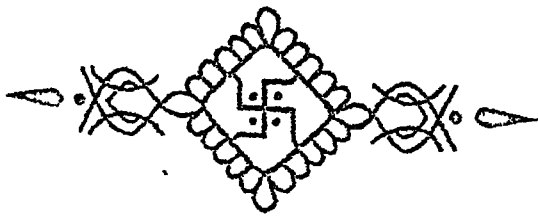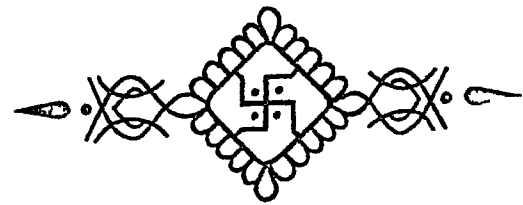
कुण्डग्राम नगर में ज्ञातवंशीय क्षत्रियों में काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की पत्नी वाशिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में मध्यरात्रि के समय हस्तोत्तरा—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग आने पर, लेशमात्र भी बाधा-पीड़ा न हो, इस प्रकार सुखपूर्वक कुक्षि [गर्भरूप] में स्थापित किया ।

३१. श्रमण भगवान् महावीर तीन ज्ञान से युक्त थे । 'मेरा यहां से संहरण होगा' ऐसा वे जानते थे । 'मेरा संहरण हो रहा है' ऐसा वे नहीं जानते थे और 'मेरा संहरण हो गया है' ऐसा वे जानते थे ।

३२. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से (हटाकर) वाशिष्ठ गोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भ-रूप में संस्थापित किये गये, उस रात्रि में शय्या पर अर्ध-निद्रावस्था में सोती हुई देवानन्दा ब्राह्मणी ने (स्वप्न में) देखा कि इसके स्वयं के देखे हुए पूर्वोक्त प्रकार के उदार, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलरूप और शोभायुक्त चौदह स्वप्न त्रिशला क्षत्रियाणी ने

the previous night was just merging into the night following. Eighty-two days had passed since *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra had entered the womb of Devānandā, and this day was the eighty-third. The month was that of *Āśvina,* the third month of the rainy season. It was a dark fortnight, the fifth of that season. The day was the thirteenth day of the fortnight. The moon was in conjunction with the constellation *uttarāphālguni.*

32. On that night, at that moment, when *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra was carried from the womb of Devānandā to that of Triśalā, Triśalā saw the same wondrous and auspicious dreams that Devānandā had seen earlier. She saw an elephant, a bull, a lion, the annointment of Goddess Śrī, a garland, the moon, the sun, a flag, an urn, a lotus-pond, the sea, a *vimāna,* a heap of jewels and a fire.
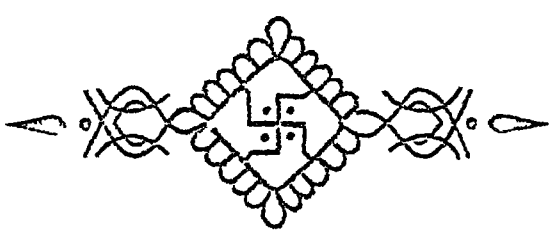
हडे [त्ति] पासित्ता णं पडिबुद्धा, तं जहा—गय-उसह० गाहा ॥३२॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए, तं रयणिं च णं सा तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भंतरओ सचित्तकम्मे बाहिरओ दूमिय-घट्ठमट्ठे विचित्त-उल्लोय-चित्तियतले मणिरयणपणासियंधयारे बहु-समसुविभत्त-भूमिभागे पंचवण्ण-सरस-सुरहि-मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत-धूव-मघमघंत-गंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवरगंधिते गंधवट्टिभूते तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि
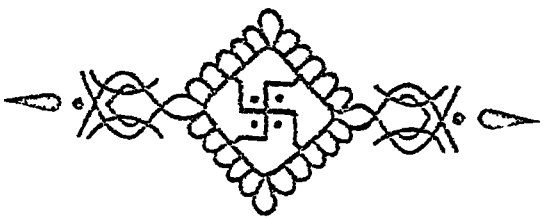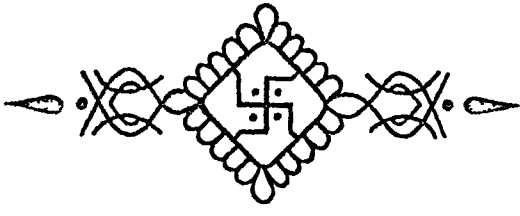
हरण कर लिए हैं। ऐसा देखकर वह जागृत हुई। वे चौदह स्वप्न इस प्रकार हैं – हस्ति, वृषभ आदि।

३३. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से वाशिष्ठगोत्रीया त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भरूप में स्थापित किये गये, उस रात्रि में वह त्रिशला क्षत्रियाणी निम्नोक्त प्रकार के अपने आवास-भवन में सो रही थी। उस वासगृह का अन्दर का भाग चित्रों से चित्रित था, वाहिर का भाग चूने आदि की घुटाई से चिकना व चमकदार वनाया हुआ था। ऊपर छत में अनेक प्रकार के चित्र चित्रित थे। मणि और रत्नों की ज्योति से उस वासभवन का अंधकार नष्ट हो गया था। तलभाग – फर्श समतल और सुरचित था। उस फर्श पर पाँच वर्णों के सरस, सुगन्धित फूलों के गुच्छे जहाँ-तहाँ विखरे हुए थे। वह शयनकक्ष कृष्णागरु, उत्तम कुन्दरुक, तुरुष्क (सुगन्धित द्रव्य) आदि विविध प्रकार की जलती हुई धूपों से महक रहा था और धूपों से प्रकट होने वाली सुगन्धि से सुरभित हो रहा था। अन्य भी सुगन्धित पदार्थों से वह सुरभित था। गंधवटी (गन्ध द्रव्य की गुटिका) की तरह वह महक रहा था। ऐसे श्रेष्ठ शयनकक्ष में वह (त्रिशला) उस प्रकार के पलंग पर सो रही थी,

33. That night Triśalā was lying half asleep in her bed-chamber. The interior of her room was painted with murals. The exterior was stuccoed in white with a soft and bright finish. The floor and the ceiling had been given a variegated look through the inlay of gems and precious stones, and the glow from these shed lustre in the dark. The floor was smooth and even. The floor-space was elegantly apportioned. The room was adorned with lovely bunches of fragrant flowers in five different hues. It was saturated with the sweet, dense and overpowering perfume of the best incense: *kālāguru*, *kundurukka* and *turuṣka*, which spread a thick fragrant smoke making the room a veritable incense-stick. The bed had a downy mattress *(āliṅganaka)* with pillow-cushions at both ends. It was raised at its two ends and was pronouncedly concave in the middle, and was soft and pliant like the sands on the beach of the Gaṅgā. The bed was laid out with sheets of silk which were cool
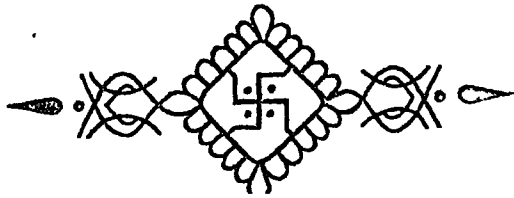
सालिंगणवट्टिए उभओ बिब्बो-
यणे उभओ उन्नए मज्झेणं गंभीरे
गंगापुलिण-वालु-उद्दालसालि-
सए ओयविय-खोमिय-दुगल्ल-
पट्टपडिच्छन्ने सुविरइयरयत्ताणे
रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आईणग-
रूय-बूर-नवणीयतूलफासे सुगं-
धवरकुसुमचुन्न-सयणोवयार-
कलिए, पुव्वरत्तावरत्तकाल-
समयंसि सुत्तजागरा ओहीर-
माणी २ इमेयारूवे ओराले
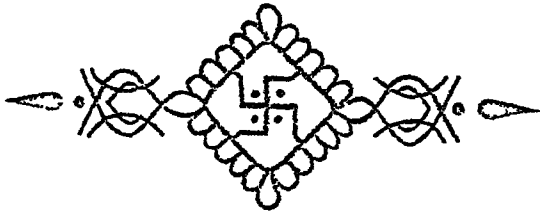
जिस पर शरीर के परिमाण के अनुसार बिछौना बिछा हुआ था, शिर और पैर के दोनों ओर उपधान (तकिये) रखे हुए थे। वह शय्या (पलंग) दोनों ओर से उन्नत और बीच में गहरी थी। गंगा नदी के किनारे की रेत में पैर रखने पर जैसे वह मुलायम लगती है, वैसे ही वह बिछौना मुलायम था। इस बिस्तर के ऊपर साफ-सुथरी अलसी के वस्त्र की चादर बिछी हुई थी। रजस्त्राण से आच्छादित थी। उस शय्या पर लाल कपड़े की मच्छरदानी लगी हुई थी। वह बिस्तर चर्मवस्त्र, बढ़िया रूई, बूर-वनस्पति, नवनीत-मक्खन, आकड़े की रूई आदि कोमल वस्तुओं के समान सुकोमल स्पर्श वाला था। शय्या सजाने की कला के अनुसार वह सजी हुई थी। उसके आस-पास और ऊपर सुगन्धित एवं श्रेष्ठ कुसुम तथा सुरभित चूर्ण फैलाये हुए थे। ऐसी शय्या पर अर्ध-निद्रावस्था में सोती हुई, त्रिशला क्षत्रियाणी इस प्रकार के उदार

like water, and over them was spread an exquisitely-designed dust-protecting cover *(rajastrāṇa)*. It was canopied with a beautiful red netting. It was soft to the touch like fur, like the softest cotton, like the plant *būra*, like newly-churned butter and *arka*-fiber *(arka-tūla)*. On it was sprinkled a powdered extract made from fragrant flowers. It lacked nothing that was needed for a pleasant sleep.
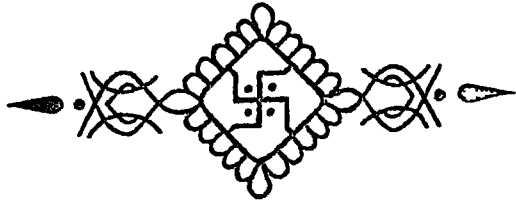
चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा ॥ ३ ३॥ तं जहा—

गय-वसह-सीह-अभिसेय-दाम-
ससि-दिणयरं झयं कुंभं ।
पउमसर-सागर-विमाणभुवण-
रयणुच्चय-सिहिं च ॥ १ ॥

तए णं सा तिसला खत्तियाणी तप्पढमयाए तओय-चउद्दंत-मूसिय-गलिय-विपुल-जलहर-हारनिकर-खीरसागर-ससंककिरण - दगरय - रयय-

चौदह महास्वप्नों को देख कर जागृत हुई।
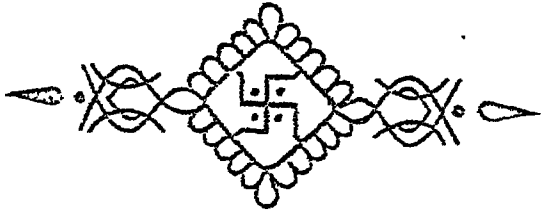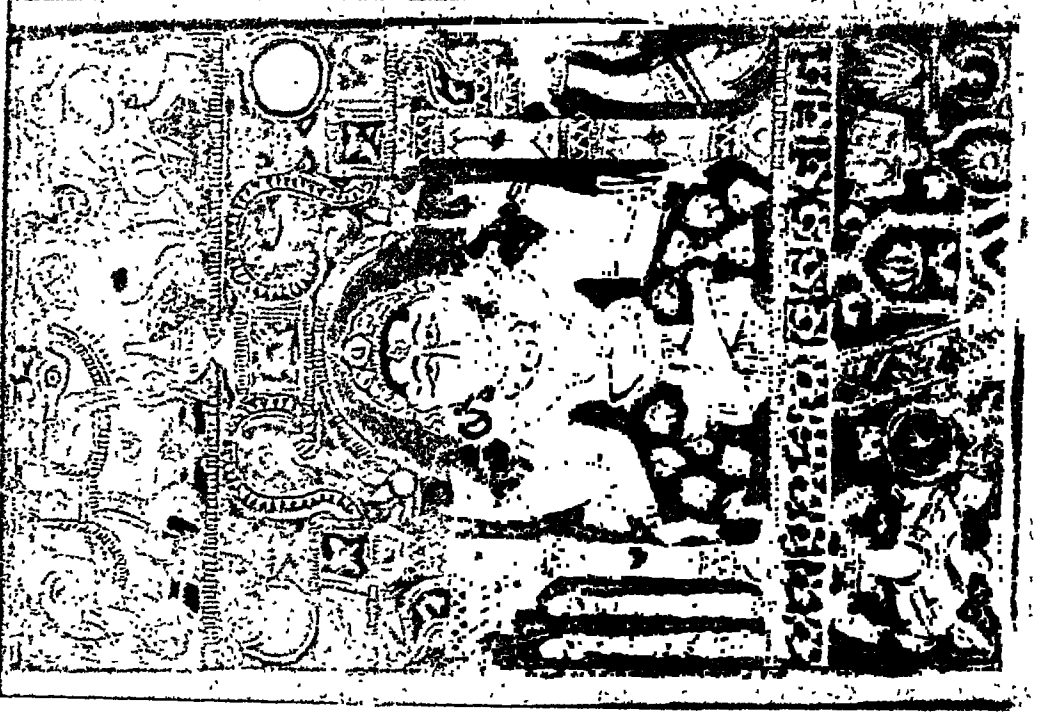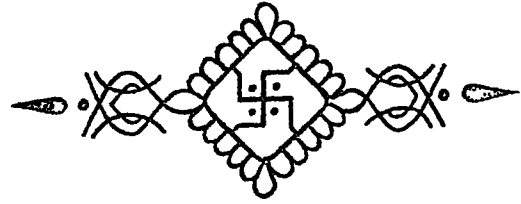
ये चौदह महास्वप्न इस प्रकार हैं :-१. गज, २. वृषभ, ३. सिंह, ४. अभिषेक-लक्ष्मी, ५. पुष्पमाला, ६. चन्द्र, ७. सूर्य, ८. ध्वजा, ९. कुम्भ, १०. पद्म-सरोवर, ११. क्षीरसागर, १२. देव विमान या भवन, १३. रत्नराशि और १४. निर्धूम अग्नि।

३४. वह त्रिशला क्षत्रियाणी स्वप्नों में सर्वप्रथम हाथी को देखती है। वह हाथी विस्तृत ओज युक्त, चार दांत वाला और विशालकाय था। वह बरसे हुए विशाल मेघ, एकत्रित मोतियों के हार, क्षीर के समुद्र, चन्द्र की किरण, जलकण और चांदी के

Lying half asleep on such a bed, Triśalā saw at midnight fourteen bountiful and wondrous dreams.

34. The first dream she saw was of an elephant. She saw a big, tall, impetuous bull-elephant with excellent flanks and two pairs of tusks. It was white with a whiteness superior to the colour of marble, or a heap of pearls, or a sea of milk, or
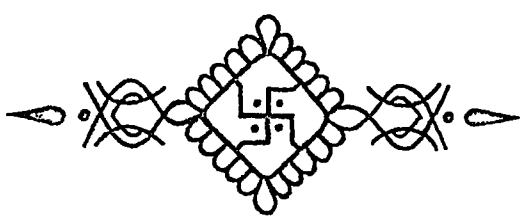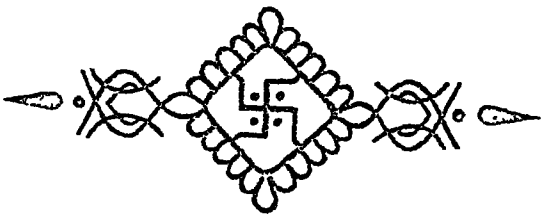
महासेलपंडुरतरं समागय[महुयर]सुगंधदाण-वासिय-कवोलमूलं देवरा-यकुंजरवरप्पमाणं पिच्छइ सजल-घण-विपुल-जलहर-गज्जिय-गंभीर-चारुघोसं इभं सुभं सव्वलक्खणकयंबियं वरोरुं १ ॥३४॥

तओ पुणो धवल-कमल-पत्त-पयराइरेग-रूवप्पभं पहासमुदओवहा-रेहिं सव्वओ चेव दीवयंतं अइसिरि-भर-पेल्लणा-विसप्पंत-कंत-सोहंत-चारुककुहं तणुसुइ-सुकुमाल-लोम-निद्धच्छविं थिर-सुबद्धमंसलोवचिय-लट्ठ-सुविभत्त-सुंदरंगं पिच्छइ घण-वट्ट-लट्ठ-उक्किट्ठ-विसिट्ठ-तुप्पग्ग-तिक्खसिंगं दंतं सिवं समाणसोभंतसुद्धदंतं वसभं अमियगुणमंगल-मुहं २ ॥३५॥

तओ पुणो हारनिकर-खीरसागर-ससंककिरण-दगरय-रययमहा-

महान् पर्वत के समान धवल-उज्ज्वलतम था। उसके गण्डस्थल से बहते हुए मद की सौरभ से आकृष्ट भ्रमरों का झुण्ड वहाँ मंडरा रहा था। इन्द्र के ऐरावत हाथी के समान वह श्रेष्ठ और उन्नत था। सजल एवं सघन मेघ की गर्जना के समान वह गम्भीर और मनोहर घोष—शब्द कर रहा था। वह हाथी शुभ और समस्त श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त था। उसका उरुभाग उत्तम था।
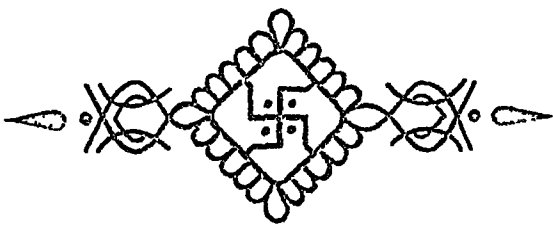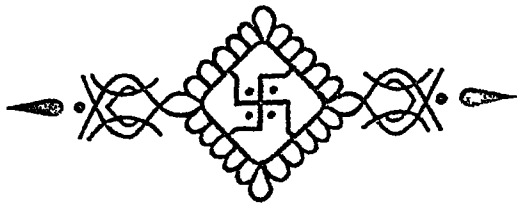
३५. तत्पश्चात् वह त्रिशला वृषभ का स्वप्न देखती है। वह धवल कमल की पंखुड़ियों के समूह से भी अधिक प्रभापूर्ण रूप वाला था। वह कांतिपुंज के प्रसार से सर्वत्र देदीप्यमान था। अत्यधिक शोभाभार से प्रसरित, कान्ति से शोभायमान मनोहर ककुद वाला था। सूक्ष्म, निर्मल, सुकुमाल, रोमराजि की स्निग्ध कांति को धारण करने वाला था। वह स्थिर, सुगठित, मांसल, पुष्ट तथा सुविभक्त सुन्दर अंगों वाला था। वह भारी वर्तुलाकार, पुष्ट, उत्कृष्ट, दूसरों से विशिष्ट, घृत से ओपित तीक्ष्ण शृंगों वाला था। वह अक्रूर—उपद्रव रहित, एक समान शोभायुक्त निर्मल दांतों को धारण करने वाला था। वह अगणित गुण वाला और मांगलिक मुख वाला था।

३६. तदनन्तर वह त्रिशला सिंह का स्वप्न देखती है। वह सिंह हार-समूह, क्षीरसागर, चन्द्रकिरण, जलकण और चांदी के विशाल

moon-beams, or droplets of water or a great hillock of silver. A sweet-smelling rut-fluid *(mada)* oozed down its cheek attracting swarms of black bumble-bees. The elephant was like the elephant of Indra himself. Its trumpeting produced a deep and pleasant sound like the rumbling of full, dense, water-laden clouds. It was an auspicious elephant and was endowed with all the desirable marks of excellence.

35. Then she saw a bull. The bull was white with a hue brighter than the petals of white lotuses. It glowed with beauty and radiated a light that spread lustre all around. It had a noble, grand and majestic hump, raised high with the impelling force of magnificence. Its limbs were attractive, well-poised, well-jointed, well-filled and well-proportioned. It had fine, bright, soft hair on its body. Its horns were superb : strong, well-rounded, sharply-pointed and anointed with *ghee*. It had pure, auspicious teeth, all of which were charmingly identical in size. There was a stamp of benediction on the animal's countenance; it was full of the most desirable qualities in large measures.
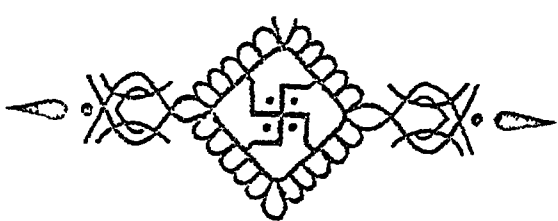
सेलपंडुरागारं (ग्रं० २००) रमणिज्ज-पेच्छणिज्जं थिर-लट्ठ-पउट्ठ-वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-तिक्खदाढा-विडंबियमुहं परिकम्मिय-जच्च-कमल-कोमल-माइय-सोभंत-लट्ठ-उट्ठं रत्तुप्पल-पत्त-मउय-सुकुमाल-तालु-निल्लालियग्गजीहं मूसागय-पवर-कणग-ताविय-आवत्तायंत-वट्ट-तडि-विमल-सरिसनयणं विसालपीवरवरोरुं पडिपुन्नविमलखंधं मिउ-विसय-सुहुम-लक्खण-पसत्थ-विच्छिन्न-केसराडोवसोहियं ऊसिय-सुनिम्मिय-सुजाय-अप्फोडिय-नंगूलं सोमं सोमाकारं लीलायंतं जिंभायंतं नहयलाओ ओवयमाणं नियगवयणमइवयंतं पिच्छइ सा गाढतिक्खग्गनहं सीहं वयणसिरीपल्लवपत्तचारुजीहं ३ ॥३६॥

पर्वत के समान गौर एवं उज्ज्वल था। वह रमणीय, प्रेक्षणीय – दर्शनीय था। वह स्थिर और सुदृढ़ पंजों वाला था। उसकी दाढ़ें गोल, अतीव पुष्ट, अन्तर-रहित, विशिष्ट एवं तीक्ष्ण थीं, जिनसे उसका मुख सुशोभित हो रहा था। उसके दोनों ओष्ठ स्वच्छ, उत्तम कमल के समान कोमल, प्रमाणोपेत, सुन्दर व पुष्ट थे। उसका तालु रक्त कमल की पंखुड़ियों के समान सुकुमाल और सुकोमल था। उसकी जिह्वा (जीभ) का अग्रभाग बाहर लपलपा रहा था। उसके नेत्र स्वर्णकार के पात्र में रखे हुए तप्त गोल उत्तम स्वर्ण के समान चमकदार और विजली की तरह चमकते थे। उसकी विशाल जंघाएं अत्यन्त पुष्ट व उत्तम थीं। उसके स्कन्ध परिपूर्ण – भरावदार व निर्मल थे। वह कोमल, निर्मल, पतली, सुन्दर लक्षण युक्त, प्रशस्त विस्तीर्ण और फैली हुई केसरसटा (अयाल) के आटोप (आडम्बर) से शोभित था। उसकी उन्नत पूंछ कुण्डलाकार एवं शोभायुक्त थी। वह सौम्य था। सौम्य आकृति को धारण कर रहा था। उसके नाखूनों का अग्रभाग अत्यंत दृढ़, अणीदार एवं तीक्ष्ण था। नवीन पल्लव-पत्र के समान मनोहर जिह्वा से उसकी मुखशोभा बढ़ रही थी। जंभाई लेते हुए ऐसे सिंह को लीलापूर्वक आकाश से उतरते और अपने मुख में प्रवेश करते वह देखती है।

36. Then she saw a lion, a magnificent eye-alluring beast. It had a yellow-white sheen, comparable to a heap of pearl necklaces, or a sea of milk, or moon-beams, or droplets of water or a great hillock of silver. Its claws were beautiful and well-poised. It had a large well-rounded, shapely head and extremely sharp-edged canine teeth. Its lips were exquisitely formed and were lotus-soft; they were gracefully proportioned and gave the beast a noble, aristocratic mien *(jātya)*. Its palate was soft, delicate and coral-red. The tip of its tongue hung out. Its eyes were like pieces of metal melting in a pot; they were wildly rotating and were piercingly clear like lightening. The lion had huge well-muscled flanks and clean-cut well-shaped shoulders. It had a big well-pufted mane with a flock of dense but fine, soft hair. Its tail was impressively long and well-shaped; it moved with a noble grace. Triśalā saw this strong and sharp-clawed lion descending towards her and entering her mouth with its lips hanging out from its magnificent face.

ततो पुणो पुण्णचंदवयणा, उच्चागयट्ठाण-लट्ठ-संठियं पसत्थरूवं सुपइट्ठियकणगकुम्मसरिसोवमाणचलणं अच्चुन्नयपीणरइयमंसल-उन्नय-तणुतंबनिद्धनहं कमलपलाससुकुमालकरचरणकोमलवरंगुलिं कुरुविंदा-वत्त-वट्टाणुपुव्वजंघं निगूढजाणुं गयवरकरसरिसपीवरोरुं चामीकर-रइयमेहलाजुत्तकंतविच्छिन्नसोणिचक्कं जच्चंजणभमरजलयपयरउज्जु-यसमसंहियतणुयआइज्जलडहसुकुमालमउयरमणिज्जरोमराइं नाभी-मंडल-विसाल-सुंदर-पसत्थजघणं करयलमाइय-पसत्थ-तिवलियमज्झं

३७. उसके पश्चात् वह पूर्णचन्द्रमुखी त्रिशला क्षत्रियाणी स्वप्न में लक्ष्मी देवी को देखती है। वह लक्ष्मी समुन्नत पर्वत पर उत्पन्न हुए उत्तम कमल के आसन पर स्थित एवं प्रशस्त रूप वाली थी। उसके चरण सम्यक् प्रकार से रखे हुए स्वर्णमय कच्छप के समान उन्नत थे। उसके नाखून अत्युन्नत और पुष्ट थे। रंग से रंजित न होने पर भी रंजित प्रतीत हो रहे थे, तथा मांसयुक्त, उभरे हुए, पतले ताम्बे की तरह रक्त और स्निग्ध थे। उसके कोमल हाथ और पैरों की अंगुलियाँ कमलदल के समान सुकोमल और श्रेष्ठ थीं। उसकी पिण्डलियाँ कुरुवृन्द (नागरमोथा) एवं कदलीस्तंभ के आवर्त के समान अनुक्रम से उतार-चढ़ाव युक्त गोल थीं। शरीर पुष्ट होने से उसके घुटनों के टखने बाहर दिखाई नहीं दे रहे थे। उसकी जंघाएं उत्तम हाथी की सूंड के समान परिपुष्ट थीं। उसकी कटि (कमर) कांत तथा कनकमय विस्तृत कटिमेखला (कंदोरा) से युक्त थी। उसकी रोमराजी श्रेष्ठ अंजन, भ्रमर और मेघ समूह के समान श्याम वर्ण वाली तथा सरल-सीधी, क्रमबद्ध, अत्यन्त पतली, सुन्दर, मनोहर, सुकुमाल, मृदु और रमणीय थी। नाभिमण्डल के कारण उसके विशाल जघन (पुट्ठे) सुन्दर, प्रशस्त और सरस थे। उसकी कटि का मध्य भाग मुट्ठी में आ जाय, इतना पतला और प्रशस्त त्रिवली से युक्त था।

37. Then she, the moon-faced one, saw the Goddess Śrī on a sublime Himalayan peak. The Goddess sat gracefully on a lotus in the middle of a big lotus lake; the space-dwelling elephants *(diśā-gajendra)* were annointing her with their long, well-rounded trunks. She was seated in the highest reaches of the Himalayas with noble grace. Her feet had the sheen of a golden turtle and the turtle's firm and well-rounded form. The fingers of her feet and hands were delicate and soft like lotus petals. She had exquisite copper-coloured nails, well-embedded in the firm flesh of her fingers. Her thighs were round and well-tapered; they were adorned with the ornament called *kuruvindāvarta*. Her knee-joints were beautifully concealed in flesh. The upper part of her thighs *(ūru)* were firmly rounded like elephant-trunks. On her beautiful and distinctly round buttocks rested a girdle of gold. The hairs on her body were alluringly tiny, and soft and delicate: they were straight and even and finely distributed; their colour was black and comparable to that of rain-laden clouds or black bumble-bees or collyrium. The goddess had big,

नाणामणि - कणग - रयण - विमल - महातवणिज्जाहरण - भूसण - विराइ-यंगोवंगं हारविरायंत-कुंदमाल-परिणद्ध-जलजलित-थणजुयल-विमल-कलसं आइय-पत्तिय-विभूसिएण य सुभगजालुज्जलेणं मुत्ताकलावएणं उरत्थदीणारमालियविरइएणं कंठमणिसुत्तएण य कुंडलजुयलुल्लसंत-अंसोवसत्त-सोभंत-सप्पभेणं सोभागुणसमुदएणं आणणकुडुंबिएणं कमलविसालरमणिज्जलोयणं कमलपज्जलंतकरगहियमुक्कतोयं लीला-वायकयपक्खएणं सुविसय-कसिण-घण-सण्ह-लंबंत-केसहत्थं पउमद्दह-कमलवासिणिं सिरिं भगवइं पिच्छइ हिमवंतसेलसिहरे दिसागइंदोरु-पीवरकराभिसिच्चमाणिं ४ ॥३७॥

ततो पुणो सरसकुसुम-मंदार-दाम-रमणिज्जभूयं चंपगासोग-

उसके अंगोपांग अनेक प्रकार की मणियों, रत्नों, स्वर्ण तथा श्रेष्ठ लाल स्वर्ण के आभूषणों से अलंकृत थे। निर्मल कलश की तरह उसके स्तनयुगल मुक्ताहार एवं कुन्द पुष्प की माला से देदीप्यमान और उज्ज्वल श्रेणिवद्ध हारों तथा मोतियों के समूह से शोभायमान थे। वक्षस्थल पर प्रशस्त दीनार – स्वर्ण मोहरों की माला विराज रही थी और कण्ठ में मणिसूत्र शोभित हो रहा था। उसके कानों में धारण किये हुए देदीप्यमान कुण्डल-युगल स्कन्ध तक लटक रहे थे। इन कुण्डलों की आभा, मानों मुख की सम्बन्धिनी हो, इस प्रकार शोभागुण समूह से वह सुशोभित हो रही थी। उसके दोनों हाथों में देदीप्यमान कमल थे, जिनसे मकरन्द की बूंदें टपक रही थीं। वह क्रीड़ापूर्वक वींजे जा रहे पंखे से विभूषित थी। उसका केशपाश (वेणी) अत्यन्त निर्मल, सघन, काला और कमर तक लम्बायमान था। वह पद्मद्रह के कमल पर निवास करती थी। हिमवन्त पर्वत के शिखर पर स्थित दिग्गजों की विशाल और पुष्ट सूंडों से निकलती हुई जलधारा से उसका अभिषेक हो रहा था। ऐसी भगवती लक्ष्मी को त्रिशला ने स्वप्न में देखा।
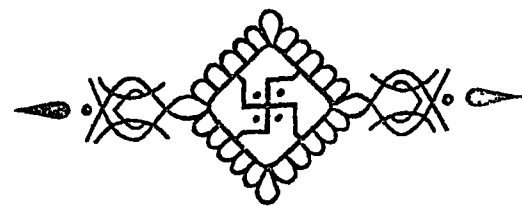
३८. तत्पश्चात् त्रिशला माला का स्वप्न देखती है। वह माला मन्दार के सरस एवं ताजे फूलों से गुंथी हुई रमणीय थी। उस माला में चम्पक, अशोक,

beautiful hips and a narrow waist measuring no more than the span of one's palm. She had a row of three lovely folds on her abdomen.

On each of her limbs glittered ornaments of pure gold, studded with gems and precious stones of a great variety. On her immaculate urn-like breasts shone necklaces and a garland of *kunda* flowers. She wore rows of pearls interlaced with emerald and a garland of gold *dināras* which hung down her bosom. Her neck was adorned with stringed gems. A pair of resplendent ear-rings hung over her shoulders with dazzling beauty. Her big beautiful eyes were like radiant lotuses; they had such excellence and such qualities as were apposite to her face. In her hands she held a pair of bright lotuses, from which fell droplets of water. A soft breeze fanned her. Her thick mass of long hair, dense, dark, and soft, was arranged in a knot.

38. Then in her dream Triśalā saw a garland gently descending from the skies. It was a lustrous garland of celestial *mandāra* flowers. It smelled sweet with the mixed fragrance of myriad flowers:
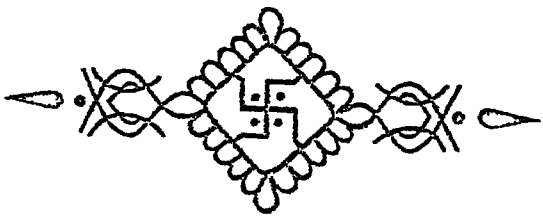
पुन्नाग-नाग-पियंगु-सिरीस-मोग्गर-मल्लिया-जाइ-जूहियंकोल्ल-कोज्ज-कोरिंट-पत्त-दमणय-णवमालिय-बउल-तिलय-वासंतिय-पउमुप्पल-पाडल-कुंदाइमुत्त-सहकार-सुरभिगंधं अणुवममणोहरेणं गंधेणं दस दिसाओ विवासयंतं सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-मल्ल-धवल-विलसंत-कंत-बहुवन्नभत्तिचित्तं छप्पय-महुयरि-भमरगण-गुमगुमायंत-निलिंत-गुंजंत-देसभागं दामं पेच्छइ नभंगणतलाओ ओवयंतं ५ ॥३८॥

ससिं च गोखीर-फेण-दगरय-रययकलसपंडुरं सुभं हिययनयणकंतं पडिपुन्नं तिमिर-निकर-घणगुहिर-वितिमिरकरं पमाणपक्खंतरायलेहं कुमुदवणविबोहगं निसासोभगं सुपरिमट्ठ-दप्पणतलोवमं हंसपडुवण्णं
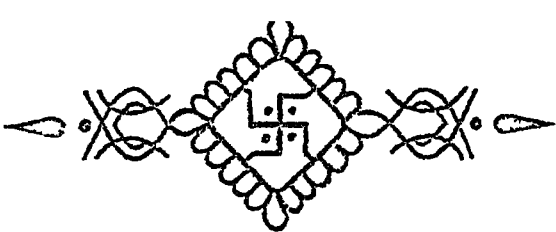
पुन्नाग, नागकेशर, प्रियंगु, शिरीप, मोगरा, मल्लिका, जाई, जूही, अंकोल, कोज्ज, कोरंटपत्र, दमनक, नवमालिका, वकुल, तिलक, वासन्ती, पद्म, उत्पल, पाटल, कुन्द, अतिमुक्तक और सहकार के सुरभित फूल गुंथे हुए थे। इस माला के अनुपम मनोहर सौरभ के कारण दशों दिशाएं महक रही थीं। वह माला सर्व ऋतुओं में खिलने वाले सुरभित कुसुमों से निर्मित थी। माला का रंग मुख्यत: श्वेत था और बीच-बीच में विविध रंगों के फूल गुंथे हुए थे, जिससे वह अत्यन्त ही रमणीय प्रतीत हो रही थी। विविध रंगों के कारण वह आश्चर्य उत्पन्न करती थी। उस माला के चारों तरफ पट्पद, मधुकर, भ्रमर गुंजारव करते हुए मंडरा रहे थे। आकाश से नीचे आती हुई ऐसी माला को त्रिशला ने देखा।

३९. तत्पश्चात् वह त्रिशला चन्द्र का स्वप्न देखती है। वह चन्द्र, गोदुग्ध, पानी के झाग, जलबिन्दु और चांदी के कलश के समान शुभ्र था। शुभ था। वह हृदय और नेत्रों को आह्लादकारी था। परिपूर्ण था। गहनतम अन्धकार समूह को नाश करने वाला था। पूर्णिमा के चन्द्र की तरह सोलह कलाओं से युक्त था। कुमुद वनों को विकसित करने वाला था। रात्रि की शोभा को वढ़ाने वाला था। वह अच्छी तरह स्वच्छ किये हुए दर्पणतल के समान चमक रहा था। वह हंस के समान शुभ्र था।

aśoka, punnāga, nāga, priyaṅgu, śiriṣa, mudgara, patradamanaka, navamālikā, bakula, tilaka, vasantikā, lotuses, water-lily, *pāṭala, kunda, atimuktaka* and the blossoms of the mango tree. All ten regions of space were filled with fragrance. Woven into the garland were sweet-scented flowers that bloom during different seasons. Its colour was mainly white but was variegated with other hues. Swarms of bumble-bees flocked to it and made the region around it resound with their humming.

39. Then Triśalā saw the full moon, night's treasure and delight, dispelling the densely gathering darkness. The moon shone white like water-droplets or milk-foam or a silver urn. It presented an auspicious sight, pleasing to the heart. It revealed itself in full glory at the peak of its waxing period. It awoke the lilies to full bloom. It was bright like a well-polished mirror. Like a swan it radiated whiteness. An enemy of darkness, it
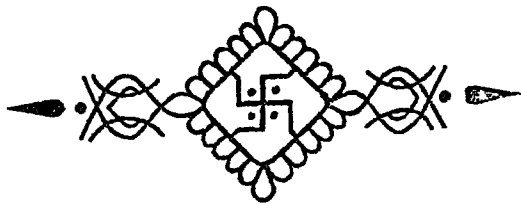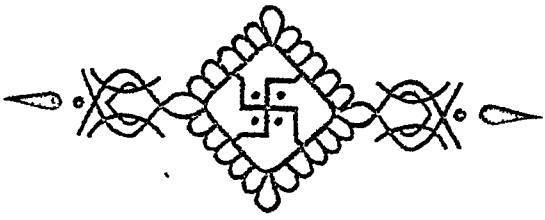
जोइसमुहमंडगं तमरिपुं मयणसरापूरं समुद्ददगपूरगं दुम्मणं जणं दइयवज्जियं पायएहिं सोसयंतं पुणो सोमचारुरूवं पिच्छइ सा गगणमंडल-विसाल-सोम्म-चंकम्ममाण-तिलगं रोहिणिमणहिययवल्लहं देवी पुन्नचंदं समुल्लसंतं ६ ॥३९॥

तओ तमपडलपरिप्फुडं चेव तेयसा पज्जलंतरूवं रत्तासोग-पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धरागसरिसं कमलवणालंकरणं अंकणं जोइसस्स अंबरतलप्पईवं हिमपडलगलग्गहं गहगणोरुनायगं रत्ति-विणासं उदयत्थमणेसु मुहुत्तसुहदंसणं दुन्निरिक्खरूवं रत्तिमुद्धायंत-

वह तारागण और नक्षत्रों का मुखमण्डल अर्थात् प्रधान था। वह अन्धकार का शत्रु था। वह कामदेव के बाणों को भरने वाले तरकस के समान था। समुद्र के पानी को बढ़ाने वाला था। व्यथित एवं विरहीजनों का अपनी किरणों से शोषण करने वाला, व्यथा बढ़ाने वाला था। पुनः वह चन्द्र सौम्य और सुन्दर रूप वाला था। विशाल गगन-मण्डल में अच्छी तरह परिभ्रमण करता हुआ, गगन-मण्डल का वह चलता-फिरता तिलक था। वह रोहिणी के मन और हृदय का वल्लभ – प्रियतम था। ऐसे समुल्लसित पूर्णचन्द्र को त्रिशला देवी ने देखा।
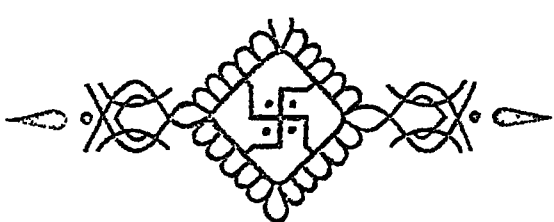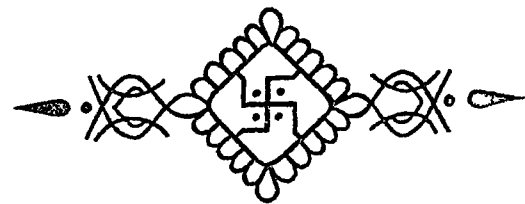
४०. इसके अनन्तर वह त्रिशला सूर्य का स्वप्न देखती है। वह सूर्य अन्धकार समूह को नाश करने वाला और तेज से जाज्वल्यमान रूप वाला था। लाल अशोक, विकसित किंशुक, तोते की चोंच और चिर्मी के अर्ध लाल भाग के समान वह रक्तवर्ण वाला था। कमलवनों को विकसित करने वाला और ज्योतिपचक्र का अंकन करने वाला था। वह गगनतल का प्रदीप था। हिमसमूह को गलाने – नाश करने वाला था। ग्रहमण्डल का मुख्य अधिपति था। रात्रि को नष्ट करने वाला था। उदय और अस्त के समय ही घड़ी भर के लिये सुखपूर्वक देखने योग्य और अन्य समय में दुष्करता से देखने योग्य रूप वाला था। रात्रि में भागने वाले

was like an ornament of luminosity. It was a quiver that carried the arrows of Kāma, the god of love. It inspired the oceans to surge skywards. But it withered the spirit of lonely girls whose lovers were away. Triśalā saw the moon—the spouse of the constellation Rohiṇī—enchanting and beautiful like a radiant beauty-mark on the great forehead of the sky.

40. Then she saw the huge disc of the sun, shining refulgently and annihilating darkness. The sun was red like the flame-of-the-forest, or *aśoka* flowers, or a parrot's beak or the red shell of the *guñja* seed. Lotuses bloomed at its touch.

The sun is the standard against which all light-giving things are measured. It is the lamp of the sky. As it arose, it caught the great body of cold by its neck and threw it out. The sun is the lord of planets, the dispeller of night's gloom; it permits the eyes to look at it only for a few moments as

दुप्पयारप्पमद्दणं सीयवेगमहणं पेच्छइ मेरुगिरिसययपरियट्टयं विसालं सूरं रस्सीसहस्सपयलियदित्तसोहं ७ ॥४०॥

ततो पुणो जच्चकणगलट्ठिपइट्ठिअं समूहनील-रत्त-पीय-सुक्किल्ल-सुकुमालुल्लसिय-मोरपिच्छ-कयमुद्धयं धयं अहियसस्सिरीयं फालिय-संखंक-कुंद-दगरय-रययकलसपंडुरेण मत्थयत्थेण सीहेण रायमाणं भित्तुं गगणतलमंडलं चेव ववसिएणं पेच्छइ सिव-मउय-मारुय-लयाहयकंपमाणं [अइप्पमाणं] जणपिच्छणिज्जरूवं ८ ॥४१॥

ततो पुणो जच्चकंचणुज्जलंतरूवं निम्मलजलपुण्णमुत्तमं दिप्प-माणसोहं कमलकलावपरिरायमाणं पडिपुण्ण य सव्वमंगलभेयसमागमं
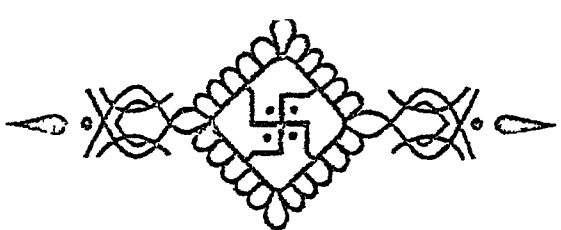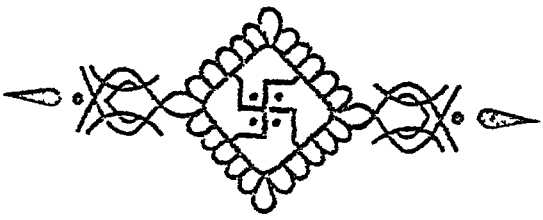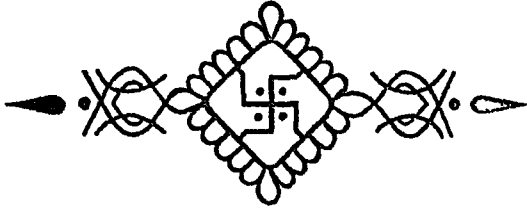
दुष्प्रचारकों—जारों, चोरों का प्रमर्दक था। वह सर्दी के वेग को मंथन—नाश करने वाला, मेरुगिरि के चारों ओर निरन्तर घूमने वाला, अपनी सहस्र किरणों से चन्द्रादि ग्रहों की प्रभा को मंद करने वाला था। ऐसे विशाल सूर्य को त्रिशला देखती है।

४१. पश्चात् वह ध्वजा का स्वप्न देखती है। वह ध्वजा उत्तम स्वर्णदण्ड पर प्रतिष्ठित थी। नीला, पीला, लाल, सफेद आदि विविध-वर्णों के वस्त्रों से निर्मित थी। ध्वजा की शिखा पर सुकुमार मयूरपंख शोभायमान था। वह ध्वजा अत्यधिक शोभायुक्त थी। उस ध्वजा के अर्ध-भाग में स्फटिक, शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प, जलबूंद और चांदी के कलश के समान उज्ज्वल वर्ण वाला सिंह चित्रित था। ध्वजा के लहराने से ऐसा प्रतीत होता था कि सिंह गगनमण्डल को भेदन करने का उद्यम कर रहा हो। वह ध्वजा मन्द-मन्द पवन के सुखकारी झकोरे खाकर लहरा रही थी [वह अत्यधिक उन्नत थी]। उस ध्वजा का रूप लोगों के देखने योग्य था।

४२. उसके पश्चात् वह त्रिशला कलश का स्वप्न देखती है। वह कलश स्वर्ण के समान देदीप्यमान रूप वाला था। वह निर्मल जल से भरा हुआ था, प्रशस्त था, जाज्वल्यमान कान्ति से युक्त था और चारों तरफ कमलों के समूह से परिवेष्टित था। समस्त प्रकार के मंगलभेदों का इसमें समागम हुआ हो, ऐसा वह कलश सर्व मंगलमय था।

it rises or sets. The eyes cannot look at it at any other-time. The sun rose and put to end the evil activities of creatures who thrive at night. Glowing with a thousand iridescent rays, it removed the sting of cold. The sun encircles the Meru mountain during its regular movements.

41. Then she saw an extremely large flag flying on a staff of the purest gold. The flag fluttered softly and auspiciously in the gentle breeze. It was glowing with brilliance, attracting the eyes of all. Peacock-feathers, shining softly with dark blue, red, yellow and white, adorned its crown. On it, was, a radiant shining-white lion, of the colour of marble, or conch, or the *aṅka*-stone, or *kunda*-flowers, or water-droplets or a silver-urn. The lion moved with majesty as if it wanted to pierce the encircling expanse of the sky.

42. Then in her dream Triśalā saw a silver urn, brimfull of crystal-clear water. It was a magnificent urn, beautiful and bright. It shone like the purest gold and was a joy to behold. It was brilliantly garlanded with strings of lotuses. It was replete with every auspicious thing. It rested on a
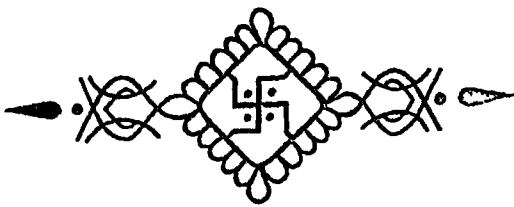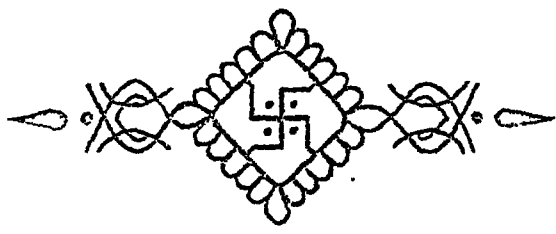
पवर-रयण-परायंत-कमलट्ठियं नयणभूसणकरं पभासमाणं सव्वओ चेव दीवयंतं सोमलच्छीनिभेलणं सव्वपावपरिवज्जियं सुभं भासुरं सिरिवरं सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-आसत्त-मल्लदामं पेच्छइ सा रयय-पुण्णकलसं ९ ॥४२॥

पुणरवि रविकिरण-तरुण-बोहिय-सहस्सपत्त-सुरभितर-पिंजरजलं जलचर-पहकर-परिहत्थग-मच्छ-परिभुज्जमाण-जलसंचयं महंतं जलंत-मिव कमल-कुवलय-उप्पल-तामरस-पुंडरीय-उरुसप्प-सिरिसमुदएहिं रमणिज्जरूवसोभं पमुइयंततम-भमरगण-मत्त-महुकरिगणोक्करोलि-ब्भमाणकमलं (२५०) कायंबग-बग-बलाहग-चक्क-कलहंस-सारस-

श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित कमल पर वह कलश शोभायमान हो रहा था, जिसे देखते ही नेत्र आनन्दविभोर हो जाते थे। वह प्रकाशमान था और उसकी प्रभा सम्पूर्ण दिशाओं में फैल रही थी। प्रशस्त लक्ष्मी का वह घर था। वह कलश समस्त प्रकार के दूषणों से रहित, शुभ, देदीप्यमान और कान्ति युक्त था। सर्व ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले सुरभित और सरस फूलों की मालायें कलश के कण्ठमाल पर रखी हुई थीं। इस प्रकार के चांदी के पूर्ण कलश को वह त्रिशला देखती है।
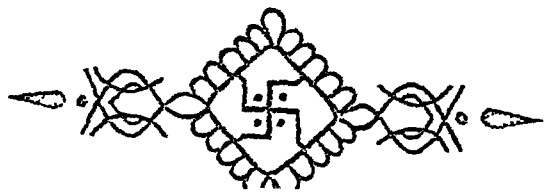
४३. पुन: वह पद्मसर का स्वप्न देखती है। वह पद्मसर उदीयमान सूर्य की किरणों से विकसित सहस्रपत्र कमलों के मकरन्द से सुगन्धित था और उसका जल पिञ्जर—रक्तपीत वर्ण वाला था। उस सरोवर के जल में रहने वाले जीव-समूह इधर-उधर दौड़ रहे थे और मत्स्य इस सरोवर के जल का पान कर रहे थे। वह सरोवर बहुत बड़ा एवं सूर्य-विकासी कमल, चन्द्र-विकासी कुवलय, उत्पल—रक्तकमल, तामरस—बड़े कमल, पुण्डरीक—श्वेत कमल आदि अनेक प्रकार के विविध रंगी कमलों के फैलाव से तथा दीप्ति समूह से जाज्वल्यमान था। सरोवर की शोभा और रूप अत्यन्त रमणीय था। प्रमुदित भ्रमर-समूह और मत्त-मधुमक्षिकाओं के झुण्ड कमलों पर बैठकर उनका रसपान कर रहे थे। उस सरोवर में मधुर स्वर करने वाले कादम्बक, बक, बलाहक-बगुले, चक्रवाक, कलहंस, सारस
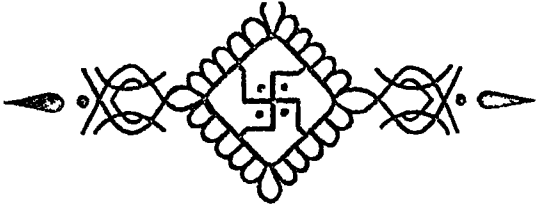
lotus that surpassed the best of gems. Its beautiful and auspicious frame was the abode of Śrī, Goddess of fortune. It was lustrous, holy, and untouched by anything sinful. It was adorned with a wreath made of all fragrant flowers that bloom during different seasons of the year.

43. Next she saw a lake. It was called Padmasara (Lotus-lake). Floating on the lake were thousand-petalled lotuses which opened at the touch of the sun's rays. The lotuses imparted a sweet fragrance and a golden yellow hue to the waters of the lake. There were swarms of fishes in the lake and a multitude of other aquatic animals. Its waters glowed like flame and they spread over a vast expanse. The lake presented an enchanting sight with dancing lotuses of multiple variety such as *kamala, kuvalaya, utpala, tāmarasa* and *puṇḍarīka:* to these came the bumble-bee and its intoxicated mate and sucked sweet honey. Many water-fowls and their mates dwelled proudly in the lake: there were *kādambakas, balāhakas, cakravākas, kalahaṁsas* and *sārasas*. On the lake's waters floated lily-leaves sprinkled with iridescent drops of water.
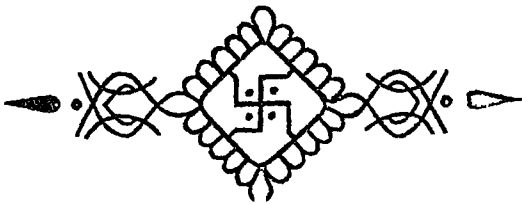
गव्विय-सउणगण-मिहुण-सेविज्जमाणसलिलं पउमिणिपत्तोवलग्ग-जलबिंदुमुत्तचित्तं पिच्छइ सा हियय‍नयणकंतं पउमसरं [नाम] सरं सररुहाभिरामं १० ॥४३॥

तओ पुणो चंदकिरण-रासि-सरिस-सिरिवच्छसोहं चउगमण-पवड्ढमाण-जलसंचयं चवल-चंचलुच्चायप्पमाण-कल्लोल-लोलंत-तोय-पडुपवणाहय-चलियचवलपागड-तरंग-रंगंत-भंग-खोखुब्भमाण-सोभंत-निम्मल-उक्कड-उम्मीसह-संबंध-धावमाणो-नियत्त-भासुरतराभिरामं महामगर-मच्छ-तिमि-तिमिंगिल-निरुद्ध-तिलितिलियाभिघाय-कप्पूर-फेणपसरं महानई-तुरियवेग-समागय-भम-गंगावत्त-गुप्पमाणुच्छलंत-

आदि पक्षियों के जोड़े गर्वित होकर जलक्रीड़ा कर रहे थे। उसमें कमलिनी दल पर गिरे हुए जल-विन्दु मोतियों की तरह चमक रहे थे। वह सरोवर हृदय और नेत्रों को आह्लादित करने वाला था। ऐसा कमलों से रमणीय पद्मसर [नाम का] सरोवर त्रिशला ने देखा।
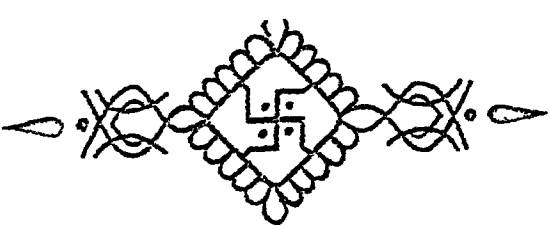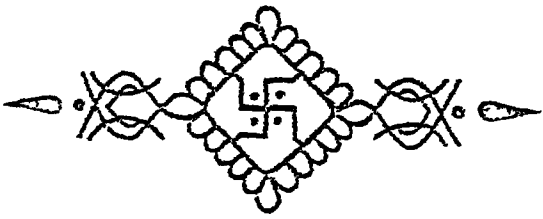
४४. तदनन्तर त्रिशला क्षीरोदसागर (क्षीरसमुद्र) का स्वप्न देखती है। उस क्षीरोदसागर का मध्यभाग चन्द्र-किरणों के समूह की तरह उज्ज्वल और श्रीवत्स के समान चारों दिशाओं में जल-संचय से प्रवर्धमान था। चपल, चंचल और ऊँची उठी हुई लहरों से उसका जल तरंगित हो रहा था। प्रबल पवन से प्रताड़ित ऊर्मियां न केवल चपलता से तरंगित ही हो रही थीं, अपितु ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे परस्पर टकराकर दौड़ लगा रही हों। उस समय वे लहरें नृत्य करती हुई अत्यन्त ही क्षुब्ध–आन्दोलित हो रही थीं। वे उद्धत एवं शोभाजनक ऊर्मियां एक के पीछे एक व्यवस्थित रूप से दौड़ती हुई देदीप्यमान और रमणीय लग रही थीं। समुद्र में रहने वाले महामगर, मच्छ, तिमि, तिमिंगिल, निरुद्ध और तिलितिलिय आदि जलचरों के पुच्छाघात से चारों तरफ कर्पूर के समान उज्ज्वल फेन फैल रहा था। उस समुद्र में महानदियों के जल के प्रबल वेग से गिरने के कारण उसमें गंगावर्त नामक भंवर (चक्र) उत्पन्न होते थे। उन भंवरों के कारण पानी उद्वेलित होकर उछलता,

44. And then Triśalā—her face beautiful as the autumn moon—saw the milky-sea. The surface of the sea glowed like a cluster of moon-beams. Its waters seemed to swell out in all directions, rising to great heights with a roar and a swift, turbulent motion. Winds blew and created waves that surged with manifest violence: they rose and fell with terrifying majesty and their cascading movement created a brilliant sheen. A great commotion, giving rise to a camphor-coloured foam, was created in the sea by huge aquatic animals including large fishes, *makaras, timis, timingalas, niruddhas* and *tilatilikas*. Great torrential rivers fell into the sea with agitated fury, producing huge whirl-pools and a wild turmoil of confused ebb and flow.
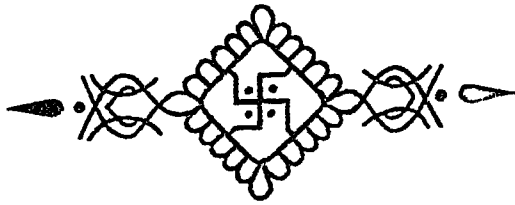
पच्चो-नियत्त-भममाण-लोलसलिलं पिच्छइ खीरोयसागरं सारय-रयणिकरसोम्मवयणा ११ ॥४४॥

तओ पुणो तरुणसूरमंडलसमप्पभं दिप्पमाणसोभं उत्तमकंचण-महामणि-समूह-पवरतेय-अट्ठसहस्स-दिप्पंत-नभप्पईवं कणगपयर-लंब-माण-मुत्तासमुज्जलं जलंतदिव्वदामं ईहामिग-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-संसत्त-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं गंधव्वोपवज्जमाण-संपुण्णघोसं निच्चं सजलघण-विउल-जलहर-गज्जिय-सद्दाणुणाइणा देवदुंदुहिमहारवेणं सयलमवि जीवलोयं पूरयंतं, कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत-धूव-वासंग-उत्तम-

पुनः वहीं गिरता तथा चारों ओर चक्कर लगाता हुआ चंचल प्रतीत होता था। ऐसे क्षीरोदसागर को शरत् पूर्णिमा के समान सौम्य मुखवाली त्रिशला ने देखा।
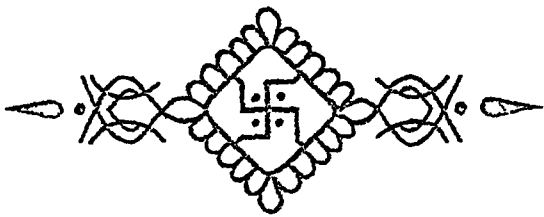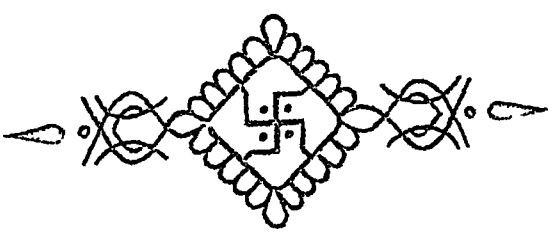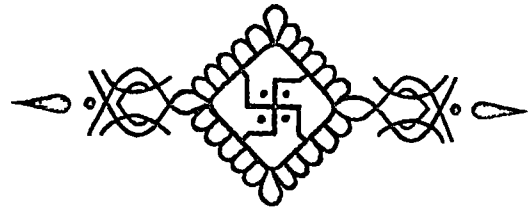
४५. तत्पश्चात् वह विमान का स्वप्न देखती है। वह देवविमान नवोदित सूर्य-मण्डल के समान द्युति वाला और देदीप्यमान शोभा से युक्त था। उसमें श्रेष्ठ स्वर्ण और महामणियों के समूह से निर्मित आठ हजार स्तंभ थे जो अपने प्रखर तेज से आकाश में दीपक के तुल्य प्रतिभासित हो रहे थे। उसमें स्वर्ण-पत्रों पर जड़े हुए निर्मल मोतियों के गुच्छे लटक रहे थे। प्रकाशमान दिव्य मालायें भी लटक रही थीं। उस विमान पर ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरुमृग, शरभ, चमरी गाय, श्वापद, हाथी और वनलता, पद्मलता आदि के अनेक प्रकार के भित्तिचित्र चित्रित थे। गन्धर्वों के द्वारा वाद्यमान वाजित्रों से वह निरन्तर शब्दायमान हो रहा था। उसमें सजल, सघन एवं विशाल मेघ की गर्जनारव के अनुरूप देवदुन्दुभियों का महारव – महान् घोष सम्पूर्ण जीवलोक को प्रतिध्वनित करता हुआ प्रतीत होता था। कृष्णागरु, श्रेष्ठ कुंदुरु और तुरुष्क की जलती हुई धूप द्वारा वह प्रशस्त रूप से

45. In her twelfth dream, Triśalā saw an immaculate lotus-like *vimāna* which shone with the radiance of the rising sun. On the *vimāna* stood eight thousand magnificent gold pillars studded with precious gems making the *vimāna* glow like a lamp in the sky. The *vimāna* was framed with sheets of gold on which hung celestial garlands of pearls, radiating a flame-like incandescence. It was decorated with rows of murals depicting wolves, bulls, horses, men, crocodiles, birds, children, *kinnaras*, *ruru*-deers, *śarabhas*, chowries, *saṁsaktas*, elephants, wild creepers and creepers interwoven with lotus flowers. The *vimāna* resounded with music made by *gandharvas* (celestial musicians). It reverberated with the tumultuous sounds produced by celestial drums which sounded like thunder caused by dense, moist, rain-laded clouds and echoed throughout the world. It was saturated with the intoxicating aroma of incense fumes arising from *kālāguru*, *kundurukka*
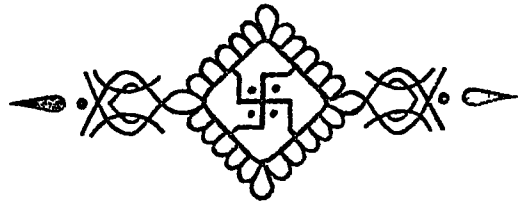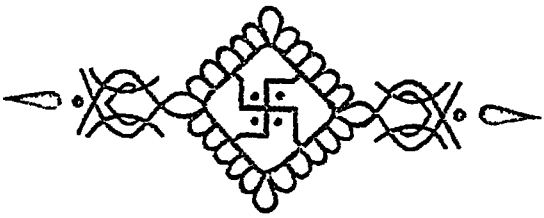
मघमघंत-गंधुद्धुयाभिरामं निच्चालोयं सेयं सेयप्पभं सुरवराभिरामं पेच्छइ सा साओवभोगं विमाणवरपुंडरीयं १२ ॥४५॥

ततो पुणो पुलग-वेरिंद नीलसासग-कक्केयण-लोहियक्ख-मरगय-[मसारगल्ल]-पवाल-फलिह-नील-सोगंधिय-हंसगब्भ-अंजण-चंदप्पह-वररयण-महियलपइट्ठिअं, गगणमंडलंतं पभासयंतं, तुंगं मेरुगिरि-संनिकासं पिच्छइ सा रयणनिकररासिं १३ ॥४६॥

सिंखि च—सा विउलुज्जल-पिंगल-महु-घय-परिसिच्चमाण-निद्धम-धगधगाइय-जलंत-जालुज्जलाभिरामं तरतमजोगेहिं जालपयरेहिं अण्णमण्णमिव अणुपइण्णं पेच्छइ जालुज्जलणग अंबरं व कत्थइ-पयंतं अतिवेगचंचलं सिहिं १४ ॥४७॥
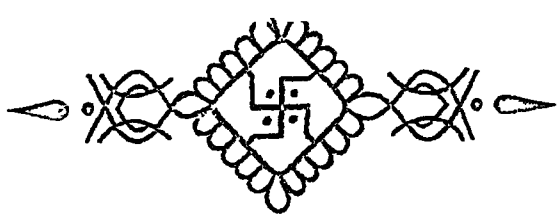
मघ-मघायमान हो रहा था तथा सुगन्धित गन्ध से रमणीय लग रहा था। उस विमान में सर्वदा प्रकाश रहता था। वह उज्ज्वल और श्वेत प्रभा वाला था। देवों से शोभायमान था। ऐसे सुखोपभोग-सम्पन्न श्रेष्ठ पुण्डरीक विमान को त्रिशला देखती है।

४६. इसके अनन्तर त्रिशला स्वप्न में रत्नराशि देखती है। पुलक, वज्र, इन्द्रनील, शास्यक, कर्केतन, लोहिताक्ष, मरकत, [मसारगल्ल,] प्रवाल, स्फटिक, नील, सौगन्धिक, हंसगर्भ, अंजन और चन्द्रप्रभा आदि श्रेष्ठ रत्नों के समूह का भूमि पर ढेर लगा हुआ था। उनकी प्रभा से सम्पूर्ण गगनमण्डल प्रभासित — आलोकित हो रहा था। वह रत्नों का समूह मेरु पर्वत के समान ऊंचा लग रहा था।

४७. तदनन्तर वह त्रिशला निर्धूम अग्निशिखा का स्वप्न देखती है। उस अग्नि की विपुल शिखायें ऊपर की ओर उठ रही थीं। वह निर्मल घी और पीत मधु से पुनः पुनः परिसिंचित होने के कारण निर्धूम—धूम्ररहित, धग-धगायमान और जाज्वल्यमान ज्वालाओं से रमणीय थी। वे छोटी-बड़ी ज्वालाएं एक दूसरी में मिली हुई प्रतीत होती थीं। ऐसा लग रहा था मानो ये ऊंची उठती हुई प्रदीप्त ज्वालाएं आकाश को पकड़ने-छूने का प्रयास कर रही हों। वे ज्वालाएं अति वेग के कारण अत्यधिक चंचल थीं।

and *turuṣka*. It was perennially illuminated with a bright silvery light and was furnished with every imaginable luxury. Even gods coveted it.

46. In her next dream she saw a great heap of gems, high as the Meru mountain. There were gems and precious stones such as *pulaka*, *vajra* (diamond), *indranīla*, *śasyaka*, *karketana*, *lohitākṣa*, *marakata*, *pravāla* (coral), *saugandhika*. *sphaṭika*, *haṁsagarbha*, *añjana* and a host of others. These gems were heaped over the earth and they illuminated the sky with their brilliance.

47. Triśalā's last dream was of a fire which burned with smokeless intensity and emitted a radiant glow. Great quantities of pure *ghee* and gold-brown honey were being poured on the fire and it burned with numerous flames that rose swiftly and concentrically. The flames fused and melted into each other, lighting up the firmament with their lustre.
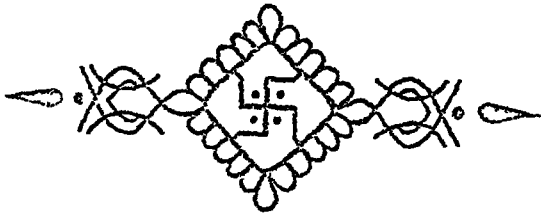
इमे एयारिसे सुभे सोमे पियदंसणे सुरूवे सुमिणे दट्ठूण सयणमज्झे पडिबुद्धा अरविंदलोयणा हरिसपुलइयंगी ।

एए चोद्दस सुमिणे, सव्वा पासेइ तित्थयरमाया ।
जं रयणिं वक्कमई, कुच्छिसि महायसो अरहा ॥—४८॥

तए णं सा तिसला खत्तियाणी इमेयारूवे ओराले चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठ जाव हियया धाराहयकयंबपुप्फगं पिव समूससियरोमकूवा सुमिणोग्गहं करेइ, सुमिणोग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पायपीढाओ पच्चोरुहित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सयणिज्जे जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं
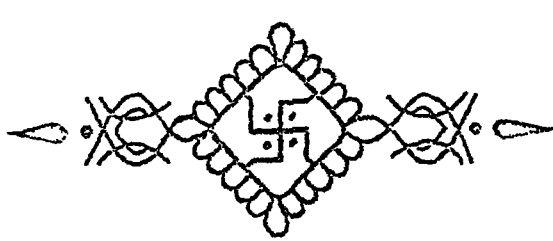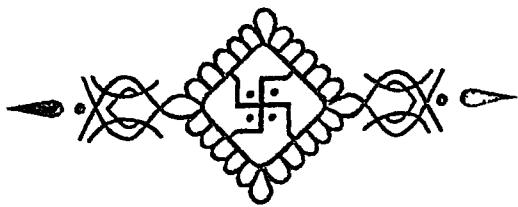
४८. इस प्रकार उपर्युक्त इन शुभ, सौम्य, प्रिय, दर्शनीय एवं सुन्दर रूपवाले स्वप्नों को देखकर, अरविन्द कमल के समान नेत्रवाली और हर्ष से पुलकित – रोमांचित अंगोंवाली सोती हुई त्रिशला क्षत्रियाणी जाग उठी।

48. These were the auspicious, benign, beautiful, and beatific dreams which lotus-eyed Triśalā saw. A thrill of joy ran through her heart and she woke up.

जिस रात्रि में महायशस्वी अरहंत तीर्थंकर माता की कुक्षि में आते हैं, उस रात्रि में सभी तीर्थंकरों की माताएं इन चौदह स्वप्नों को देखती हैं।

Mothers of all Tirthankaras are visited by these fourteen dreams whenever an illustrious Arhat is conceived unto their womb.

४९. तदनन्तर वह त्रिशला क्षत्रियाणी इस प्रकार पूर्व-वर्णित उदार चौदह महास्वप्नों को देखकर जागृत हुई, हर्षित हुई, यावत् उसका हृदय हर्षविभोर हो गया। मेघ की धाराओं से आहत कदम्ब पुष्प के समान उसके रोमकूप पुलकित हो उठे। वह स्वप्नों को स्मरण करती है। स्वप्नों का स्मरण करके वह शय्या से उठती है। शय्या से उठकर वह पादपीठ पर उतरती है। पादपीठ से उतर कर वह मन्द-मन्द, चपलता रहित, असम्भ्रान्त और अविलम्बित, राजहंस–सदृश गति से चलकर, जहाँ सिद्धार्थ क्षत्रिय शयन कर रहा है, वहाँ उस शयनकक्ष में आती है। वहाँ आकर वह इष्ट,

49. After this beatific dream-vision, Triśalā woke up with a happy heart. She was transported with a thrill of joy that made the hair of her body stand erect like a *kadamba* flower at the touch of rain. Thinking of her dreams she rose from her bed, climbed down her footstool and with a steady, graceful gait—neither hurried nor sluggish—like that of a regal swan, she walked to the couch where Siddhārtha slept. Very gently she woke him up, speaking to him in her sweet,
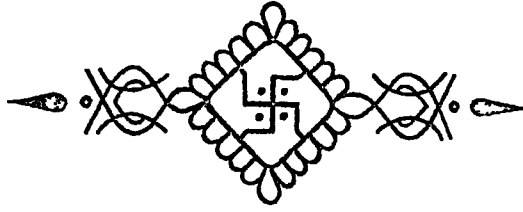
कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरियाहिं मियमहुरमंजुलाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं गिराहिं संलवमाणी २ पडिबोहेइ ।।४९।।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणि-कणग-रयण-भत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं जाव संलवमाणी २ एवं वयासी —।।५०।।

एवं खलु अहं सामी ! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सुत्त० ताव जाव पडिबुद्धा, तं जहा—गयउसह० गाहा। तं तेसिं सामी ! ओरालाणं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ।।५१।।

कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, हृदयस्पर्शी, उदार, कल्याणरूप, शिवशान्तिरूप, धन्यरूप, मंगलकारी, शोभाकारी, मृदु, मधुर, मंजुल, हृदयग्राही और हृदयालंकारक वाणी का उच्चारण करती-करती सिद्धार्थ क्षत्रिय को जगाती है।

५०. इसके पश्चात् त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजा की अनुज्ञा प्राप्त कर अनेक प्रकार के मणि, स्वर्ण और रत्नों से निर्मित तथा चित्रित भद्रासन पर बैठती है। भद्रासन पर बैठकर आश्वस्त और विश्वस्त होकर, श्रेष्ठ सुखासन पर बैठे सिद्धार्थ क्षत्रिय को पूर्वोक्त प्रकार की इष्ट यावत् हृदयालंकारक वाणी का संलाप करती हुई इस प्रकार बोली :

५१. "इस प्रकार निश्चय ही हे स्वामिन्! मैं आज उस पूर्व-वर्णित रमणीय शय्या पर शयन कर रही थी, यावत् चौदह स्वप्नों को देखकर जागृत हुई। वे चौदह स्वप्न इस प्रकार हैं – गज, वृषभ आदि। हे स्वामिन्! मेरी मान्यता है कि इन उदार चौदह महास्वप्नों का विशेष प्रकार का कल्याणकारी फल प्राप्त होगा।"

soft and measured voice with an amiable, pleasing and warm tone. She spoke with noble accents—open, heart-warming, gracious and generous. Her speech was charming, virtuous and auspicious: it had the power to delight and enrapture the heart.

50. And, then, with king Siddhārtha's leave, Triśalā took her seat. She sat on a chair garnished with rows of paintings and studded with gems and precious stones. She spoke again to Siddhārtha in her sweet and amiable voice, and said:

51. "Today, my lord, as I lay sleeping on my comfortable couch, I saw fourteen wondrous and beautiful dreams." She then recounted the objects she had seen in her dream-vision and said: "I feel, my lord, that these fourteen wondrous and beautiful dreams will surely bear exceedingly blessed fruits."

तए णं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिस-वसविसप्पमाणहियए धाराहय-नीव-सुरहिकुसुम-चंचुमालइय-रोमकूवे ते सुमिणे ओगिण्हति, ते सुमिणे ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसइ, ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविण्णाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थोग्गहं करेइ, अत्थोग्गहं करित्ता तिसलिं खत्तियाणिं ताहिं इट्ठाहिं जाव मंगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे २ एवं वयासी ॥५२॥

ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा, एवं सिवा, धन्ना, मंगल्ला, सस्सिरीया, आरुग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-(ग्रं.३००) मंगल्लकारगा णं तुमे देवा-
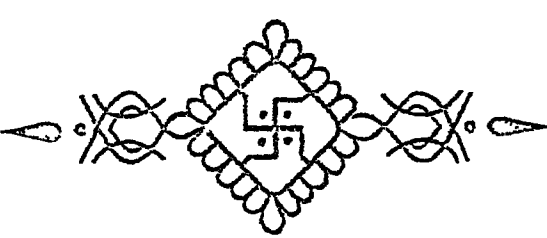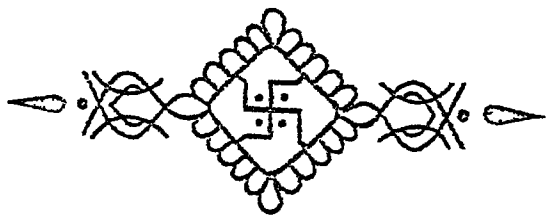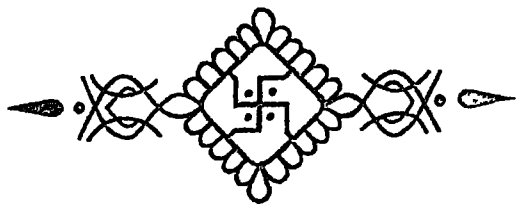
५२. इसके पश्चात् वह सिद्धार्थ राजा त्रिशला क्षत्रियाणी के मुख से इस अर्थ-वात को सुनकर, समझकर, हर्षित और सन्तुष्ट चित्त वाला हुआ, आनन्दित हुआ। मन में प्रीति उत्पन्न हुई। परम सौमनस्य – अत्यन्त आह्लाद को प्राप्त हुआ। उसका हृदय हर्षविभोर हो उठा। मेघ की धाराओं से आहत सुरभित कदम्ब पुष्प की तरह उसके रोमकूप पुलकित हो उठे। वह उन स्वप्नों का अवग्रहण करता है। उन स्वप्नों का अवग्रहण कर वह फल का अनुसन्धान करता है। फल का अनुसन्धान कर वह अपने स्वाभाविक प्रज्ञासहित बुद्धि-विज्ञान द्वारा उनमें से प्रत्येक स्वप्न के विशिष्ट अर्थ-फल का निश्चय करता है। विशिष्ट अर्थ का निश्चय करके वह इस प्रकार की इष्ट यावत् मांगल्यकारी, मृदु, मधुर और मंजुल वाणी का आलाप-संलाप करता-करता त्रिशला क्षत्रियाणी को इस प्रकार बोला :

52. On hearing Triśalā's words, king Siddhārtha was transported with joy. He reflected on the significance of the dreams in the light of his inborn wisdom and acquired knowledge. Then addressing Triśalā with an alluringly sweet, gracious and measured speech, he said :

५३. "हे देवानुप्रिये ! तुमने उदार स्वप्न देखे हैं। हे देवानुप्रिये ! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखे हैं। हे देवानुप्रिये ! तुमने शिवरूप, धन्य-मंगलरूप, शोभाकारक, आरोग्यकारक, तुष्टिकारक, दीर्घायुकारक, कल्याणकारक, मंगलकारक

53. "Truly, O beloved of gods, you have seen bountiful dreams. You have seen dreams that are beatific and auspicious. They augur long life, well being and gracious prosperity. They
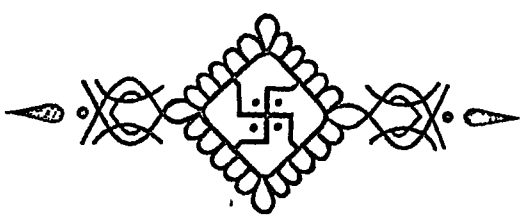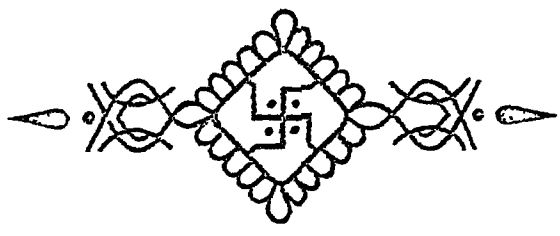
णुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, [तं जहा-] अत्थलाभो, देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! सुक्खलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं, अम्हं कुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडिंसयं, कुलतिलयं, कुलकित्तिकरं, [कुलवित्तिकरं,] कुलदिणयरं, कुलआहारं [कुलनंदिकरं, कुलजसकरं, कुलपायवं], कुलविवद्धणकरं, सुकुमालपाणिपायं, अहीणसंपुण्णपंचिंदियसरीरं, लक्खणवंजणगुणोववेयं, माणुम्माणप्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगं, ससिसोमाकारं, कंतं, पियदंसणं दारयं पयाहिसि ।।५३।।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्नविउलबलवाहणे रज्जवई राया
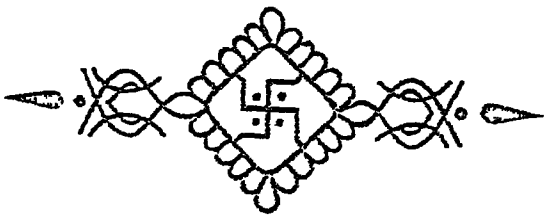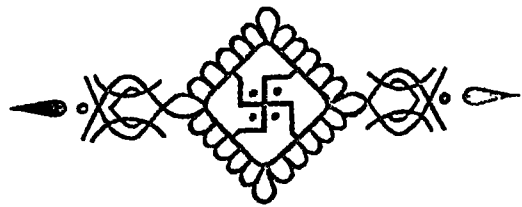
स्वप्न देखे हैं। हे देवानुप्रिये ! अर्थ-लक्ष्मी का लाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! भोग का लाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! पुत्र का लाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! सुख का लाभ होगा। हे देवानुप्रिये ! राज्य का लाभ होगा। इस प्रकार निश्चय से, हे देवानुप्रिये ! तुम परिपूर्ण नौ महीने और साढ़े सात अहोरात्रि व्यतीत होने पर, हमारे कुल में केतु–ध्वजा के समान, दीपक के समान, पर्वत के समान, अवतंसक–मुकुट के समान, तिलक के समान, कीर्ति करने वाले, [कुल का निर्वाह करने वाले] दिनकर – सूर्य के समान, कुल के आधार रूप, [समृद्धि करने वाले, यश बढ़ाने वाले, कुल में पादप-वृक्ष के समान] कुल की विशेष वृद्धि करने वाले, सुकोमल हाथ-पैर वाले, किसी भी प्रकार की हीनता से रहित तथा सम्पूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर वाले, लक्षण अर्थात् स्वस्तिक आदि उत्तम रेखाओं, व्यंजन अर्थात् तिल-मष आदि गुणों से युक्त, मान, उन्मान तथा प्रमाण से परिपूर्ण शरीर वाले, शोभायुक्त, सर्वांगसुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति के धारक, कान्त-मनोज्ञ एवं प्रियदर्शी पुत्र को जन्म दोगी।

presage the acquisition of a great fortune and of a large kingdom. They prophesy a pleasant, enjoyable and happy life. They also predict the birth of a son. After nine months seven-and-half-days from this day, O beloved of gods, you will give birth to a beautiful son. In him our family and clan will achieve fame and glory. He will be like a lamp unto our family, holding its banner high. He will be an ornament to our clan, its bejewelled crown. He will be like the sun to our clan: through him we will thrive. He will be to us like a mountain and like a shade-giving tree: he will be our support. He will be a source of joy to our clan. He will be born with perfect limbs which will manifest every mark of auspiciousness.

५४. और वह पुत्र जब बालभाव-बचपन से उन्मुक्त होकर, कला, विज्ञान आदि समस्त कलाओं में पारंगत होकर युवावस्था को प्राप्त करेगा उस समय वह शूर, वीर, विक्रान्त–तेजस्वी, विशाल और विपुल बल, वाहन–सेना आदि का धारक तथा राज्याधिपति राजा

54. "After growing out of infancy and reaching the threshold of manhood with a ripening intellect, your son will become a mighty warrior, exceedingly valiant and heroic. He will rule over a
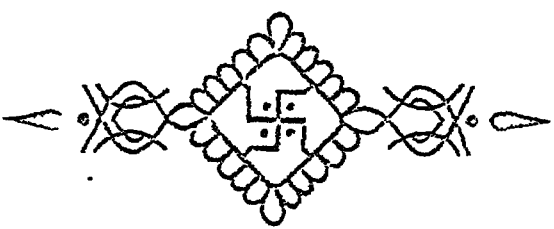
भविस्सइ, तं ओराला णं तुमे जाव दोच्चं पि तच्चं पि अणुवूहइ ॥५४॥

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव हियया करयलपरिग्गहियं दसनहं [सिरसावत्तं] मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ॥५५॥

एवमेयं सामी ! तहमेयं सामी ! अवितहमेयं सामी ! असंदिद्धमेयं सामी ! इच्छियमेयं सामी ! पडिच्छियमेयं सामी ! इच्छियपडिच्छियमेयं सामी ! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, ते सुमिणे सम्मं पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
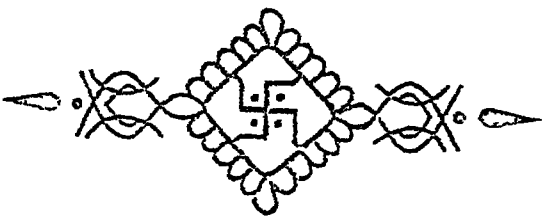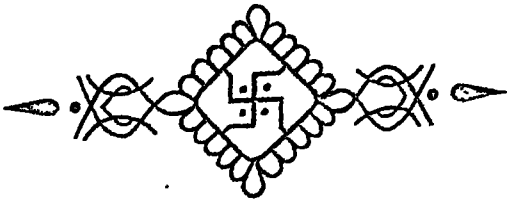
होगा । अतः तुमने जो उदार यावत् महास्वप्न देखे हैं वे सब अत्युत्तम हैं ।" इस प्रकार सिद्धार्थ क्षत्रिय दो बार-तीन बार अर्थात् पुनः-पुनः प्रशंसा करता है ।

great kingdom with large armies and numerous carriages." With these words, Siddhārtha acclaimed Triśalā's vision. He repeated his words twice and then thrice.

५५. उसके पश्चात् वह त्रिशला क्षत्रियाणी सिद्धार्थ राजा के मुख से इस प्रकार स्वप्नों के अर्थ को सुनकर, हृदय में धारण कर हर्षित हुई, सन्तुष्ट हुई, यावत् प्रफुल्लित हृदय वाली होकर, दशों नख संयुक्त हों इस प्रकार दोनों करतलों को जोड़कर, शिर पर आवर्त पूर्वक अंजलि किये हुए इस प्रकार बोली :

55. On hearing king Siddhārtha's words, Triśalā was transported with joy. With folded palms placed on her forehead—all ten fingers touching—she bowed to Siddhārtha and exclaimed :

५६. "हे स्वामिन् ! यह ऐसा ही है । हे स्वामिन् ! जैसा आपने कहा है वैसा ही है । हे स्वामिन् ! आपका कथन सत्य है । हे स्वामिन् ! यह असंदिग्ध–संदेहरहित है । हे स्वामिन् ! यह अभिलषित–इष्ट है । हे स्वामिन् ! यह प्रतीच्छित–प्रमाणित है । हे स्वामिन् ! यह इच्छित और प्रमाणित है । इस प्रकार आपने जो स्वप्न-फल बताया है, वह सत्य है ।" ऐसा कहकर वह स्वप्नों के पूर्वोक्त अर्थ को सम्यक् रूप से स्वीकार करती है । उन स्वप्नों के अर्थ को सम्यक् प्रकार से स्वीकार कर, सिद्धार्थ राजा की आज्ञा लेकर, अनेक प्रकार के मणिरत्नों से जड़े हुए भद्रासन से उठती है । भद्रासन से उठकर, अत्वरित, अचपल, असम्भ्रान्त, अविलम्बित, राजहंसी के समान मन्थर गति से जहां स्वयं का शयनकक्ष है, वहां आती है । वहां आकर

56. "You are uttering the truth, my lord. You are expressing a certainty. What you say is inevitable, there is not a shred of doubt about it. And it is desirable, my lord, it is extremely desirable, it is desirable beyond compare." And having thus expressed her commendation of Siddhārtha's words, she rose from her ornamented chair, and with Siddhārtha's leave, walked back to her bed, with the grace and easeful gait of a regal swan.

Back in her bed-chamber, she uttered these words :
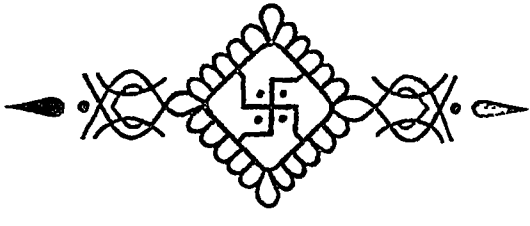
सयणिज्जं दुरूहइ, दुरूहइत्ता एवं वयासी ॥५६॥

मा मे ते उत्तमा पहाणा मंगल्ला सुमिणा अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्मिस्संति त्ति कट्टु देवयगुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं लट्ठाहिं कहाहिं सुमिणजागरियं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरति ॥५७॥

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधोदयसित्तं संमज्जिओवलित्तं सुगंधवर-पंचवण्ण-पुप्फवयारकलियं कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत-धूव-मघमघंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं
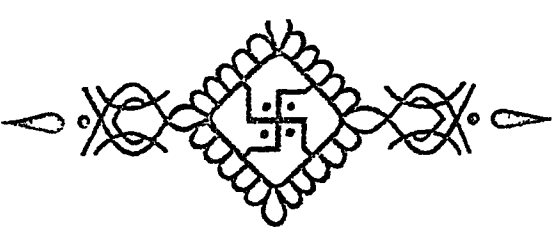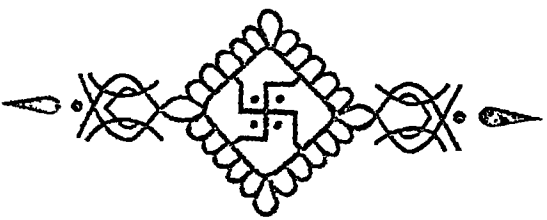
शय्या पर वैठती है। शय्या पर वैठकर इस प्रकार कहने (विचार करने) लगती है :

५७. "मेरे ये उत्तम, प्रधान, मंगलरूप स्वप्न अन्य पाप-स्वप्नों से कहीं निष्फल न हो जाएं इसलिये देव और गुरुजनों से सम्बन्धित, प्रशस्त, मांगलिक और धर्मरस से ओत-प्रोत कथाओं द्वारा मुझे स्वप्नों की रक्षा के लिये जागृत रहना चाहिए।" ऐसा विचार कर वह जागृत रही।

57. "I do not want my supremely prodigious and auspicious dreams to be perverted by other sinful dreams". And having expressed this sentiment, she spent the night wakefully, listening to moral, virtuous, moving and laudable tales of gods and of great men, so as to safeguard the potency of her dreams.

५८. तदनन्तर सिद्धार्थ क्षत्रिय प्रातःकाल होने पर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है। बुलाकर उन्हें इस प्रकार कहता है – "हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आज बाह्य उपस्थानशाला–सभामण्डप को विशेष रूप से गन्धोदक–सुगन्धित जल से सिंचित करो। सफाई करके लेपन करो। उत्तम सुगन्धित पांच वर्णों के पुष्पसमूह से आकलित–सुशोभित करो। कृष्णागरु, श्रेष्ठ कुन्दुरु, तुरुष्क (लोवान) आदि सुगन्धित धूप जलाकर मघमघायमान करो और उस गन्ध से उसको अभिराम-रमणीय बनाओ। जहां-तहां सुगन्धित चूर्णों का छिड़काव कर उसे सुगन्धित गुटिका के समान

58. Early the next day, as the day was just dawning, king Siddhārtha assembled all his family-attendants and instructed them with these words : "Hurry, O beloved of gods, go and cleanse the outer audience-hall with meticulous care. Have it swept, plastered and perfumed with scented water. Let it be beautified with fragrant flowers of five different hues. Let it be saturated with the heady incense of the best *kālāguru*, *kundurukka*, and *turuṣka* and other strong aromatic fumes: let the hall be turned into a huge incense-stick. Then
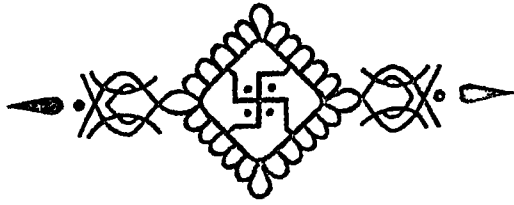
करेह कारवेह य, करेत्ता कारवेत्ता य सीहासणं रयावेह, सीहासणं रयावित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।।५८।।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयल जाव कट्टु एवं सामि त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंइ, एवं सामि त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधोदगसित्तं जाव सीहासणं रयाविंति, रयावित्ता जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहीयं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स

बनाओ। (यह कार्य) स्वयं करो, दूसरों से करवाओ और स्वयं करके तथा अन्यों से करवाकर वहां सिंहासन को सजाओ। सिंहासन को सज्जित करके मेरी इस आज्ञा को शीघ्र ही प्रत्यर्पित करो अर्थात् कार्य सम्पन्न हो गया है, इसकी मुझे सूचना दो।"
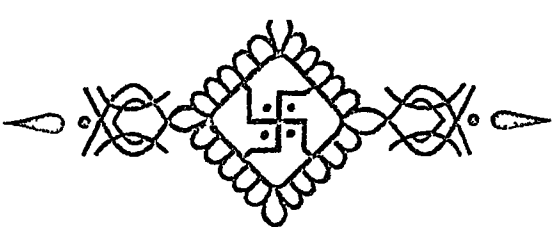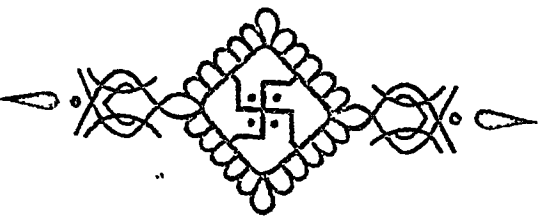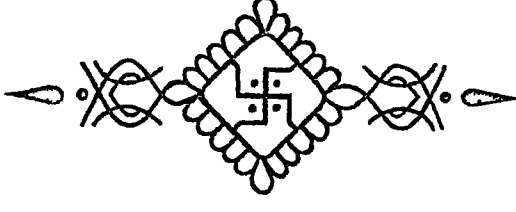
let a throne be placed in the hall. Get this done quickly and report to me."

५६. तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष सिद्धार्थ राजा द्वारा इस प्रकार का आदेश दिये जाने पर हर्षित यावत् उल्लसित हो हाथ जोड़कर यावत् अंजलिवद्ध हो – "स्वामिन्! जैसी आज्ञा" कहकर आदेश को विनयपूर्वक वचनों से स्वीकार करते हैं। स्वामी के आदेश को सविनय वचनों से स्वीकार कर सिद्धार्थ क्षत्रिय के पास से (बाहर) निकलते हैं। निकल कर जहां बाह्य उपस्थानशाला – सभामण्डप है, वहां आते हैं। वहां आकर शीघ्र ही विशेष रूप से बाह्य सभामण्डप को सुगन्धित जल से सिंचन कर यावत् सिंहासन सज्जित कर, जहां पर सिद्धार्थ क्षत्रिय है वहां पर आते हैं। वहां पर आ कर, दशनखों से सम्मिलित दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक पर आवर्तपूर्वक अंजलि कर सिद्धार्थ क्षत्रिय

59. These words of king Siddhārtha gladdened the hearts of his attendants. They saluted him with folded palms and humbly acknowledged his commands with the words "it will be done, my lord," and left his presence.

They went to the outer audience-hall, carried out the orders and reported back to king Siddhārtha, saluting him with folded palms.

तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।।५९।।
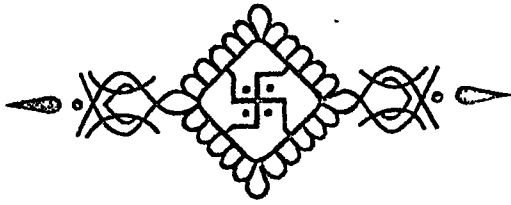
तए णं सिद्धत्थे खत्तिए कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पल-कमल-कोमलुम्मोलियंमि अह पंडुरे पहाए, रत्तासोय-पगास-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धरागसरिसे कमलायरसंडबोहए बंधुजीवग-पारावयचलण-नयण - परहुयसुरत्तलोयण - जासुअणकुसुमरासि - हिंगुलनियरातिरेय-रेहंत-सस्सिरीए अहक्कमेणं ऊइए दिवायरे तस्स य करपहरापरद्धंमि अंधयारे बालायवकुंकुमेणं खचियम्मिव जीवलोए, उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ ।।६०।।

सयणिज्जाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अट्टणसालं
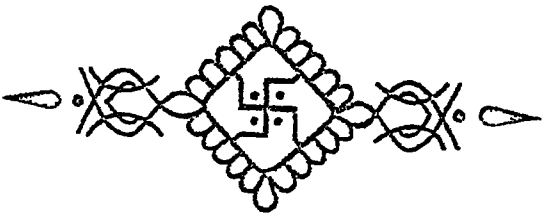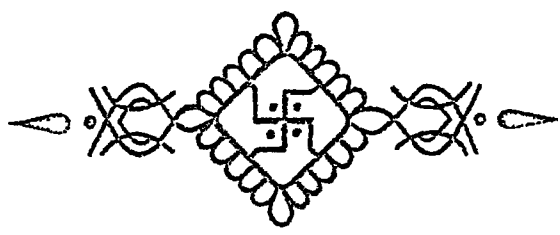
की आज्ञा पुनः अर्पित करते हैं अर्थात् आदेशानुसार कार्य सम्पन्न कर दिया है, ऐसा कहते हैं।

६०. पश्चात् सिद्धार्थ क्षत्रिय रात्रि व्यतीत होने पर तथा प्रभातकालीन प्रकाश के समय शय्या से उठता है। उस समय सूर्य विकासी उत्पल कमल की केशरिकाएं विकसित होने लगी हैं, पाण्डुर – उज्ज्वल प्रभा होने लगी है, रक्त अशोक के प्रकाश, किंशुक (केसु) के रंग, तोते के मुख, गुंजा – चिर्मी के अर्द्ध भाग के लाल रंग के समान, जलाशयों में कमलों को विकसित करने वाला, बन्धुजीवक-रक्तपुष्प, कबूतर के चरण और नेत्र, कोयल के आरक्त लोचन, जासू के फूलों का ढेर, हिंगुल का समूह इत्यादि लाल वस्तुओं से भी अधिक रक्तवर्ण से दीप्त तथा शोभायुक्त, यथाक्रम से सूर्य के उदित होने पर उसकी किरणों के हस्तप्रहार से अन्धकार का नाश हो गया है, उसकी प्रारंभिक किरणों के तेज से मानो समग्र जीवलोक कुंकुम जैसे लाल रंग से भर गया है, ऐसे तेज से प्रदीप्त हजार किरणों वाले विक्रान्त सूर्य के उदित होने पर शय्या से उठता है।

६१. (सिद्धार्थ क्षत्रिय) शय्या से उठकर पादपीठ से नीचे उतरते हैं। पादपीठ से उतरकर जहां व्यायामशाला है वहां आते हैं। वहां आकर व्यायामशाला में

60. Next day, early at dawn, with the light yet pale, when the tender *kamala* and *utpala* lotuses had opened their petals, the sun shone red. Its colour could be compared with a red *aśoka* flower, or *kiṁśuka*-blooms, or the beak of a parrot, or the red shell of a *guñja*-berry, or the *bandhujīva*-flower, or the eyes and feet of a pigeon, or the eyes of a cuckoo, or a bunch of China-roses or a heap of *hiṅgula*. The sun rose slowly, dispelling the darkness with his rays, and filled the world with *kum-kum*-coloured sunshine. As the thousand-rayed sun glowed radiantly, king Siddhārtha rose from his bed.

61. He climbed down the foot-stool of his bed and walked down to his gymnasium. He applied
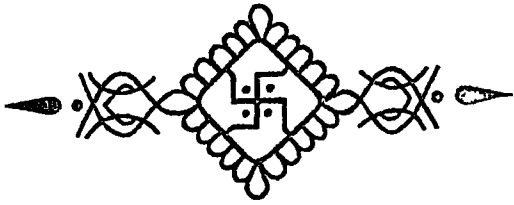
अणुपविसति, अट्टणसालं अणु-
पविसित्ता अणेगवायाम-जोग्ग-
वग्गण - वामद्दण-मल्लजुद्धकर-
णेहिं संते परिस्संते सयपाग-
सहस्सपागेहिं सुगंध-तिल्लमा-
इएहिं पीणणिज्जेहिं तप्पणि-
ज्जेहिं दीवणिज्जेहिं दप्पणि-
ज्जेहिं विंहणिज्जेहिं मयणि-
ज्जेहिं सव्विंदियगायपल्हाय-
णिज्जेहिं अब्भंगिए समाणे
तिल्लमंडवंसि निउणेहिं पडि-

प्रवेश करते हैं। व्यायामशाला में प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम योग्य – शस्त्राभ्यास, वल्गन – कूदना, व्यामर्दन–अंगों का मरोड़ना, मल्लयुद्ध, करण–आसन आदि करते हैं। व्यायाम करने से जब वे परिश्रान्त हो जाते हैं तब सुगन्धित शतपाक सहस्रपाक तैलों से अंगमर्दन–मालिश करवाते हैं। इन तैलों का मर्दन, रस रुधिर आदि धातुओं की वृद्धि करने वाला, तृप्त करने वाला, क्षुधादि को दीप्त करने वाला, बल और तेज को बढ़ाने वाला, काम को उद्दीप्त करने वाला, पुष्टिकारक और अंग-प्रत्यंग को आनन्द देने वाला था। तैलमण्डप में अंगमर्दन–मालिश करने वाले पुरुष भी मर्दन क्रिया में निपुण, संपूर्ण
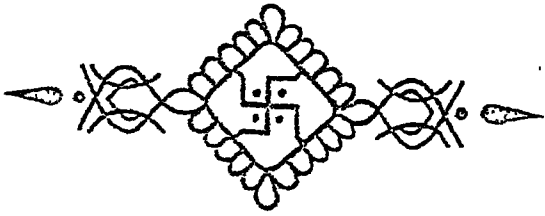
himself to various wholesome exercises : such as high-jumps, athletic jousts and wrestling. When tired and fatigued, he lay down on a mat of oiled-skin and was massaged with skilful dexterity by untiring masseurs. These masseurs were in the service of king Siddhārtha and they were the leading men in their profession : they were thoroughly trained and accomplished experts. They were strong-limbed but had soft hands and feet.
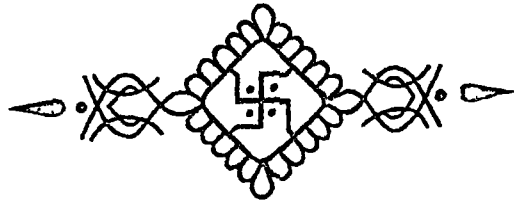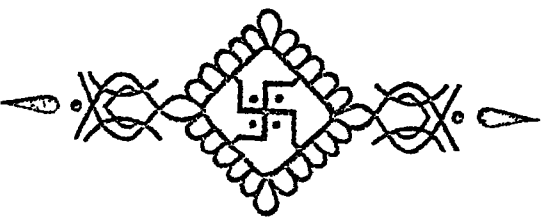
पुण्णपाणिपायसुकुमालतलेहिं पुरिसेहिं अब्भंगणपरिमद्दणुव्वलणकरण-गुणनिम्माएहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं जियपरिस्स-मेहिं अट्ठिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए सुह-परिकम्मणाए संबाहणाए संवाहिए समाणे अवगयपरिस्समे अट्टण-सालाओ पडिनिक्खमइ ॥६१॥

अट्टणसालाओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवा-गच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजालकलावाभिरामे विचित्तमणिरयणकोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि नाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे पुप्फोदएहि य गंधोदएहि य [उण्होदएहि य सुहोदएहि य] सुद्धोदएहि य कल्लाणयकरणपवरमज्जणविहीए मज्जिए । तत्थ कोउयसएहिं
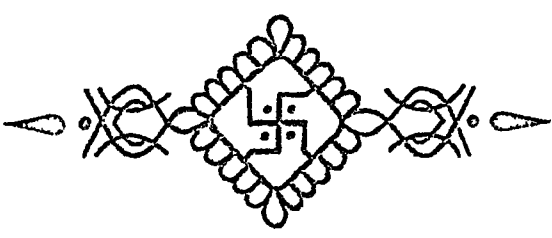
हाथ-पैरों के कोमल तल वाले, अभ्यंगन–तेल लगाने में, परिमर्दन–मालिश करने में, उद्वलन–मालिश किये हुये तेल को पसीने द्वारा बाहर निकालने आदि में मर्दन कला के विशेषज्ञ थे और चतुर, दक्ष, पुष्ट, कुशल, मेधावी तथा परिश्रम से हार मानने वाले नहीं थे। ऐसे मालिश करने वाले पुरुषों ने अस्थिसुख, मांससुख, त्वचासुख, रोमराजि सुख इस प्रकार चार प्रकार की सुखदायक, अंग-सुश्रुपाकारक अच्छी तरह से मालिश की। मर्दन से थकान दूर होने पर वह सिद्धार्थ क्षत्रिय व्यायामशाला से बाहर निकलता है।

६२. (सिद्धार्थ क्षत्रिय) व्यायामशाला से बाहर निकलकर जहां मज्जनगृह–स्नानगृह है वहां आते हैं। वहां आकर के स्नानगृह में प्रवेश करते हैं। स्नानगृह में प्रवेश करके मुक्ताओं की झालरों के समूह से रमणीय, विचित्र मणिरत्नों से जटित भूभाग (फर्श) वाले मनोहर स्नानमण्डप में विविध मणिरत्नों से निर्मित अद्भुत स्नानपीठ (स्नान चौकी) पर सुखपूर्वक बैठते हैं। वहां सिद्धार्थ पुष्पोदक, गन्धोदक [उष्णोदक, शुभोदक], शुद्धोदक द्वारा कल्याणकारी उत्तम विधि से स्नान करते हैं। स्नान करते समय अनेक प्रकार के सैकड़ों कौतुक (दृष्टिदोषादि से रक्षा के लिये मषी – तिलक, रक्षा – बन्धनादि प्रयोग) करते हैं।

They knew all the arts of anointing, kneading and massaging the body with swinging movements so as to revitalize it. They rubbed Siddhārtha with perfumed oils which had been boiled a hundred and a thousand times. With a four-fold technique of shampooing, they stimulated Siddhārtha's bones, flesh, skin and body-hair. Their massage was pleasurable, nourishing, strength-giving, stimulatingly aphrodisiacal and exhilarating to the senses and the limbs.

62. Siddhārtha then went to his bath-chamber from the gymnasium. The chamber was adorned with nets of pearl. Its floor was checkered with a mosaic of precious stones. It contained a luxurious bathing-pavilion where a bathing-stool, studded with gems and decorated with rows of paintings, had been placed. He sat down comfortably on this stool and took a pleasant and beneficial bath with clear and pure water which was warm, perfumed and flower-fragrant.
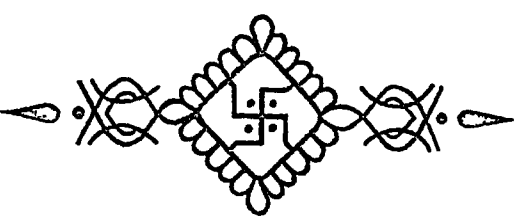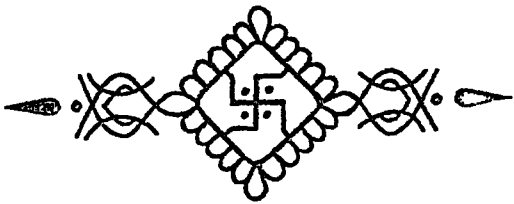
बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हल-सुकुमाल-गंधकासाइय-लूहियंगे अहय-सुमहग्घ-दूसरयणसुसंवुए सरस-सुरहि-गोसीस-चंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावण्णगविलेवणे आविद्धमणिसुवण्णे कप्पिय-हार-द्धहार-तिसरय-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्तय-कयसोहे पिणद्धगेविज्जे अंगुलिज्जगललियकयाभरणे नाणामणि-कणग-रयण-वरकडग-तुडिय-थंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए कुंडलउज्जोतिताणणे मउडदित्तसिरए हारोत्थयसुकयरइयवच्छे मुद्दियापिंगलंगुलिए पालंबपलंबमाणसुकयपड-उत्तरिज्जे नाणामणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-निउणोविय-मिसिमिसिंत-विरइय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-आविद्ध-वीरवलए, किंबहुणा ?

कल्याणप्रद और श्रेष्ठ स्नान क्रिया पूर्ण होने पर रोएँदार, मुलायम, सुगन्धित लालवस्त्र (तौलिया) से शरीर को पोंछते हैं। पश्चात् अक्षत-नवीन एवं बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं। शरीर पर सरस और सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन का लेप करते हैं। पवित्र माला पहनते हैं और शरीर पर अंगराग लगाते हैं। मणियों से जड़े हुये स्वर्ण निर्मित हार, अर्द्धहार, त्रिशर के हार गले में धारण करते हैं। लंबा और लटकते हुये झुमके वाला कटिसूत्र–करधनी धारण कर सुशोभित होते हैं। उन्होंने कण्ठ में कण्ठे धारण किये, अंगुलियों में सुन्दर मुद्रिकायें–अंगूठियां पहनीं। विविध मणिरत्नों से जटित स्वर्ण के श्रेष्ठ कड़े और भुजबन्ध से उसकी भुजाएं अटल हो गईं। इससे सिद्धार्थ का सौन्दर्य अधिक दीप्तिमान् हो उठा। कुण्डल पहनने से उसका मुख चमकने लगा। मुकुट धारण करने से उसका मस्तक कान्ति से आलोकित हो उठा। हारों से आछन्न हृदय दर्शनीय बन गया। धारण की हुई मुद्रिकाओं की पीतवर्णी आभा से अंगुलियां चमकने लगीं। पश्चात् सिद्धार्थ ने लम्बा लटकता हुआ उत्तरीय वस्त्र सुन्दर रीति से धारण किया और चतुर कलाकार–कारीगरों द्वारा निर्मित विविध मणि-रत्नों से स्वर्ण-जटित, विमल, बहुमूल्य, देदीप्यमान, दृढ़ सांधोवाला, विशिष्ट सुन्दर वीरवलय धारण किया। अधिक वर्णन क्या किया जाए!

After this excellent beneficial bath which offered a hundred delights, Siddhārtha was rubbed dry with a fuzzy and soft red-coloured perfumed towel. His body was anointed with a fragrant and unctuous paste made of sandal and *gośīrṣa* and sweet-smelling ointments were applied to his person. He then clothed himself in magnificent and expensive apparel. He wore a lustrous garland and an exquisite necklace studded with gems and woven with gold : the necklace comprised large and small strings of eighteen and nine and three beads and was adorned with hanging pendants. He wore a girdle, a chain and also finger-rings which were exquisitely beautiful. His fore-arms were graced with magnificent armlets *(kaṭaka)* and with the *truṭika* ornament. He put on an upper garment frilled with jewelled trimmings.

His adornments heightened the natural grace of his handsome figure : his chest glittered with beautifully-made necklaces; finger-rings gave a gold-brown hue to his fingers; earrings lent lustre to his face and his head shone bright with a crown. On his wrist he wore such bracelets as are worn by valiant heroes : they were priceless bracelets

कप्परुक्खए चेव अलंकियविभूसिए नरिंदे, सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं मंगलजयसद्दकयालोए अणेग-गणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगरनिगम-सिट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहनिगए इव गहगणदिप्पंतरिक्खतारागणाण मज्झे ससि व्व पियदंसणे नरवई मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ ॥६२॥

मज्जणघराओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयति, निसीइत्ता अप्पणो उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेयवत्थपच्चुत्थयाइं सिद्धत्थयकयमंगलोवयाराइं रयावेति, रयावित्ता
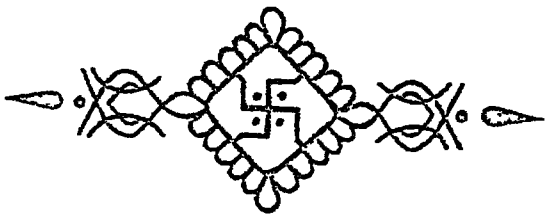
मानों वह सिद्धार्थ नरेन्द्र कल्पवृक्ष ही हो ! इस प्रकार अलंकृत व विभूषित हुआ । ऐसे सिद्धार्थ क्षत्रिय के शिर पर छत्र धारण करने वालों ने कोरंट पुष्प की मालायें जिसमें लटक रही हैं ऐसा छत्र धारण किया । चमरधारक श्वेत व उत्तम चामर डुलाने लगे । उन्हें देखते ही लोग 'जय हो, जय हो' मंगल शब्द करने लगे ।

इस प्रकार अलंकृत होकर अनेक गणनायकों, दण्डनायकों, राइसर – युवराजों, तलवर – नगररक्षकों, माडम्बिक–जमीदारों, कौटुम्बिक–चौधरियों, मन्त्रियों, महामन्त्रियों, गणक–ज्योतिपियों, द्वारपालों, अमात्यों, चेटों, पीठमर्दकों, नागर–नगर निवासी प्रतिष्ठित पुरुषों, निगम–व्यापारियों, श्रेष्ठियों, सेनापतियों, सार्थवाहों, दूतों, सन्धिपालों आदि से परिवृत्त होकर, जैसे श्वेत महामेघ युक्त वादलों से चन्द्र निकलता है, जैसे ग्रह, नक्षत्र और तारागणों के मध्य चन्द्र शोभित होता है, वैसे ही चन्द्र के समान प्रियदर्शी नरपति सिद्धार्थ क्षत्रिय स्नानघर से वाहर निकला ।

६३. स्नानघर से निकलकर (सिद्धार्थ क्षत्रिय) जहां वाह्य सभामण्डप है वहां पर आते हैं। वाह्य सभामण्डप में आकर, पूर्व दिशा की ओर मुख कर, सिंहासन पर वैठ कर अपने से ईशानकोण में सफेद वस्त्र से आच्छादित और जिन पर सरसों आदि से मांगलिक उपचार किये गये हैं ऐसे आठ भद्रासन स्थापित करवाये । भद्रासन लगवाकर

radiant with gold and the delicate inlay of precious gems and stones. Expert artisans had fashioned them faultlessly: they had well-rounded joints and were artfully executed with inlay-work and inset-work. King Siddhārtha shone like the celestial wish-fulfilling tree *(kalpavṛkṣa)*, beautifully decorated and embellished. This great king, this paramount ruler, a lion and a bull among men, shone with a halo of royalty as he emerged from the bath-chamber. A regal parasol, decorated with *koriṇṭa* wreaths and with garlands, was held over his head; he was being fanned with gorgeous white chowries. People greeted him with auspicious cries of 'Victory'. He was attended by numerous chieftains, army-captains, rulers, plutocrats, knights, border-chiefs, retainers, ministers, chief-ministers, sooth-sayers, door-keepers, officials, serving-men, hanger-ons, leading citizens, guild-chiefs, magnates, generals, caravan-leaders, messengers and ambassadors. He appeared like the resplendent moon emerging from a great white cloud, surrounded by bright planets, stars and constellations.

63. King Siddhārtha came to his outer audience-hall and, facing east, took his seat on his throne.
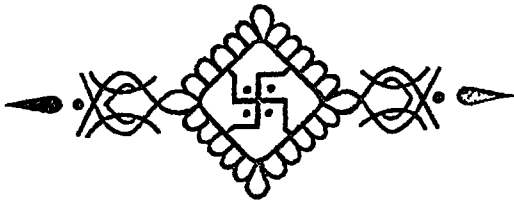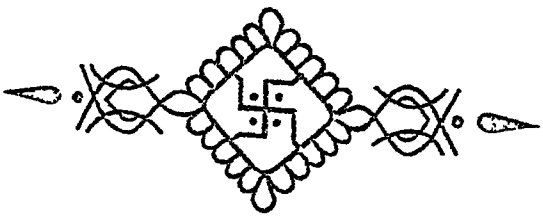
अप्पणो अदूरसामंते नाणामणिरयणमंडियं अहियपेच्छणिज्जं महग्घ-वरपट्टणुग्गयं सण्हपट्टभत्तिसयचित्तताणं ईहामिय-उसह-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्ति-चित्तं अब्भिंतरियं जवणियं अंछावेइ, अंछावेत्ता नाणामणिरयण-भत्तिचित्तं अत्थरयमिउमसूरगोत्थयं सेयवत्थपच्चुत्थयं सुमउयं अंग-सुहफरिसगं विसिट्ठं तिसलाए खत्तियाणीए भद्दासणं रयावेति ॥६३॥

भद्दासणं रयावित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थपारए विविह-सत्थकुसले सुविणलक्खणपाढए सद्दावेह ॥६४॥

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा [हट्ठतुट्ठ] जाव हियया, करयल जाव पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स
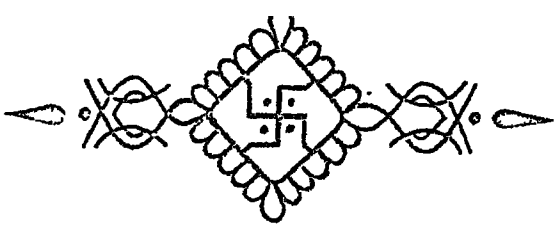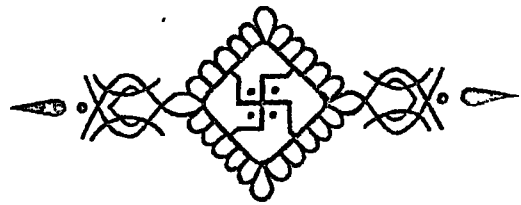
स्वंय से न तो बिल्कुल पास में और न ज्यादा दूर विविध मणिरत्नों से मंडित, अत्यधिक दर्शनीय, बहुमूल्य, श्रेष्ठ पत्तन–बड़े नगर में उत्पादित व निर्मित स्निग्ध पट्ट (वस्त्र) पर सैकड़ों चित्रों से चित्रित, ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षी, सूर्य, किन्नर, रुरु, शरभ, अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि चित्रों वाला पर्दा बैठक के भीतर लगवाता है। यवनिका – पर्दा लगवाकर उस पर्दे के भीतर के हिस्से में अनेक मणिरत्नों से जटित एवं अद्भुत मुलायम गद्दी व तकियों वाला, श्वेत वस्त्रों से आच्छादित, अत्यधिक कोमल, शरीर के लिये सुखद स्पर्श वाला और विशिष्ट प्रकार का भद्रासन त्रिशला क्षत्रियाणी के बैठने के लिये लगवाता है।

६४. भद्रासन लगवाकर सिद्धार्थ क्षत्रिय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाता है। बुलाकर उन्हें इस प्रकार कहता है – "हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही अष्टांग महानिमित्त के सूत्र व अर्थ के पारंगत, विविध शास्त्रों के ज्ञाता ऐसे स्वप्नलक्षण-पाठकों को बुलाकर लाओ।"

६५. तदनन्तर वे कौटुम्बिक पुरुष सिद्धार्थ राजा के इस प्रकार कहने पर [हर्षित हुए, संतुष्ट हुए,] यावत् प्रसन्न चित्त हुए। हाथ जोड़कर यावत् राजा के कथन को विनयपूर्वक वचनों से स्वीकार करते हैं। स्वीकार करके सिद्धार्थ

And then, after performing protective rites with mustard seeds, he arranged for eight excellent chairs, covered with white cloth, to be placed towards his north-east. He next had a gorgeously-designed screen placed near him, neither too far nor too close. The screen was made of the costliest silk and was studded with gems and precious stones. It was embroidered with hundreds of figures spread in rows. These figures comprised: wolves, bulls, horses, men, *makaras*, birds, children, *kinnaras*, *ruru*-deers, *śarabhas*, chowries, elephants, wild creepers and creepers entwined with lotuses.

Siddhārtha then had a stately and comfortable chair put behind the screen for Triśalā to sit on. This chair was inlaid with gems and decorated with paintings. It had a spotlessly clean soft cushion which was delightful to the touch. Over the chair was spread a piece of white cloth.

64. Siddhārtha called his attendants and gave these instructions : "Hurry, beloved of gods, go and fetch those dream-diviners who are well-versed in the great *sūtra*-work on prophecy and know it in all its eight sections and who are also adept in other disciplines."
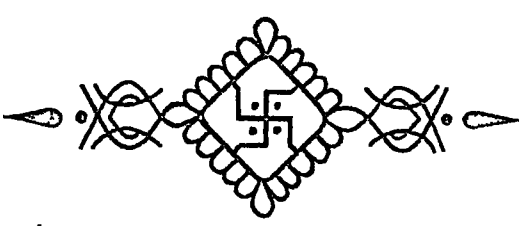
खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता कुंडग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुविणलक्खणपाढगाणं गेहाइं तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता सुविणलक्खणपाढए सद्दाविंति ॥६५॥

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवराइं परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सिद्धत्थयहरियालियाकयमंगलमुद्धाणा सएहिं २ गेहेहिंतो निग्गच्छंति ॥६६॥

निग्गच्छित्ता खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सिद्धत्थस्स रण्णो भवणवरवडिंसगपडिदुवारे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता भवणवरवडिंसगपडिदुवारे एगयओ मिलंति, एगयओ
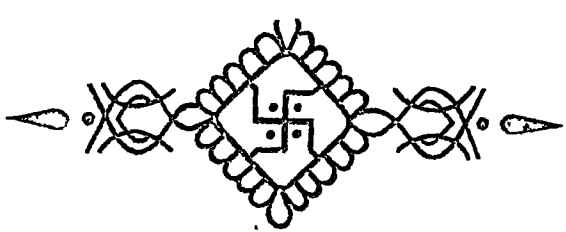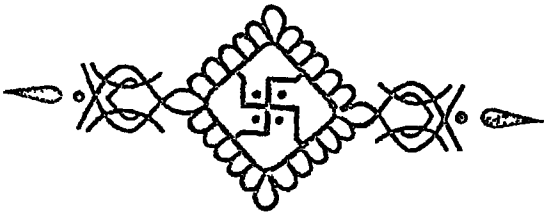
क्षत्रिय के पास से निकलते हैं। निकल कर वे कुण्डग्राम नगर के बीचोंबीच होकर जहां स्वप्नलक्षण-पाठकों के घर हैं वहां आते हैं। वहां आकर स्वप्नलक्षण-पाठकों को बुलाते हैं।

६६. अनन्तर वे स्वप्नलक्षण-पाठक सिद्धार्थ क्षत्रिय के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हर्षित हुए, संतुष्ट हुए यावत् प्रसन्नचित हुए। उन्होंने स्नान किया, वलिकर्म किया, कौतुक (तिलक आदि), मांगलिक कृत्य और प्रायश्चित्त कृत्य किये। राज्य-सभा में प्रवेश योग्य शुद्ध एवं मंगलरूप श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण किया। भार में अल्प किन्तु अधिक मूल्यवाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। मंगल हेतु सरसों, दूव आदि मस्तक पर धारण कर अपने-अपने घरों से निकले।

६७. निकलकर क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के मध्य में होते हुए जहां राजा सिद्धार्थ के प्रशस्त भवन का प्रधान प्रवेश द्वार है, वहां आते हैं। वहां आकर प्रशस्त भवन के प्रधान प्रवेशद्वार पर सब इकट्ठे होते हैं। वे सब

65. These words of king Siddhārtha gladdened the hearts of his attendants. They bowed to him and acknowledged his instructions. Leaving Siddhārtha's presence, they went into Kuṇḍagrāma and came to that part of the town where the dream-diviners had their homes. They summoned the dream-diviners and spoke to them.

66. The words of king Siddhārtha's attendants gladdened the hearts of the dream-diviners. Instantly, they took their bath, performed auspicious, propitiatory, evil-expelling rites and worshipped their family-deities with food-offerings. They dressed themselves in clean and presentable apparel which were attractive as well as auspicious. They also adorned themselves with the costliest jewellery that they possessed. Before they came out of their homes, protective rites were performed over their heads with mustard seeds and *dūrvā*-grass.

67. Then crossing the *kṣatriya*-sector of Kuṇḍa-grāma, they came to the outer gates of king Siddhārtha's stately palace. They formed themselves into a group and together they went into the outer
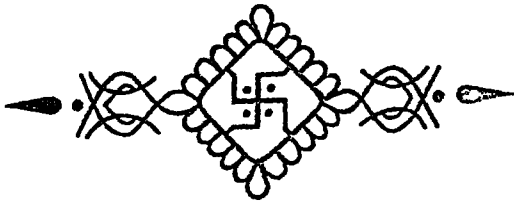
मिलित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु, सिद्धत्थं खत्तियं जएणं विजएणं वद्धावेंति ॥६७॥

तए णं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्थेणं रण्णा वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिया ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं उवगहिया समाणा पत्तेयं २ पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति ॥६८॥

तए णं सिद्धत्थे खत्तिए तिसलं खत्तियाणिं जवणियंतरियं ठावेइ, ठावित्ता पुप्फफलपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि जाव सुत्तजागरा ओहीरमाणी २ इमेयारूवे ओराले [जाव] चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा तं । जहा—गय-वसह०
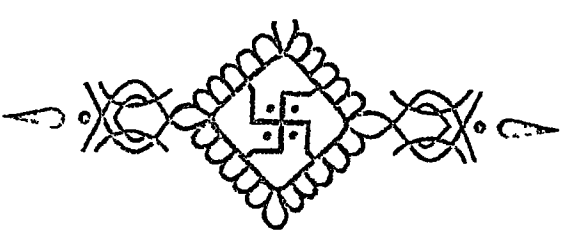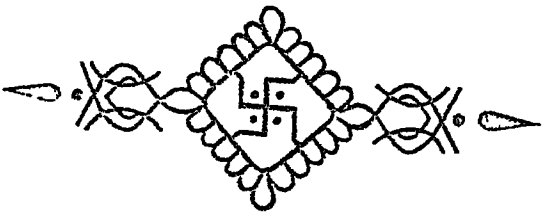
मिलकर जहां वाह्य सभामण्डप है, जहां सिद्धार्थ क्षत्रिय है वहां आते हैं। वहां आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् शिर पर अजंलि कर सिद्धार्थ क्षत्रिय को 'जय हो, विजय हो' वचनों से वधाते हैं।

६८. पश्चात् सिद्धार्थ राजा ने उन स्वप्नलक्षण-पाठकों को वंदन किया, उनकी अर्चना की, उनका सत्कार और सम्मान किया तथा प्रिय वाणी से उनकी अभ्यर्थना की। पश्चात् वे (स्वप्नलक्षण-पाठक) पृथक-पृथक् पूर्व स्थापित भद्रासनों पर वैठ जाते हैं।

६९. अनन्तर सिद्धार्थ क्षत्रिय त्रिशला क्षत्रियाणी को यवनिका (पर्दे) के पीछे विठाता है। वैठाकर हाथ में फल-फूल लेकर विशेप विनय के साथ उन स्वप्नफल-पाठकों से उसने इस प्रकार कहा – "हे देवानुप्रियो! निश्चित ही आज त्रिशला क्षत्रियाणी ने पूर्वोक्त प्रकार की शय्या पर सोते हुए यावत् अर्द्धनिद्रावस्था में इस प्रकार के उदार [यावत्] चौदह महास्वप्न देखे और देखकर जागृत हुई। वे स्वप्न हैं :– गज, वृपभ इत्यादि।

audience-hall where the king was in audience. They saluted the king and greeted him with words of benediction saying: "May you be ever successful and victorious."

68. King Siddhārtha bowed to the dream-diviners, honouring and propitiating them with proper offerings. The diviners then took their seats on the chairs that had been laid out for them.

69. Siddhārtha then had Triśalā sit behind the screen. And with his palms full of flowers and fruits, in order to show respect, he addressed the dream-diviners and spoke to them of Triśalā's dreams and exclaimed: "Truly, O beloved of gods,
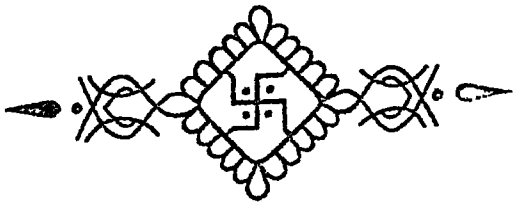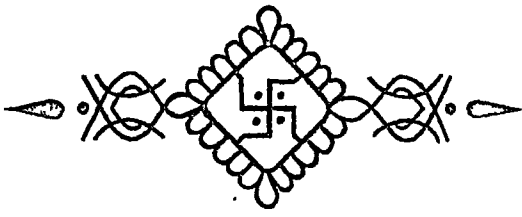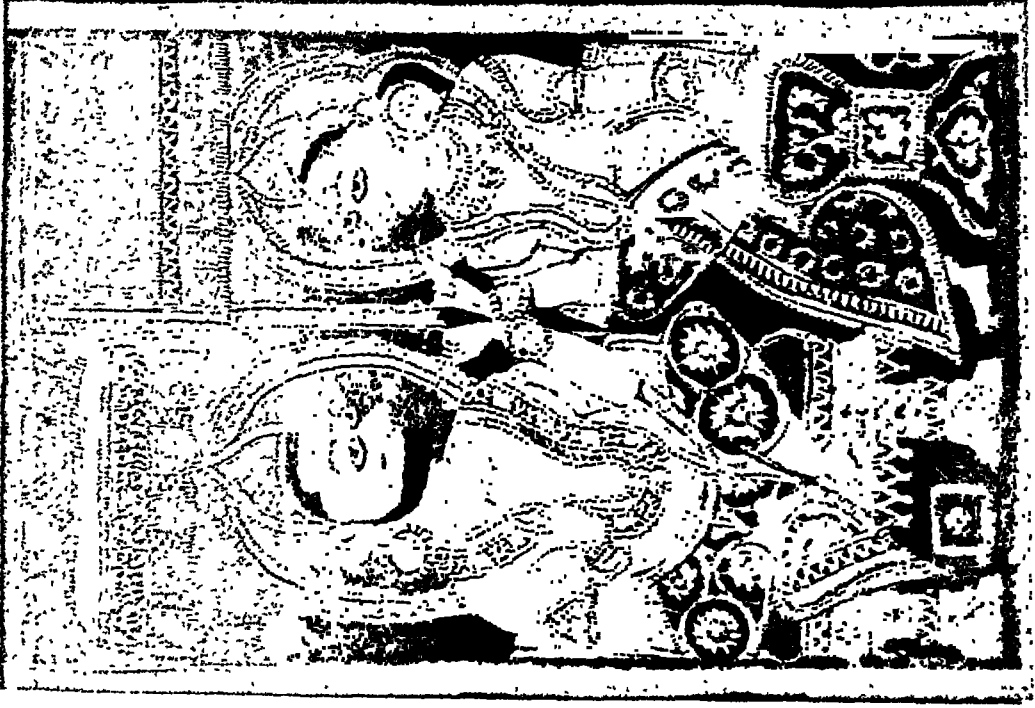
गाहा। तं एतेसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं देवाणुप्पिया! ओराला णं [जाव] के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सति? ॥६९॥

तते णं ते सुविणलक्खण-पाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया ते सुमिणे ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं पविसंति, ईहं पविसित्ता अन्न-

हे देवानुप्रियो ! इन उदार चौदह महास्वप्नों का मैं मानता हूँ कि कोई विशेष प्रकार का कल्याणकारी फल होना चाहिए।"
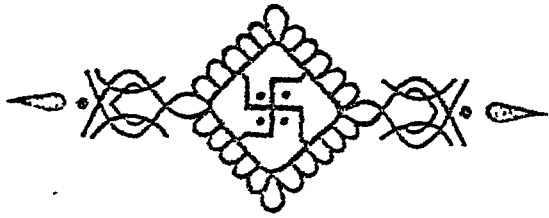
७०. पश्चात् वे स्वप्नलक्षण-पाठक सिद्धार्थ क्षत्रिय के मुख से इस बात को सुनकर, समझकर हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए, प्रसन्न-चित्त वाले हुए। उन्होंने उन स्वप्नों पर सामान्य रूप से विचार किया। सामान्य रूप से विचार कर स्वप्नों के अर्थ पर विशेष रूप से चिन्तन करने लगे। अर्थ का विशेष रूप से चिन्तन करने के पश्चात् वे आपस में

I believe that these bountiful dreams augur exceedingly beneficial fruits."

70. King Siddhārtha's words gladdened the hearts of the dream-diviners. They began reflecting on the dreams. They ventured interpretations, consulted with each other, discussed, arrived at meanings and finally came to a conclusion. Having grasped the true meaning of the dreams
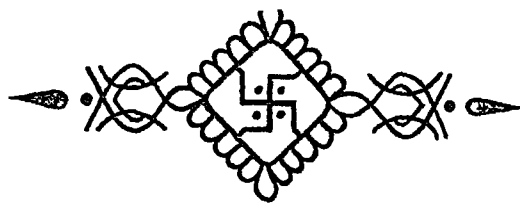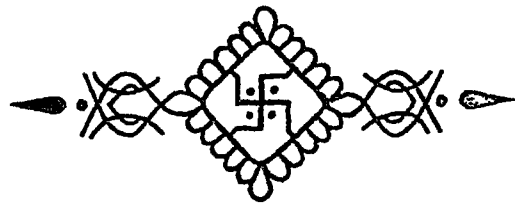
मन्नेणं सद्धिं संलावेंति, संलावित्ता तेसिं सुमिणाणं लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अहिगयट्ठा सिद्धत्थस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा सिद्धत्थं खत्तियं एवं वयासी ॥७०॥

एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुमिणसत्थे बायालीसं सुविणा तीसं महासुमिणा बावत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा, तत्थ
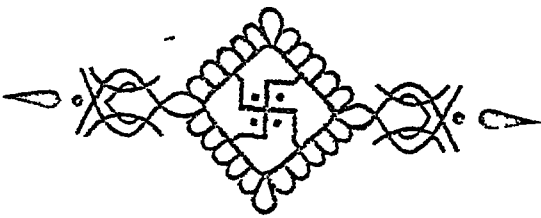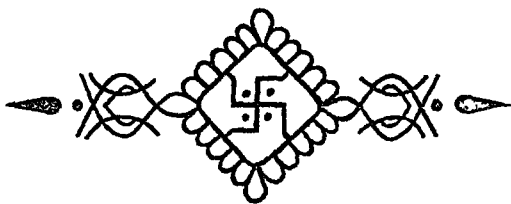
विचार-विमर्श करने लगे। आपस में विचार-विमर्श कर स्वप्नों के अर्थ को जान पाये, गंभीर अर्थ को ग्रहण कर पाये। उन्होंने परस्पर एक दूसरे से अभिप्राय पूछा और एक निश्चय पर आये। जब वे सभी स्वप्नों के सम्बन्ध में एकमत हो गये तब सिद्धार्थ राजा के सम्मुख स्वप्नशास्त्रों के अनुसार, वचन बोलते-बोलते सिद्धार्थ क्षत्रिय को इस प्रकार कहने लगे :

७१. "हे देवानुप्रिय ! निश्चय रूप से हमारे स्वप्न-शास्त्र में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न कुल बहत्तर स्वप्न बतलाये गये हैं।

they addressed king Siddhārtha, commencing their words of prophecy with an exposition of the science of dream-divination :

71. "*Our science, O beloved of gods, speaks* of forty-two minor dreams and of thirty momentous dreams *(mahāsvapna)* : it speaks of seventy-two dreams in all. The fourteen wondrous dreams
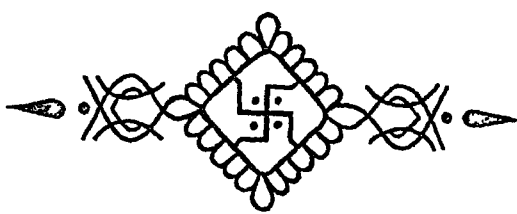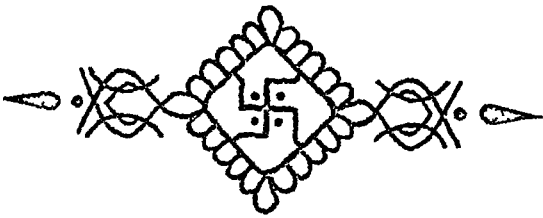
णं देवाणुप्पिया ! अरहंतमायरो वा चक्कवट्टिमायरो वा अरहंतंसि वा चक्कहरंसि वा (ग्रं० ४००) गब्भं वक्कममाणंसि [एएसिं] तीसाए महासुमिणाणं इमे चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति। तं जहा – गय० गाहा ॥७१॥

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एतेसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे सत्त महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥७२॥ बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कम-माणंसि एतेसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥७३॥ मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कंते समाणे एतेसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरं एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥७४॥
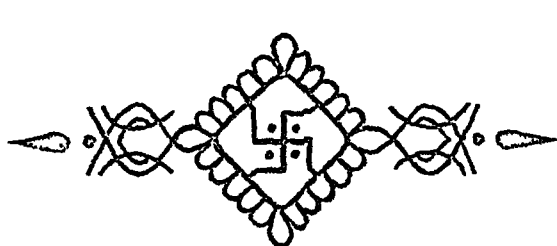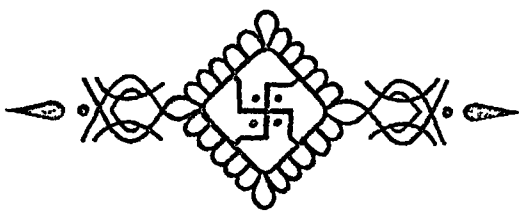
हे देवानुप्रिय ! जब अरहंत अथवा चक्रवर्ती गर्भ में उत्पन्न होते हैं तब उनकी माताएं [उन] तीस महास्वप्नों में से इन चौदह महास्वप्नों को देखकर जागृत होती हैं। वे इस प्रकार हैं—गज आदि।

७२. वासुदेव के गर्भ में उत्पन्न होने पर उनकी माताएं इन चौदह महास्वप्नों में से कोई भी सात महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं।

७३. बलदेव के गर्भ में आने पर उनकी माताएँ इन चौदह महास्वप्नों में से कोई भी चार महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं।

७४. माण्डलिक राजा के गर्भ में आने पर उनकी माताएं इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं।

you have recounted are from the group of thirty; they visit upon the mothers of Arhats and Cakravartīs at their moment of conception.

72. "Mothers of Vāsudevas are visited by seven of these fourteen momentous dreams.

73. "Mothers of Baladevas are visited by four of these fourteen dreams.

74. "And mothers of Māṇḍalikas are visited by any one of these fourteen dreams.
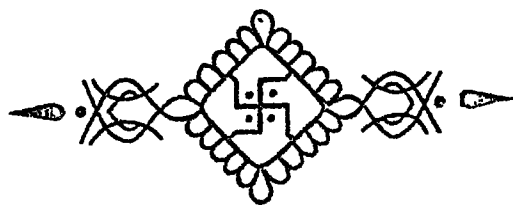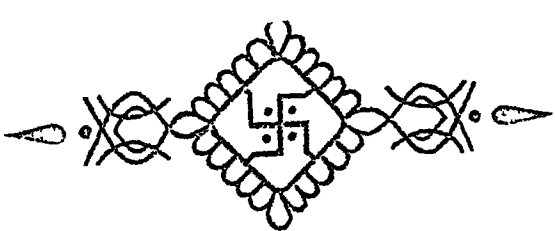
इमे य णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए चोद्दस महा-सुमिणा दिट्ठा, तं ओराला णं जाव मंगल्लकारगा णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा । तं जहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो देवाणुप्पिया ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिया ! सुक्खलाभो देवाणुप्पिया ! रज्जलाभो देवाणुप्पिया ! एवं खलु देवाणुप्पिया ! तिसला खत्तियाणी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं, तुम्हं कुलकेउं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसगं कुलतिलगं कुलकित्तिकरं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलाधारं कुलपायवं कुलतंतुसंताणविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणपमाणपडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिइ ॥७५॥
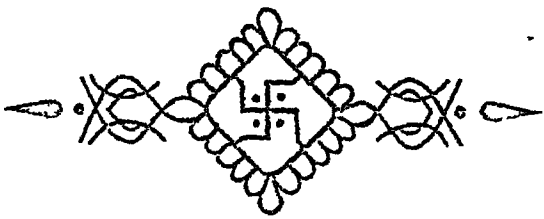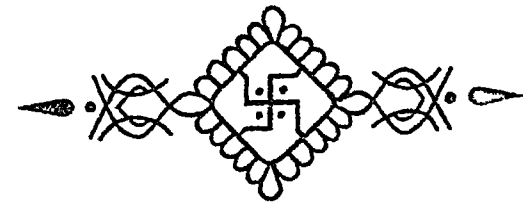
७५. हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी ने ये चौदह महास्वप्न देखे हैं। हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी ने उदार स्वप्न देखे हैं। यावत् ये मंगलकारक स्वप्न देखे हैं। हे देवानुप्रिय ! वे अर्थ–लक्ष्मी का लाभ करने वाले हैं। हे देवानुप्रिय ! वे भोग का लाभ करने वाले हैं। हे देवानुप्रिय ! वे पुत्र का लाभ करने वाले हैं। हे देवानुप्रिय ! वे सुख का लाभ करने वाले हैं। हे देवानुप्रिय ! वे राज्य का लाभ करने वाले हैं। हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही त्रिशला क्षत्रियाणी नव मास पूर्ण होने पर और उस पर साढे सात अहोरात्रि व्यतीत होने पर, आपके कुल में ध्वजा के समान, कुल में दीपक के समान, कुल में पर्वत के समान, कुल में मुकुट के समान, कुल में तिलक के समान, कुल की कीर्ति वढ़ाने वाला, कुल की समृद्धि करने वाला, कुल के यश का विस्तार करने वाला, कुल का आधार, कुल में वृक्ष के समान, कुल में सन्तति-पुत्र पौत्रादि की विशेप वृद्धि करने वाला, हाथ-पैर से सुकुमार, अवयवों एवं पांचों इन्द्रियों से परिपूर्ण, लक्षण और व्यंजन के गुणों से युक्त, मान उन्मान प्रमाण से परिपूर्ण, सुजात, सर्वांगसुन्दर, चन्द्र के समान सौम्य आकृति का धारक, मनोहर, प्रियदर्शी और रूपवान् पुत्र को जन्म देगी।

75. "Undoubtedly, O beloved of gods, Triśalā has seen dreams which are most auspicious and bountiful. They presage fortune and happiness; they augur the acquisition of a kingdom and the birth of a son after nine months and seven-and-a-half-days. Your son will be born with perfect limbs, manifesting every mark of auspiciousness.
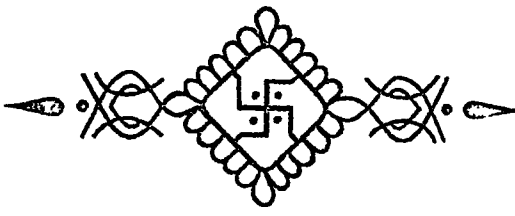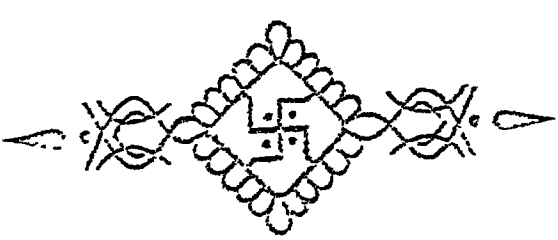
से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जुव्वण-गमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिण्ण[विपुल]बलवाहणे चाउरंत-चक्कवट्टी रज्जवई राया भविस्सइ, जिणे वा तेलोक्कनायगे धम्मवर-चक्कवट्टी। तं ओराला णं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा, जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मंगल्लकारगा णं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा ॥७६॥

तए णं से सिद्धत्थे राया तेसिं सुमिणलक्खणपाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए करयल जाव ते सुमिण-लक्खणपाढए एवं वयासी ॥७७॥

एवमेयं देवाणुप्पिया! [तहमेयं देवाणुप्पिया! अवितहमेयं देवाणुप्पिया!] इच्छियमेयं देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया!
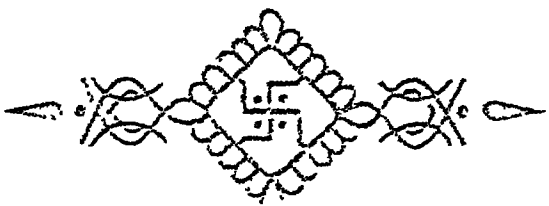
७६. श्रौर वह पुत्र बाल्यावस्था को पूर्णकर, विज्ञान श्रादि समस्त कलाओं में पारंगत होकर जब युवावस्था को प्राप्त करेगा तब वह शूर, वीर, तेजस्वी होगा। विस्तीर्ण श्रौर विपुल सैन्यबल श्रौर वाहन – सेना (हस्ति, अश्व, रथ श्रादि) का धारक होगा। चतुर्दिक् समुद्र पर्यन्त भूमण्डल का चक्रवर्ती सम्राट् होगा। अथवा तीन लोक का नायक श्रेष्ठ धर्म का चक्रवर्ती या श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाला जिन तीर्थंकर होगा। अतः हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी ने ये उदार स्वप्न देखे हैं। यावत् हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी ने आरोग्यकारक, तुष्टिकारक, दीर्घायुकारक, कल्याणकारक श्रौर मंगलकारक स्वप्न देखे हैं।"

७७. अनन्तर वह सिद्धार्थ राजा उन स्वप्नलक्षण-पाठकों के मुख से इस प्रकार का स्वप्नों का फल सुनकर, समझकर हर्षित हुआ, तुष्ट हुआ, यावत् उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ श्रौर हाथ जोड़कर यावत् अंजलि कर उन स्वप्नलक्षण-पाठकों से इस प्रकार बोला :

७८. "हे देवानुप्रिय ! यह ऐसा ही है। [हे देवानुप्रिय ! जैसा आपने कहा है वैसा ही है। हे देवानुप्रिय ! आपका कथन सत्य है, यथार्थ है।] हे देवानुप्रिय ! यह अभिलपित है, इष्ट है। हे देवानुप्रिय ! यह प्रमाणित है, स्वीकृत है।

76. "On growing up and on reaching manhood with a ripe intellect, your son will become a valiant hero and a great king, ruling his kingdom with large armies and numerous carriages. He will be a Cakravartī with his dominions extending over the four quarters.

"But it may also so happen that he will become a great Dharma-cakravartī, a Tīrthaṅkara, the leader of the whole world.

"Truly, O beloved of gods, Triśalā has seen bountiful dreams, dreams presaging a long life, good health and auspicious prosperity."

77. These words gladdened the heart of king Siddhārtha. He bowed to the dream-diviners and acclaimed their divination with these words :
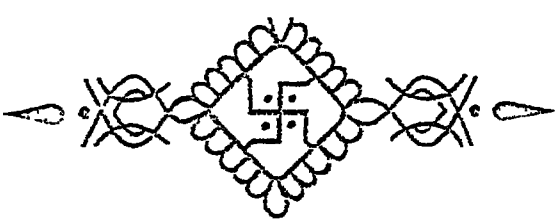
इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छति, पडिच्छित्ता ते सुमिण-लक्खणपाढए विउलेणं असणेणं पुप्फगंध[वत्थ]मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइत्ता पडिविसज्जेइ ॥७८॥

तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव तिसला खत्तियाणी जवणियंतरिया तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलिं खत्तियाणिं एवं वयासी ॥७९॥

एवं खलु देवाणुप्पिए ! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा जाव एगं महासुमिणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥८०॥

इमे य णं तुमे देवाणुप्पिए ! चोद्दस महासुमिणा दिट्ठा,[तं]ओराला
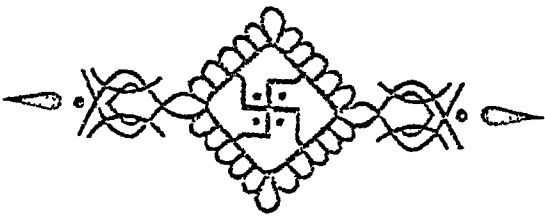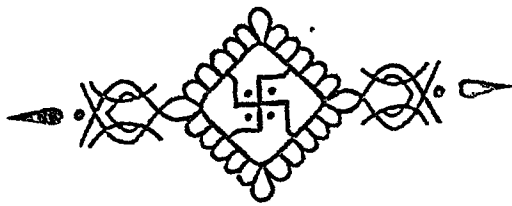
हे देवानुप्रिय ! आपका यह कथन इच्छित और स्वीकृत है। जैसा आपने स्वप्नों का फल बतलाया है वह सत्य है।" इस प्रकार वे उन स्वप्नार्थों को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करते हैं। स्वीकार कर उन स्वप्नलक्षण-पाठकों को विपुल खाद्य पदार्थ, पुष्प, [वस्त्र,] सुगन्धित चूर्ण, मालाएं, आभूषण आदि प्रदान कर उनको सत्कारित और सम्मानित करते हैं। सत्कार और सम्मान कर उनके जीवन-पर्यन्त चले ऐसा विपुल प्रीतिदान देते हैं। सम्पूर्ण जीवन-योग्य विपुल प्रीतिदान देकर स्वप्नलक्षण पाठकों को सम्मान पूर्वक विदा करते हैं।

७९. अनन्तर सिद्धार्थ क्षत्रिय अपने सिंहासन से उठते हैं। उठकर जहां त्रिशला क्षत्रियाणी पर्दे के पीछे बैठी थी वहां आते हैं। वहां आकर त्रिशला क्षत्रियाणी को इस प्रकार कहते हैं :

८०. "हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार निश्चय से स्वप्नशास्त्रों में बयालीस स्वप्न यावत् उन महास्वप्नों में से एक महास्वप्न को स्वप्न में देखकर जागृत होती हैं।

८१. हे देवानुप्रिये ! तुमने जो ये चौदह महास्वप्न देखे हैं, वे उदार हैं।

78. "You are uttering the truth, O beloved of gods, you are speaking of the inevitable. And what you say is desirable, it is extremely desirable, it is desirable beyond compare. You are certainly unerring in your prophesy." With these words he humbly acknowledged their divination. He then paid his homage to the dream-diviners and honoured them with large quantities of flowers, perfumes, clothes, garlands and ornaments. Joyously, he endowed them with generous gifts for their livelihood and gave them leave to depart.

79–81. Then Siddhārtha climbed down his throne and walked to the screen behind which Triśalā was sitting and repeated to her all that the dream-diviners had said.
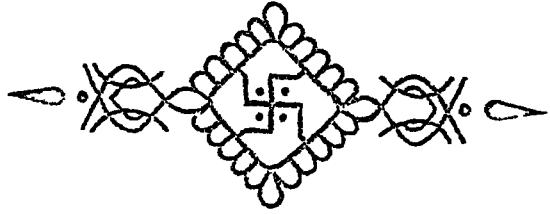
णं तुमे जाव जिणे वा तेलोक्कनायगे धम्मवर-चक्कवट्टी ॥८१॥

तए णं सा तिसला [खत्तियाणी] एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव हियया, करयल जाव ते सुमिणे सम्मं संपडिच्छइ ॥८२॥

सम्मं संपडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अतुरियं अचवलं असंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविट्ठा ॥८३॥

जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे रायकुलंसि साहरिए, तप्पभिइं च णं बहवे वेसमणकुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं से जाइं इमाइं पुरापोराणाइं महानिहाणाइं भवंति, तं जहा—पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगोत्तागाराइं, उच्छिन्नसामियाइं
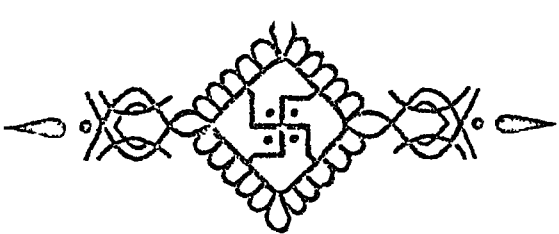
यावत् तुम्हें तीन लोक के नायक, श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती अथवा श्रेष्ठ धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाले जिन तीर्थंकर बनने वाले पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी।"

८२. उसके पश्चात् वह त्रिशला क्षत्रियाणी इस प्रकार स्वप्न फल सुनकर, समझकर हर्षित हुई, संतुष्ट हुई, यावत् उसका हृदय अत्यन्त प्रमुदित हुआ। हाथ जोड़कर यावत् वह स्वप्नों के अर्थ को सम्यक् रूप से स्वीकार करती है।

८३. सम्यक् प्रकार से स्वीकार कर, सिद्धार्थ राजा की अनुज्ञा प्राप्त कर, विविध मणिरत्नों की रचना से चमचमाते हुए भद्रासन से उठती है। उठकर त्वरा रहित, चपलता रहित, भ्रान्ति रहित, विलम्ब रहित, राजहंसी के समान मन्थर गति से जहां स्वयं का भवन है वहां आती है। वहां आकर अपने भवन में प्रवेश करती है।

८४. जिस दिन से श्रमण भगवान् महावीर इस राजकुल में संहरित हुए उस दिन से वैश्रमण कुबेर के अधीनस्थ, तिर्यक्लोक में निवास करने वाले बहुत से जृम्भक देव इन्द्र की आज्ञा से जो अत्यन्त प्राचीनतम महानिधान (जमीन में गाड़े हुए खजाने) हैं, जैसे – जिस गड़े हुए धन का वर्तमान समय में कोई स्वामी नहीं रहा, जिसमें कोई भी वृद्धि करने वाला सेवक नहीं रहा, धन भण्डार स्थापित करने वाले स्वामी का कोई गोत्रीय भी नहीं रहा, जिन धन-भण्डारों के मालिकों का भी उच्छेद हो गया,

82. Siddhārtha's words gladdened the heart of Triśalā and she acknowledged the divination with folded palms.

83. With Siddhārtha's leave, she rose from her gem-inlaid and ornamentally painted chair and with a steady unhurried gait, like that of a swan, she walked back to the palace.

84. Ever since the moment when *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra came into the *Jñātṛ*-clan, hosts of flying *Jṛmbhaka* gods, acting under the orders of Indra, and carrying Kubera's urns, went forth to places where ancient, forgotten treasures were buried and conveyed these hoards to the palace of king Siddhārtha. They brought treasures, the owners and hoarders of which were long dead, their family-mansions lying in ruins : treasures which had no inheritors left. They brought treasures hidden in villages, dwellings *(āgāra)*,
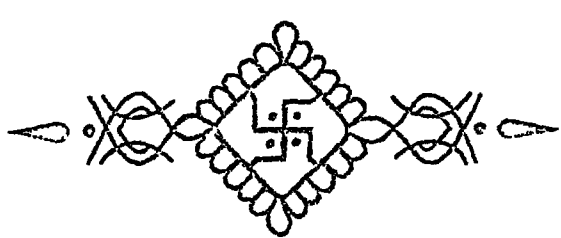
उच्छिन्नसेउयाइं उच्छिन्नगोत्तागाराइं [गामाऽऽगरनगरखेडकव्वडमडंब-दोणमुहपट्टणासमसंवाहसन्निवेसेसु] सिंघाडएसु वा तिएसु वा चउक्केसु वा चच्चरेसु वा चउम्मुहेसु वा महापहेसु वा गामट्ठाणेसु वा नगर-ट्ठाणेसु वा गामणिद्धमणेसु वा नगरनिद्धमणेसु वा आवणेसु वा देव-कुलेसु वा सभासु वा पवासु वा आरामेसु वा उज्जाणेसु वा वणेसु वा वणसंडेसु वा सुसाण-सुन्नागार-गिरिकंदर-संधिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु वा सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति, ताइं सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति ॥८४॥

जं रयणिं च णं समणे [भगवं महावीरे] नायकुलंसि साहरिए, तं रयणिं च णं नायकुलं हिरण्णेणं वड्ढित्था, सुवण्णेणं वड्ढित्था, जाव [धणेणं धन्नेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढित्था, विपुल-धण-कणग-रयण-

वर्धन करने वाले सेवकों का भी उच्छेद हो गया, अधिकारियों के गोत्रस्थ व्यक्तियों का भी उच्छेद हो गया, अर्थात् जिनका कोई नाम लेने वाला भी शेष नहीं रहा, वैसे गड़े हुए धन-भण्डार जहां कहीं भी [ग्रामों में, आगर–खदानों में, नगरों में, खेटकों में, कर्वटों (कस्वों) में, मडम्वों में, द्रोणमुखों में, पत्तनों में, आश्रमों में, समभूमि में, सन्निवेशों में,] शृंगाटकों में, त्रिपथों में, चतुष्पथों में, चर्चर (चौक) में, चतुर्मुखों (चारों ओर के दरवाजों वाले मंदिरों) में, राजमार्गों में, निर्जन ग्रामों में, निर्जन नगरों में, ग्राम के खालों में, नगर के खालों में, व्यापारस्थल-दुकानों में, देवकुलों में, सभास्थानों में, जलशालाओं (प्याऊ) में, उपवनों में, उद्यानों में, वनों में, वनखण्डों में, श्मसानों में, शून्यगृहों में, पर्वत की गुफाओं में, शान्तिगृहों में, पत्थरों की खदानों में, भवनों में और कृपकों के घरों इत्यादि स्थानों में दाटे हुए थे, उन स्थानों से ला-लाकर सिद्धार्थ राजा के भवन में स्थापित करने लगे।
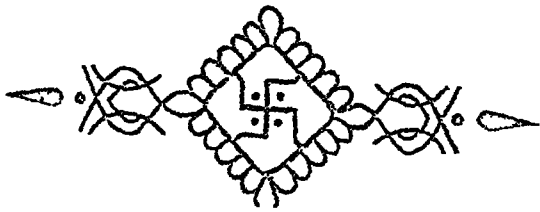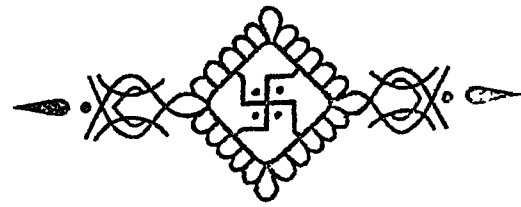
mines *(ākara)*, large towns *(nagara)*, mud-walled towns *(kheṭaka)*, petty towns *(karbaṭa)*, isolated towns *(maṇḍaba)*, towns accessible through both land and water *(droṇa-mukha)*, towns situated on either a land-route or a water-route *(pattana)*, hermitages *(āśrama)*, strongholds with sufficient agricultural land for sustenance *(saṁvāha)*, halting places for caravans or armies *(sanniveśa)*, crossings where three or four roads meet, courtyards, squares, locations opening on four directions, major highways, sites for villages or towns, village-drains, town-drains, market-places, temples, assembly-halls, sheds providing water for travellers *(prapā)*, pleasure gardens *(ārāma)*, parks *(udyāna)*, forests, woods, cemeteries, deserted houses, cave-dwellings, monks' caves, audience-halls, homes and houses.

८५. जिस रात्रि से श्रमण [भगवान् महावीर] ज्ञातृकुल में संहरित हुए उसी रात्रि से ज्ञातृकुल हिरण्य (रजत) से, स्वर्ण से, यावत् [धन से, धान्य से, राज्य से, राष्ट्र से, वल–सेना से, वाहनों से, कोश से, कोष्ठागार से, नगर से, अन्तःपुर से, जनपद से, यश और कीर्ति से वृद्धि प्राप्त करने लगा तथा विपुल धन, स्वर्ण, रत्न,

85. Since the night *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra was brought to the clan of the *Jñātṛs*, the clan began to increase in manifold ways : its gold increased, its gold-ornaments increased, its wealth, agriculture, kingdom, imperial power along with its armies, carriages, treasuries, ware-houses, towns,

मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्त-] रयणमाइएणं संतसारसावइज्जेणं अईव २ पीइसक्कारसमुदएणं अभिवड्ढित्था ॥८५॥

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिऊणं अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते, तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो, सुवण्णेणं वड्ढामो, धणेणं धन्नेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं च कोसेणं कोट्ठागारेणं च पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं [जसवाएणं वड्ढामो,] विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पीतिसक्कारेणं अतीव २ अभिवड्ढामो। तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सति, तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुरूवं गुण्णं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं
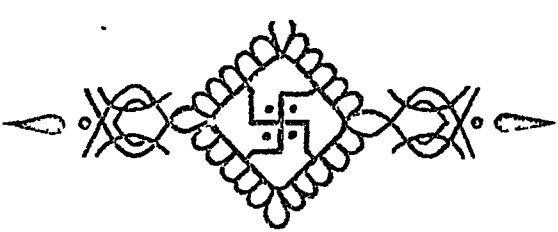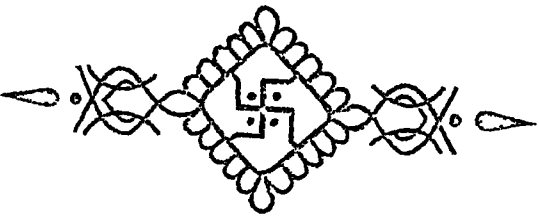
मणि, मुक्ता, शंख, विपहारिणी शिला, प्रवाल, लाल] रत्न – माणिक आदि सारभूत सम्पत्ति से भी वृद्धि को प्राप्त करने लगा और प्रीति, सत्कार व सद्भाव भो अत्यधिक वढने लगा।

८६. अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता के मन में इस प्रकार का विचार, चिन्तन, अभिलाषा रूप संकल्प उत्पन्न हुआ कि "जव से हमारा यह पुत्र कुक्षि में गर्भरूप में आया है तव से हमारी हिरण्य से, सुवर्ण से, धन से, धान्य से, राज्य से, राष्ट्र से, सेना से, वाहनों से, कोश से, कोष्ठागार से, नगर से, अन्तःपुर से, जनपद से, [यशःकीर्ति से वृद्धि हुई है] और विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल, माणिक आदि सारभूत सम्पत्ति भी वढी है तथा प्रीति, आदर, सत्कार भी अत्यधिक वढा है। अतएव जव हमारा यह पुत्र जन्म लेगा तव हम इस वालक का इसके अनुरूप, गुणानुसार और गुणनिष्पन्न

womens' appartments and its subjects—all increased bountifully. The *Jñātṛs* increasingly multiplied in wealth, gold, gems, precious stones, pearls, mother-of-pearls *(śaṅkha)*, coral and rubies—they multiplied in every valuable that they possessed. Their happiness and their honour grew increasingly.

86. Then the parents of *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra reflected, and formed this resolution: "Ever since this child, our son, has entered the womb, we and ours have increased in every way. Therefore, when our son will see the light of the day, we shall name him Vardhamāna (the Increasing One), a noble name and a name befitting his supreme merits."
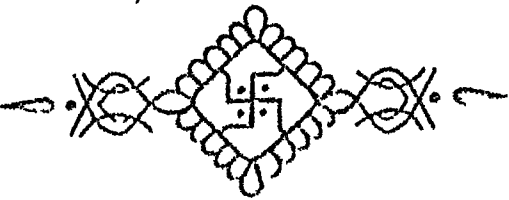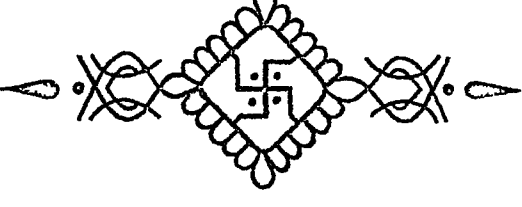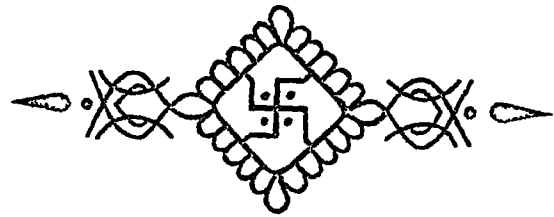
करिस्सामो वद्धमाणो त्ति ।८६।

तए णं समणे भगवं महावीरे माउअणुकंपणट्ठाए निच्चले निप्फंदे निरेयणे अल्लीणपल्लीणगुत्ते या वि हुत्था ॥८७॥

तए णं तीसे तिसलाए खत्तियाणीए अयमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था—हडे मे से गब्भे, मडे मे से गब्भे, चुए मे से गब्भे, गलिए मे से गब्भे, एस [मे] गब्भे पुव्विं एयति,
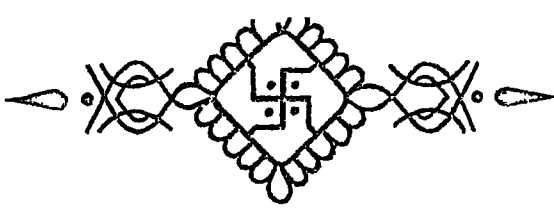
वर्धमान नाम रखेंगे ।"

८७. अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर मातृभक्ति से (हलन-चलन क्रिया से माता को कष्ट न हो इस दृष्टि से) गर्भ में निश्चल हो गए अर्थात् हिलना-डुलना बन्द कर दिया, निस्पन्द हो गए, अकम्प हो गए और अपने अंगोपांगों को संकुचित कर लिया ।

८८. पश्चात् उस त्रिशला क्षत्रियाणी के मानस में इस प्रकार का संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुआ कि "मेरा यह गर्भ हरण कर लिया गया है । मेरा यह गर्भ मर गया है । मेरा यह गर्भ च्युत (स्थान-भ्रष्ट) हो गया है । मेरा यह गर्भ स्खलित हो गया है । मेरा यह गर्भ पहले हिलता-डुलता था

87. *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra dwelled in the womb with such extreme stillness that he did not make the slightest movement or even a tremor. He remained without making his presence felt, as if he was not there at all. He did this out of compassion for his mother.

88. But Triśalā became apprehensive and thought: "Has the child in my womb been destroyed ? Has he been killed ? Have I suffered a miscarriage ? The child used to move, but now he does not move."
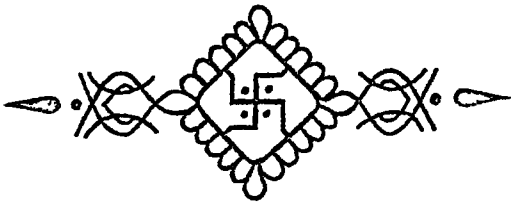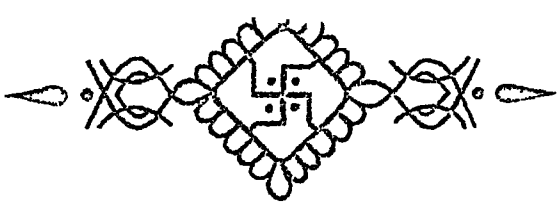
इयाणिं नो एयति त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा चिंतासोयसायरं संपविट्ठा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठिया झियायइ । तं पि य सिद्धत्थरायवरभवणं उवरय-मुइंग-तंती-तल-ताल-नाडइज्ज-जणमणुज्जं दीणविमणं विहरइ ॥८८॥

तए णं समणे भगवं महावीरे माऊए अयमेयारूवं अज्झत्थियं [पत्थियं] मणोगयं संकप्पं समुप्पन्नं विजाणिय एगदेसेणं एयति ॥८९॥

तए णं सा तिसला खत्तियाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया एवं वयासी नो खलु मे गब्भे हडे जाव नो गलिए, एस मे गब्भे पुव्विं नो एयइ, इयाणिं एयइ [त्ति कट्टु हट्ठतुट्ठ जाव हियया] एवं वा विहरति ॥९०॥

तते णं समणे भगवं महावीरे गब्भत्थे चेव इमेयारूवं अभिग्गहं
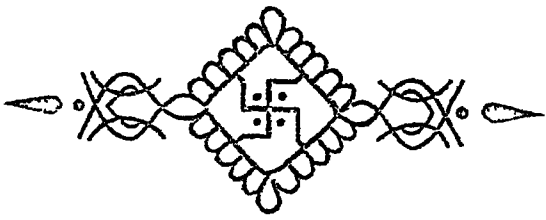
किन्तु अब हिलता-डुलता नहीं है।" इस प्रकार खिन्न और दुःखित मन वाली होकर चिन्तारूपी शोक के समुद्र में डूब गई। हथेली पर मुख रखकर आर्त्तध्यान करती हुई, भूमि की ओर नीची दृष्टिकर चिन्ता करने लगी। उस समय सिद्धार्थ राजा के श्रेष्ठ भवन (महल) में जहां पर पहले मृदंग, वीणा आदि वाद्य बजते थे, रास-क्रीडाएं होती थीं, नाटक होते थे, वाह-वाह का घोष हो रहा था, वहां पर सर्वत्र शून्यता छा गई और सब लोग दुःखी तथा शून्यचित्त से रहने लगे।

She became distressed and spiritless. Her heart sank in a sea of sorrow. She sat brooding with her cheek on her hands and with eyes fixed to the ground. All the merry, multifarious sounds of drums and strings and cymbals, of music and dance, came to a stop in Siddhārtha's palace. All cheer was gone and every one was sad.

८९. तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर माता के मन में उत्पन्न हुए इस प्रकार के विचार, चिन्तन, अभिलापरूप संकल्प-विकल्प को जानकर अपने शरीर के एक देश (हिस्से) को हिलाते हैं।

89. *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra came to know of his mother's concern and apprehension. He made a little movement to his side.

९०. तत्पश्चात् वह त्रिशला क्षत्रियाणी हर्षित व तुष्ट हुई, यावत् उसका हृदय प्रसन्नता से खिल उठा और इस प्रकार कहने लगी—"निश्चय ही मेरे गर्भ का हरण नहीं हुआ है यावत् स्खलित नहीं हुआ है। यह मेरा गर्भ पहले हिलता नहीं था किन्तु अब हिल-डुल रहा है। इस प्रकार वह [हर्षित व संतुष्ट हुई,] यावत् अतीव प्रसन्न चित्त से रहने लगी।

90. This gladdened the heart of Triśalā. A thrill of joy went through her frame causing the hair of her body to stand erect like *kadamba* flowers at the touch of rain. She exclaimed : "The child in my womb lives, he is safe; I have not suffered a miscarriage, for my child moves as before." Her spirits were cheered again.

९१. उसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने गर्भ में रहते हुए इस प्रकार अभिग्रह

91. At that moment, while yet in the womb, Bhagavān Mahāvīra made a vow : "It will not be
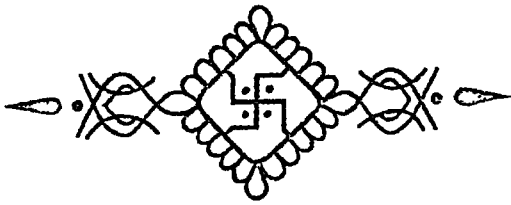
अभिगिह्णति—नो खलु मे कप्पइ अम्मापितीहिं जीवंतेहिं मुंडे भवित्ता अगारवासाओ अणगारियं पव्वइए ॥९१॥

ततं णं सा तिसला खत्तियाणी ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगलपायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया तं गब्भं नातिसीएहिं नाति-उण्हेहिं नातितित्तेहिं नातिकडुएहिं नातिकसाइएहिं नातिअंबिलेहिं नातिमहुरेहिं नातिनिद्धेहिं नातिलुक्खेहिं [नातिउल्लेहिं नातिसुक्केहिं] सव्वत्तुयभयमाणसुहेहिं भोयणच्छायणगंधमल्लेहिं ववगयरोगसोग-मोहभयपरित्तासा जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थं गब्भपोसणं तं देसे य काले य आहारमाहारेमाणी विवित्तमउएहिं सयणासणेहिं पइरिक्कसुहाए मणाणुकूलाए विहारभूमीए पसत्थदोहला संपुण्णदोहला सम्माणियदोहला अविमाणियदोहला वोच्छिन्नदोहला ववणीयदोहला
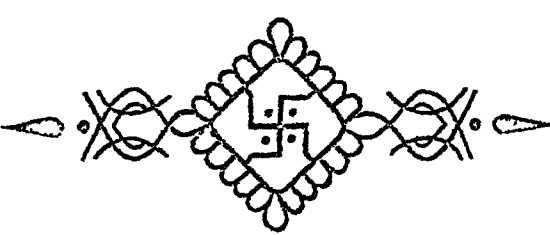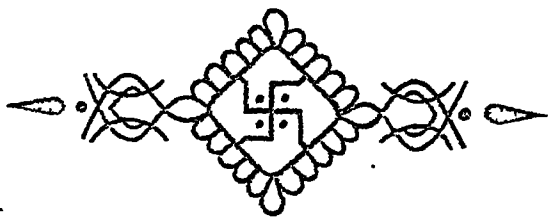
धारण किया – "जब तक मेरे माता-पिता जीवित रहेंगे तब तक मैं मुण्डित होकर, गृहवास का त्याग कर प्रव्रज्या स्वीकार नहीं करूंगा।"

९२. उसके पश्चात् उस त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल तथा प्रायश्चित्त कृत्य किया और समस्त अलंकारों से विभूषित हुई। वह गर्भ का पोषण करने लगी। उसने अत्यन्त शीत, अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त तीक्ष्ण, अत्यन्त कटुक, अत्यन्त कसैले, अत्यन्त खट्टे, अत्यन्त मीठे, अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रूखे, [अत्यन्त गीले, अत्यन्त सूखे] भोजन का त्याग कर दिया। वह सब ऋतुओं के अनुकूल सुखकारी भोजन करती तथा वस्त्र, गन्ध और मालाओं को धारण करती हुई, रोग, शोक, मोह, भय और त्रास रहित होकर रहने लगी। वह उस गर्भ के पोषण के लिये देश और कालोचित हितकारी, परिमित पथ्यमय आहार करती हुई, कोमल शय्या और आसन का उपयोग करती हुई, नितान्त सुखकर और मन के अनुकूल एकान्त-शान्त विहारभूमि में रहने लगी।

उसको गर्भ के प्रभाव से प्रशस्त दोहद (मनोरथ) उत्पन्न हुए। उन दोहदों को पूर्ण किया गया। उन दोहदों का सम्मान किया गया। उन दोहदों की उपेक्षा नहीं की गई। अभिलाषित मनोरथ पूर्ण हो जाने से नये दोहद उत्पन्न होने से रुक गये।

proper for me to pull out my hair and become a homeless mendicant while my parents live."

92. Thenceforth, Triśalā took her bath regularly, adorned herself with the best of ornaments, offered food to the family-deities and performed all the due rites of protection, propitiation and expiation. She ate food that was neither too warm nor too cold, neither too pungent nor too bitter, neither too astringent nor too sour or sweet, neither too oily nor too rough and neither too watery nor too dry. She took the right food in the right season, slept on healthy couches and used good perfumes and garlands. She kept herself free from disease or worry and from delusions or nervous tension. She was careful to eat only what was beneficial, healthy and nourishing for her unborn child. She dwelt for his sake in quiet corners which were conducive to peace; she took her rest on pleasant, soft divans and beds, placed in secluded spots.

The irrepressible desires *(dohada)* that arose in her heart during pregnancy were directed solely towards good things, and her desires were always respected and fulfilled. She was never once denied. Every single demand she made was met. None was ever refused. She lived rejoicingly,
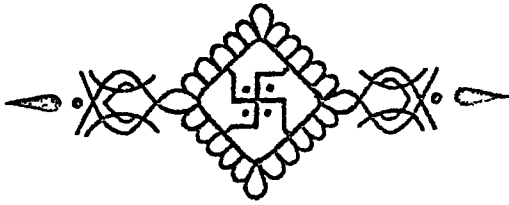
सुहं सुहेणं आसयति सयति चिट्ठइ निसीयति तुयट्टति सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहति।।९२।।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चित्त-सुद्धस्स तेरसीदिवसेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठ-माणं राइंदियाणं विइक्कंताणं
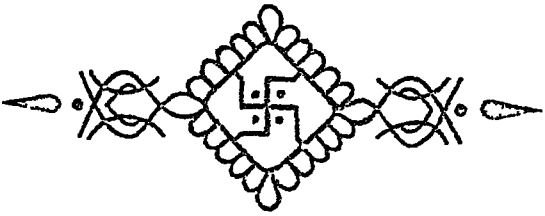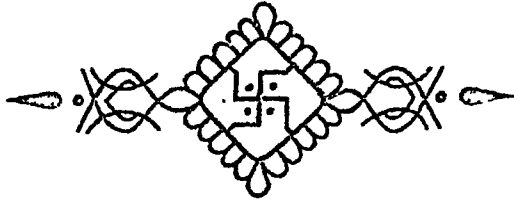
वह अत्यन्त सुखपूर्वक आश्रय लेकर उठती-बैठती है, सोती है, भद्रासनादि पर बैठती है, करवट बदलती है और अत्यन्त सुखपूर्वक गर्भ को धारण करती है।

९३. उस काल, उस समय में श्रमण भगवान् महावीर जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, दूसरा पक्ष चैत्र सुदि चल रहा था तब उस चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन, नौ मास और साढे सात अहोरात्रि व्यतीत होने पर,

bearing the child in her womb with cheer. She abided with a carefree heart, spending her days in rest and repose with a joyful spirit.

93. Then at the proper time and the proper moment, when nine months, seven-and-a-half days had passed, *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra came
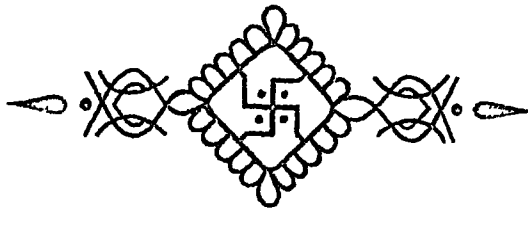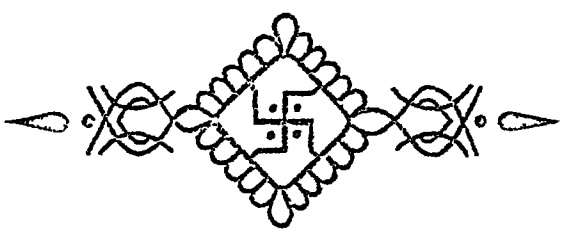
उच्चट्ठाणगएसु गहेसु पढमे चंदजोगे सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु जइएसु सव्वसउणेसु पयाहिणाणुकूलंसि भूमिसप्पिंसि मारुयंसि पवायंसि निप्फण्णमेइणीयंसि कालंसि पमुइयपक्कीलिएसु जणवएसु पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया ॥९३॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए, तं रयणिं च णं बहूहिं देवेहिं देवीहि य उवयंतेहि य उप्पयंतेहि य देवुज्जोए एगालोए लोए देवसन्निवाया उप्पिंजलमाणभूया कहकहभूया यावि होत्था ॥९४॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए तं रयणिं च णं बहवे वेसमणकुंडधारी तिरियजंभगा देवा सिद्धत्थरायभवणंसि हिरण्णवासं च सुवण्णवासं च [रयणवासं च वयरवासं च वत्थवासं च] आहरण-

ग्रहों के उच्च स्थान में आने पर, प्रथम चन्द्रयोग में, जब सभी दिशाएं सौम्य, अंधकार रहित और निर्मल थीं, जय-विजय सूचक सर्व प्रकार के शकुन थे, दक्षिण दिशा की शीतल, मन्द, सुगन्धित हवा भूमि पर चल रही थी, उस समय मेदिनी धान्य से समृद्ध थी, जनपदों के हृदय प्रमोद से परिपूरित थे, तब मध्यरात्रि के समय हस्तोत्तरा नक्षत्र का योग आने पर त्रिशला क्षत्रियाणी ने आरोग्य (सुख) पूर्वक स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया।
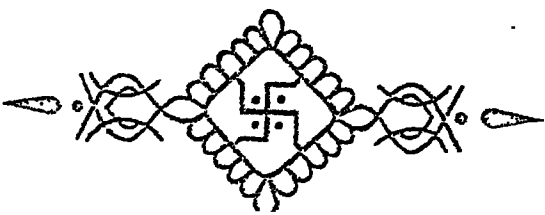
९४. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर ने जन्म ग्रहण किया उस रात्रि में बहुत से देव और देवियों के ऊपर नीचे आने-जाने से, देवों के उद्योत से, पुंजीभूत आलोक से, देवों के संगम से लोक में हलचल मच गई और सर्वत्र कल-कल नाद व्याप्त हो गया।

९५. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर उत्पन्न हुए उस रात्रि में कुबेर की आज्ञा में रहे हुए तिर्यक् जृम्भक देवों ने सिद्धार्थ राजा के भवन में चांदी, सोना, [रत्न, वज्ररत्न, वस्त्र,] अलंकार,

forth into the world. He was born a healthy child on the thirteenth of the bright-half *(śukla-pakṣa)* of *Caitra*, that is, the second fortnight of the first month of summer. He was born at midnight, when the previous night was just giving way to the night following and the moon was in conjunction with the constellation *uttarāphālguni*. All planets were exalted. The moon was in its best conjunction. The skies were tranquil, pure and bright. All omens augured success. A pleasant south-wind swept the earth. Fields were green with corn. People rejoiced and made merry.

94. On the night. at the moment, when Bhagavān Mahāvīra was born, countless gods and goddesses glided resplendently in ascending and desending movements. The whole world was awed and there arose from the world a mighty tumult of wonder.

95. And on that night, at that moment, hosts of flying *Jṛmbhaka* gods, bearing Kubera's urns, showered a rain of riches : of gold, gold-ornaments, jewels, diamonds, clothes, ornaments, flowers, leaves, fruits, seeds, garlands, perfumes,
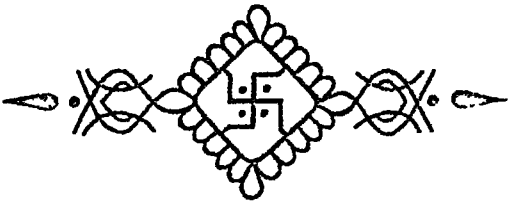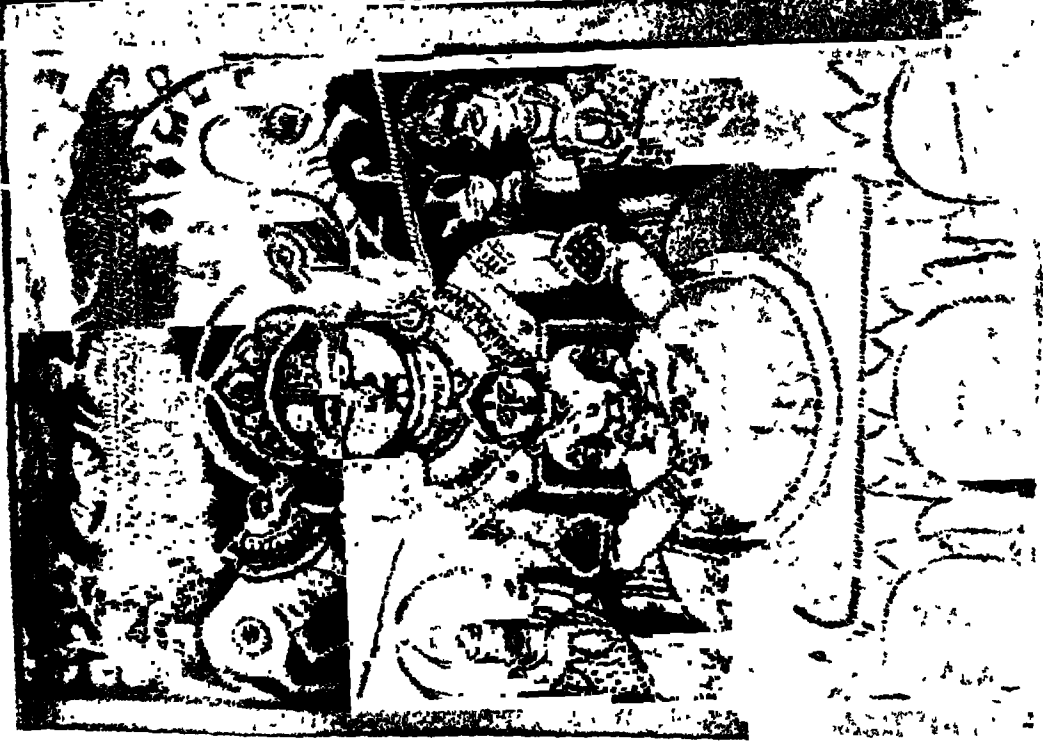
वासं च पत्तवासं च पुप्फवासं च फलवासं च बीयवासं च मल्लवासं च गंधवासं च वण्णवासं च चुण्णवासं च वसुहारवासं च वासिंसु ॥९५॥

तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए भवणवइ - वाणमंतर - जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयर-जम्मणाभिसेयमहिमाए कयाए समाणीए पच्चूसकालसमयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ, नगर-

पत्र, पुष्प, फल, वीज, माला, गन्ध पदार्थ, सुगन्धित चूर्ण, वर्णक और स्वर्ण मोहरों की अजस्र वृष्टि की।
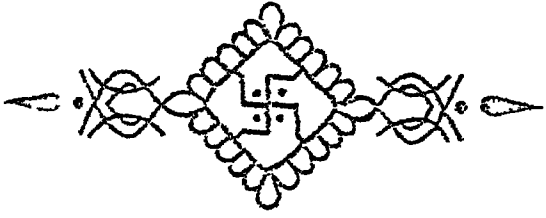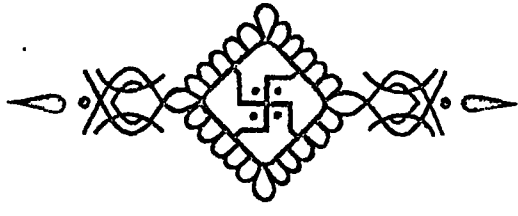
९६. अनन्तर सिद्धार्थ क्षत्रिय भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानिक अर्थात् चारों निकाय के देवों द्वारा तीर्थंकर का जन्माभिषेक महोत्सव संपन्न कर लेने के बाद प्रातःकाल में नगररक्षकों को बुलाता है और नगर–

colours and powdered perfumes—upon the palace of king Siddhārtha.

96. Gods of various categories—*Bhavanapatis*, *Vyantaras*, *Jyotiṣkas* and *Vaimānikas*—annointed the Tīrthaṅkara and celebrated the glory of his nativity.

Then, early at the break of dawn, Siddhārtha assembled his town-guards and instructed them with these words :
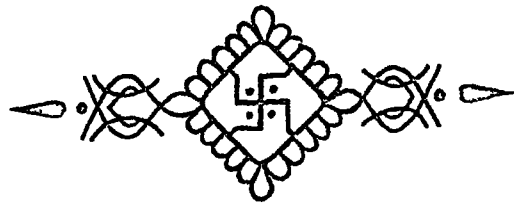
गुत्तिए सद्दावित्ता एवं वयासी ॥९६॥

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कुंडग्गामे नयरे चारगसोहणं करेह, चारगसोहणं करित्ता माणुम्माणवद्धणं करेह, माणुम्माणवद्धणं करित्ता कुंडपुरं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं आसियसम्मज्जिओवलेवियं संघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सित्त-सुइ-संमट्ठ-रत्थंतराव-णवीहियं मंचाइमंचकलियं नाणाविह-रागभूसिय-ज्झयपडागमंडियं लाउल्लोइयमहियं गोसीस-सरस-रत्तचंदण-दद्दर-दिन्न-पंचंगुलितलं उवचियचंदणकलसं चंदणघड-सुकय-तोरण-पडिदुवार-देसभागं आस-त्तोसत्त-विपुल-वट्ट-वग्घारिय-मल्लदामकलावं पंचवण्ण-सरस-सुरभि-

रक्षकों को बुलाकर इस प्रकार कहता है :
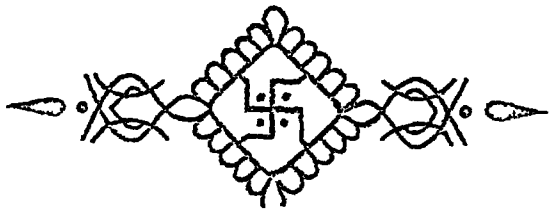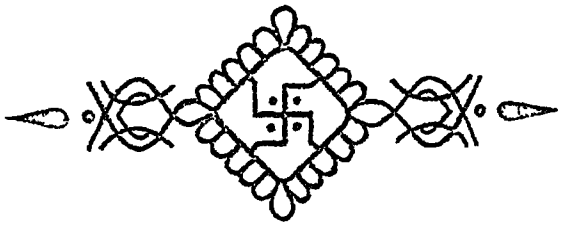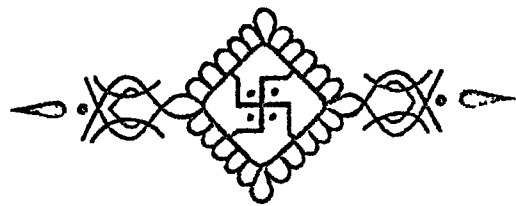
९७. "हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही कुण्डग्राम नगर के कारागृह को खाली कर दो अर्थात् समस्त वन्दीजनों को छोड़ दो। कैदियों को मुक्त करने के पश्चात् तौल-माप को बढाओ अर्थात् समस्त पदार्थ सस्ते बेचने का आदेश प्रसारित करो। तौल-माप बढाने के पश्चात् कुण्डपुर नगर के भीतर और बाहर पानी का छिड़काव कराओ, सफाई कराओ, लेपन कराओ। नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चत्वरों (चौक), चतुर्मुखों (चार दरवाजे वाले मन्दिरों), राजमार्गों और सभी सामान्य मार्गों में पानी का छिड़काव कराओ, सफाई कराओ, जहां-तहां सभी मोहल्लों, गलियों तथा बाजारों में पानी का छिड़काव और सफाई करवाकर उन स्थानों पर दर्शकों के लिये मंच बनवाओ। विविध रंगों से शोभित ध्वजा और पताकाएं बंधवाओ। नगर को लिपा-पुताकर स्वच्छ बनवाओ। मकानों की भीतों पर गोशीर्ष चन्दन, सरस रक्त चन्दन और दर्दर–मलय चन्दन के, पांचों अंगुलियां उभरी हुई दिखाई दें इस प्रकार छापे लगवाओ। घर के भीतर चन्दन कलश रखवाओ। जहां-तहां रमणीय लगने वाली और पृथ्वी को स्पर्श करती हुई लम्बी गोल फूलों की मालाएं लटकवाओ, पांचों वर्णों के सरस सुगन्धित पुष्पों

97. "Go immediately, beloved of gods, and set free all my prisoners. Let more goods be measured out for the same weights. Have the town of Kuṇḍagrāma broomed, plastered and sprinkled with water, inside and out. Have the main roads, lanes, squares and plazas *(nagara-catvara)* cleansed; have the crossings of three road and of four roads swept, and have locations that open on all directions wiped. And when the thoroughfares *(rathyantara)* and shopping-arcades have been cleaned and purified, have small and large platforms erected in them. Have flags and banners of variegated colours raised, and have shamianas put up. Sprinkle the covered areas with auspicious parched rice *(lāja)*. On every door, print palm-marks, showing all five fingers, with *gośīrṣa*, sandal-paste and *dardara*. Set up sandal-urns for good omen. Have *toraṇa*-gates erected and let these, too, be adorned with sandal-urns. Let large, round wreaths and garlands be hung every where : let them be hung loose and let them be fixed to the walls *(avasaktāpasakta)*.
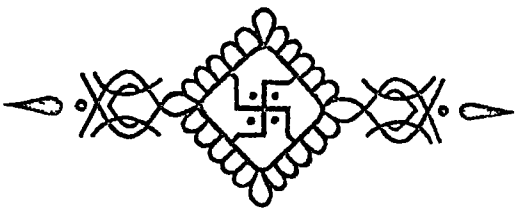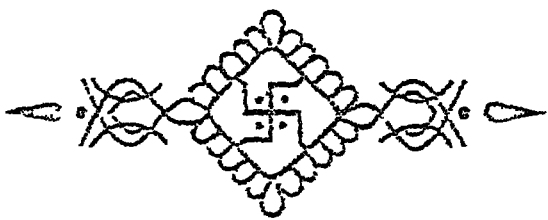
मुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलियं कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत-धूव-मघमघंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं, नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहग-पवग-लासक-आइक्खग-लंख-मंख-तूण-इल्ल-तुंबवीणिय-अणेगतालाचराणुचरियं करेह य कारवेह य, करित्ता य कारवित्ता य जूयसहस्सं च मुसलसहस्सं च उस्सवेह, उस्सवित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ॥९७॥

तए णं ते णगरगुत्तिया सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयल जाव पडिसुणित्ता खिप्पामेव कुंडपुरे नगरे चारगसोहणं

को इधर-उधर फैलाओ और स्थान-स्थान पर फूलों के गुच्छे (गुलदस्ते) रखवाओ। प्रज्वलित कृष्णागर, श्रेष्ठ कुन्दुरु और तुरुष्क की सुगन्धित धूप से मघमघायमान और सुगन्ध से रमणीय बनवाओ। यत्र-तत्र श्रेष्ठ सुगन्धित चूर्णों का छिड़काव कर सुगन्धित गुटिका के समान महक उठे ऐसा करवाओ।

नट, नर्त्तक, जल्ल (रस्सी पर खेल बताने वाले), मल्ल (पहलवान), मौष्टिक (मुष्टि से लड़ने वाले), विदूषक, कथावाचक, प्लवग (कूदने वाले), लासक (रासक्रीडा करने वाले), भविष्य बताने वाले, लंख (बांस पर खेलने वाले), मंख (चित्र बताने वाले), तूणवादक, वीणावादक, तालवादक आदि अपनी-अपनी कलाओं से नागरिकों का मनोरंजन करें ऐसी व्यवस्था स्वयं करो और दूसरों से कराओ। ऐसी व्यवस्था स्वयं कर और दूसरों से करवाकर हजारों यूप (बैलगाड़ी के जूए) और हजारों मूसल ऊंचे स्थान पर रखवादो। यह कार्य संपन्न कर मुझे मेरी आज्ञा प्रत्यर्पित करो–कार्य-सम्पन्नता की सूचना दो।"

९८. उसके पश्चात् वे नगररक्षक सिद्धार्थ राजा की उक्त प्रकार की आज्ञा को सुनकर हर्षित हुए, यावत् उनका हृदय प्रफुल्लित हुआ। उन्होंने हाथ जोड़ कर यावत् सिद्धार्थ राजा के आदेश को विनयपूर्वक स्वीकार किया। आदेश को स्वीकार कर वे शीघ्र ही कुण्डपुर नगर में कारागृह से वन्दियों की मुक्ति

Let incense from the best *kālāguru*, *kunduru* and *turuṣka* saturate the town with its overpowering scent and let bunches of sweet-smelling flowers of five different hues be placed everywhere. Let the over-hanging perfume turn the town into a veritable incense-stick.

Go and arrange for play-actors, dancers, rope-tricksters *(jalla)*, wrestlers, boxers, jumping-acrobats, clowns, story-tellers, ballad-singers, folk-dancers *(lāsaka)*, narrators *(ācakhyaka)*, stilt-dancers, picture-canvas-bearers *(maṅkha)*, *tūṇa*-players, *tumba-vīṇā*-players and narrators who sing ballads with drum-playing. Let them all display their art. Also have *yūpa*-pillars and thick mace-like-pillars *(musala)* put up. Then report to me.

98. Siddhārtha's words gladdened the hearts of the town-guards. They set forth immediately and did as they had been ordered and reported back to the king.

जाव उस्सवित्ता जेणेव सिद्धत्थे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु सिद्धत्थस्स रण्णो एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥९८॥

तए णं [से] सिद्धत्थे राया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव सव्वोरोहेणं सव्वपुप्फगंधवत्थमल्लालंकारविभूसाए सव्वतुडियसद्दनिनाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया वाहणेणं महया समुदएणं महया वरतुडिय-जमग-समग-प्पवाइएणं संख-पणव-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरज-मुइंग-दुंदुहि-निग्घोस-नादितरवेणं उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेसं अदंडकोदंडिमं अधरिमं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालायराणु-

यावत् मूसल उठवाकर रखने तक सभी कार्य सम्पन्न कर, जहां सिद्धार्थ राजा है वहां आते हैं। आकर, हाथ जोड़ कर यावत् "आपके आदेशानुसार हम सभी कार्य कर आए हैं" ऐसी सूचना सिद्धार्थ राजा को देते हैं।
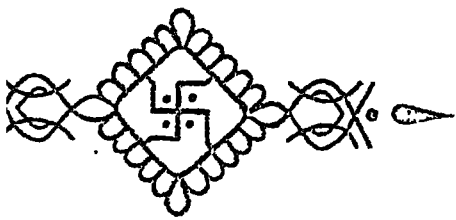
९९. उसके पश्चात् सिद्धार्थ राजा जहां अट्टणशाला (समारोह-स्थल) है वहां आता है। आकर, यावत् अपने समस्त अन्तःपुर के साथ सभी प्रकार के पुष्प, गन्ध, वस्त्र, मालाएं और अलंकारों से विभूषित होकर, सभी प्रकार के वादित्रों को बजवा कर, महती समृद्धि, महती द्युति, महती सेना, बहुत से वाहनों और विशाल समुदाय के साथ तथा एक साथ बजते हुए अनेक उत्तम वाद्यों की ध्वनि के साथ अर्थात् शंख, पणव (मिट्टी का ढोल), भेरी, झल्लरी, खरमुखी, हुडुक, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि आदि वादित्रों की अत्यधिक शब्दमय ध्वनि के साथ दस दिन तक अपनी कुल-मर्यादा के अनुसार पुत्र जन्मोत्सव करता है। इस उत्सव के समय दस दिन तक नगर में चुंगी कर तथा खेती का कर लेना बंद कर दिया गया। बिना मूल्य दिये और बिना माप-तौल किये दुकान आदि से सभी प्रकार की सामग्री प्राप्त करने की व्यवस्था की गई। जब्ती करने वाले राजपुरुषों का प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। अदण्ड और कुदण्ड का त्याग कर दिया गया। जनता को ऋण रहित करने की व्यवस्था की गई। नगर में प्रसिद्ध गणिकाओं और नर्तकों के नृत्य आयोजित किये गये और नाटक आयोजित किये।
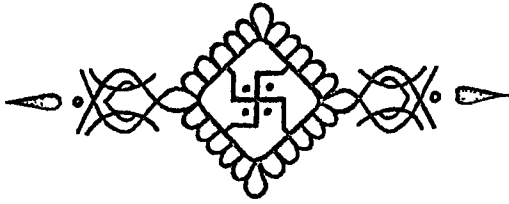
99. King Siddhārtha then proceeded to his gymnasium. With him were all the ladies from his women's apartments (*avarodha*) decked out in festive dresses and adorned with ornaments and with fragrant garlands. Around the king were gathered the soldiers of his retinue, his carriages and a host of his companions (*samudāya*). For ten whole days the king celebrated the *sthiti-pratījyā* festival (the festival honouring the birth of an heir). The celebrations were conducted with great pomp and show and with befitting splendour, amidst tumultuous sounds of music. The air rang with sounds of music from instruments such as *tūrya*, *yamaka* and *samaka*, and a great din was created by the reverberating sounds of conches, cymbals (*paṇava*), *paṭaha*-drums, kettle-drums (*bherī*), *jhallarī*-drums, *khara-mukhīs*, *huḍukkās*, rattle-drums *murajas* *mṛdaṅga*-drums and large *dundubhi*-drums.

People were excused from paying custom duties (*śulka*), customary taxes and the levies on agricultural produce. There was no buying or selling and the police-force was asked not to enter the town. Small and big offences were pardoned. Debts were cancelled.
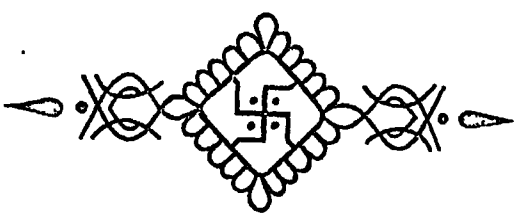
चरियं अणुद्धुयमुइंगं (ग्रं. ५००) अमिलायमल्लदामं पमुइयप्पक्कीलिय-सपुरजणजाणवयं दसदिवसं ठिइपडियं करेइ ॥९९॥

तए णं [से] सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठितिपडियाए वट्टमाणीए सइए य साहस्सिए य [सयसाहस्सिए य] जाए य दाए य भाए य दलमाणे य दवावेमाणे य, सइए य साहस्सिए य [सयसाहस्सिए य] लंभे पडिच्छमाणे य पडिच्छावेमाणे य एवं वा विहरति ॥१००॥

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठितिपडियं करेंति, तईए दिवसे चंदसूरदंसणियं कारिंति, छट्ठे दिवसे धम्मजागरियं करेंति, इक्कारसमे दिवसे विइक्कंते निव्वत्तिते असुइजातकम्मकरणे, संपत्ते बारसाहदिवसे, विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावित्ता मित्त-नाइ-नियगसयण-संबंधिपरिजणं
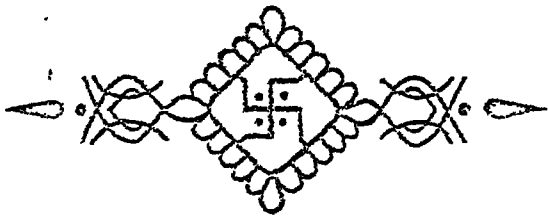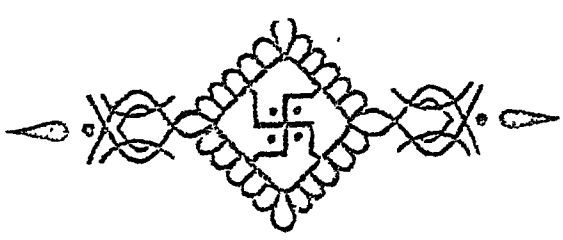
उत्सव में निरन्तर मृदंग वजते रहे। स्थान-स्थान पर ताजे फूलों की मालाएं लटकाई गईं। नगर और देश के सभी मानव प्रमुदित और क्रीडापरायण हुए। इस प्रकार दस दिन तक पुत्र जन्मोत्सव होता रहे ऐसी व्यवस्था की गई।

१००. तत्पश्चात् वह सिद्धार्थ राजा दस दिन तक कुल-मर्यादानुसार जो उत्सव चल रहा था उसमें सैकड़ों, हजारों और [लाखों] रुपये, यागों (देवपूजाओं), दानों और भागों को देता और दिलाता तथा सैकड़ों, हजारों, [लाखों] उपहार स्वीकार करता और करवाता हुआ रहने लगा।

१०१. अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता पहले दिन कुल-परम्परानुसार (पुत्र जन्म के निमित्त करने योग्य) अनुष्ठान करते हैं, तीसरे दिन चन्द्र और सूर्य के दर्शन का उत्सव करते हैं, छठे दिन धर्मजागरिका अर्थात् रात्रि-जागरण करते हैं, ग्यारहवां दिन व्यतीत होने पर, अशुचि निवारण के समस्त कार्य पूर्ण हो जाने पर जब बारहवां दिन आया तब विपुल परिमाण में भोजन, पानी, खाद्य और स्वाद्य पदार्थ तैयार कराते हैं। भोजनादि सामग्री तैयार करवा कर अपने मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिवारवालों को तथा

The best of courtesans danced. Narrators told tales with accompanying sounds of music. *Mṛdaṅga*-drums resounded harmoniously. Eyes could feast on garlands of fresh flowers every where. The towns-people and the village-people celebrated the festivities with great jubiliance and merry-making.

100. During the ten-day *sthiti-pratījyā* festivities, king Siddhārtha performed a hundred and a thousand and a hundred-thousand sacred sacrifices. He gave away as gifts a hundred, a thousand and a hundred-thousand measures of wealth and received an equal amount in presents.

101. On the first day, the parents of Bhagavān Mahāvīra celebrated *sthiti-pratījyā;* on the third day they showed the child to the Sun and the Moon; on the sixth day they kept awake the whole night in a ritual vigil; and finally on the eleventh day the ceremonies of ritual purification, which are preformed after child-birth, came to a close.
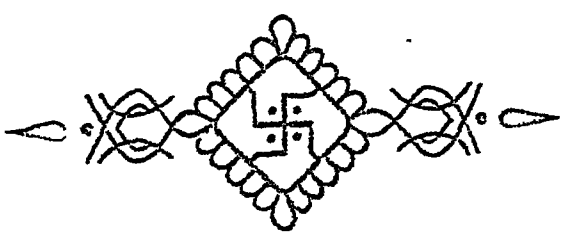
नायए य खत्तिए अ आमंतित्ता। ततो पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं पवराइं वत्थाइं परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगया। ते णं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणेणं नायएहि य सद्धिं तं विउलं असणपाणखाइमसाइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभुंजेमाणा परिभाएमाणा विहरंति ॥१०१॥

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परम-सुइभूया तं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणं नायए य खत्तिए य विउलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्स मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणस्स नायाण य खत्तियाण य पुरओ एवं वयासी ॥१०२॥
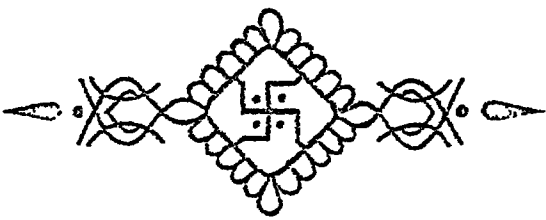
ज्ञातवंशीय क्षत्रियों को आमंत्रित करते हैं। पश्चात् वे सब (आमंत्रित लोग) स्नान कर, बलिकर्म कर, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित कृत्य कर, उत्सव में पहनने योग्य मंगलमय श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण कर, वजन में हल्के किन्तु अत्यधिक मूल्य के आभूषणों से शरीर को अलंकृत कर, भोजन का समय होने पर भोजन मण्डप में आकर, उत्तम सुखासनों पर बैठते हैं और स्वकीय मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों तथा ज्ञातवंशीय क्षत्रियों के साथ उस विपुल प्रकार के अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य सामग्री का आस्वादन करते हैं, विशेष स्वाद से भोजन करते हैं, और दूसरों को भोजन करवाते हैं।

१०२. भोजनोपरान्त विशुद्ध जल से कुल्ले कर, दान्त और मुख को स्वच्छ करते हैं। इस प्रकार परम विशुद्ध होते हैं। माता-पिता आगत उन मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों तथा ज्ञातवंशीय क्षत्रियों को विपुल पुष्प, वस्त्र, गन्ध, मालाएं और आभूषण आदि प्रदान कर सत्कारित एवं सम्मानित करते हैं। सत्कारित और सम्मानित कर उन मित्रों ज्ञातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों और ज्ञातवंशीय क्षत्रियों के समक्ष भगवान् के माता-पिता इस प्रकार कहते हैं :

On the twelfth day, savoury food-stuffs, drinks and delicacies were prepared in huge quantities. Siddhārtha and Triśalā sent invitations to friends, clans-men, near-ones *(nijaka)*, relations *(svajana)*, kinsmen, companions, persons of eminence and people of the *kṣatriya* community.

Bhagavān Mahāvīra's parents then took their bath, offered food to the family deities and performed the due rites of propitiation, protection and expiation. They apparelled themselves in bright, auspicious and presentable *(prāveśikāni)* dresses and when it was time for dinner they took their seats with their guests in the open dining-shamiana on good comfortable chairs. The savoury meal prepared earlier was then served and every one partook of it, dwelling over its taste and delighting in its deliciousness.

102. After the festive dinner was over, they washed and rinsed themselves with water and were thus cleansed and purified. Siddhārtha and Triśalā then honoured their guests with generous gifts of flowers, clothes, perfumes, garlands and jewellery, and addressed them with these words :
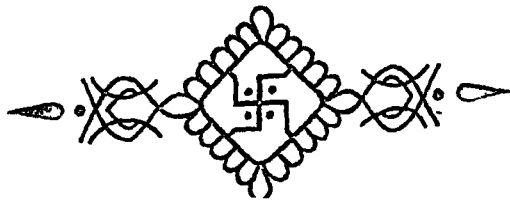
पुव्विं पि य णं देवाणुप्पिया ! अम्हं एयंसि दारगंसि गब्भं वक्कंतंसि [समाणंसि] इमे एयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था—जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते, तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो सुवण्णेणं वड्ढामो जाव सावएज्जेणं पीतिसक्कारेणं अतीव २ अभिवड्ढामो, सामंतरायाणो वसमागया य। तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सति, तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स इमं एयाणुरूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणो त्ति, ता अज्ज णं अम्हं मणोरहसंपत्ती जाया, तं होउ णं अम्हं कुमारे वद्धमाणे २ नामेणं । तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो नामधिज्जं करेंति 'वद्धमाणो' त्ति ॥१०३॥

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते णं, तस्स णं तओ नामधिज्जा
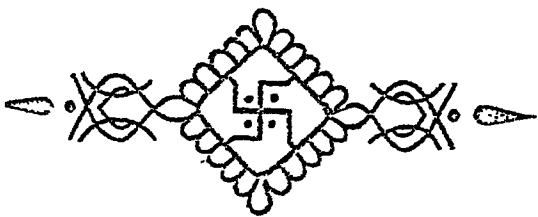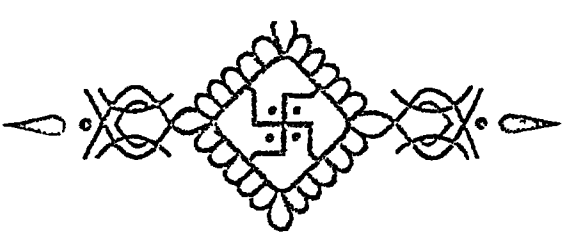
१०३. "पहले भी, हे देवानुप्रियो ! जब यह बालक गर्भ में आया तब (उस समय) हमारे हृदय में इस प्रकार का चिन्तन–विचार यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ था कि जिस दिन से हमारा यह पुत्र गर्भ में आया उस दिन से हमारी रजत और स्वर्ण से वृद्धि होने लगी है, यावत् प्रीति और सत्कार की दृष्टि से भी अत्यधिक अभिवृद्धि होने लगी है तथा सामन्त एवं राजागण भी हमारे वश में हुए हैं। अतएव जब हमारा यह पुत्र जन्म लेगा तब हम उसके अनुरूप गुणों का अनुसरण करने वाला, गुणनिष्पन्न "वर्द्धमान" नाम रखेंगे। तो, आज हमारे मनोरथ सफल हुए हैं। अतः हमारे इस कुमार का नाम वर्द्धमान हो, वर्द्धमान हो।" पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता ने कुमार का "वर्द्धमान" नामकरण किया।

103. "It had so happened, O beloved of gods, that when our son had come into the womb, we had thus reflected and thus resolved : "ever since our son has come into the womb we have increased in every way : in wealth, in honour, in power and in happiness. Let us, therefore, resolve to name our son Vardhamāna (the Increasing One), because this name is worthy of him and is appropriate to the qualities he has manifested. So we shall now name him Vardhamāna."

१०४. श्रमण भगवान् महावीर काश्यप गोत्र के थे। उनके तीन

104. *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra was of the Kāśyapa *gotra*. He was known by three names.
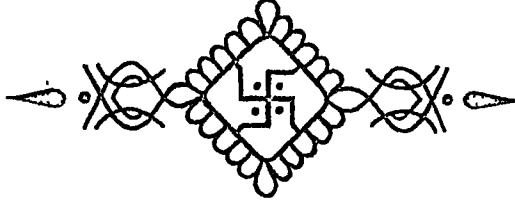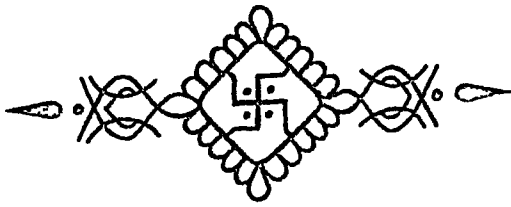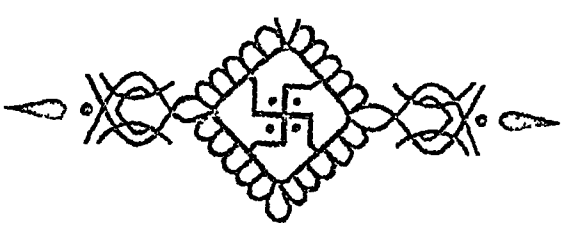
एवमाहिज्जंति, तंजहा—अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे, सहसम्मुइयाए समणे, अयले भयभेरवाणं परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे [पडिमाणं पालगे] धीमं अरतिरतिसहे दविए वीरियसंपन्ने देवेहिं से णामं कयं 'समणे भगवं महावीरे' ॥१०४॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पिया कासवगोत्तेणं, तस्स णं ततो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा—सिद्धत्थे इ वा, सेज्जंसे इ वा, जसंसे इ वा ॥१०५॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स माया वासिट्ठी गोत्तेणं, तीसे तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा—तिसला इ वा, विदेहदिण्णा इ वा, पियकारिणी इ वा ॥१०६॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पितिज्जे सुपासे, जेट्ठे भाया नंदिवद्धणे, भगिणी सुदंसणा, भारिया जसोया कोडिन्ना गोत्तेणं ॥१०७॥
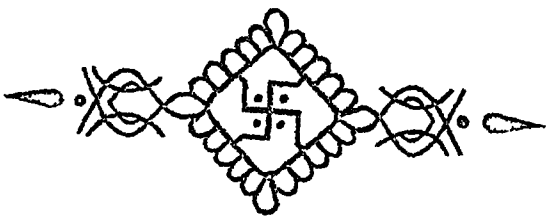
नाम इस प्रकार कहे जाते हैं :– १. माता-पिता ने उनका नाम "वर्द्धमान" रखा। २. स्वकीय विशद बुद्धि से कठिन परिश्रम करने के कारण 'श्रमण' कहलाये। ३. भय-भैरव के उत्पन्न होने पर भी अचल रहने वाले, परीषह और उपसर्गों को शान्ति और क्षमा से सहन करने में समर्थ, [भिक्षुक-प्रतिमाओं का पालन करने वाले] बुद्धिमान्, प्रिय और अप्रिय में समभावी, संयमयुक्त और अतुल पराक्रमी होने के कारण देवताओं ने 'श्रमण भगवान् महावीर' नाम रखा।

१०५. श्रमण भगवान् महावीर के पिता काश्यप गोत्र के थे। उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं :– १. सिद्धार्थ, २. श्रेयांस और ३. यशस्विन्।

१०६. श्रमण भगवान् महावीर की माता वाशिष्ठ गोत्र की थी। उसके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं :– १. त्रिशला, २. विदेहदिन्ना और ३. प्रियकारिणी।

१०७. श्रमण भगवान् महावीर के चाचा का नाम सुपार्श्व, ज्येष्ठ भ्राता का नाम नन्दिवर्धन, वहिन का नाम सुदर्शना और भार्या का नाम यशोदा था। यशोदा कौण्डिन्य गोत्र की थी।

To his parents he was Vardhamāna. He was called Śramaṇa, because he was always tranquil and blissful. The gods named him Mahāvīra, because he was always steadfast, even in the midst of fear or terror: he could stoically bear all sufferings and calamities and could endure the rigours of ascetic life; he was gifted with a penetrating intellect; he remained equanimous in joy or sorrow and was sublimely heroic and totally self-restrained.

105. Bhagavān Mahāvīra's father was of the Kāśyapa *gotra*. He was also known by three names: Siddhārtha, Śreyaṁsa and Yaśaṁsa.

106. Bhagavān Mahāvīra's mother was of Vaśiṣṭha *gotra*. She too had three names : Triśalā, Videhadattā and Priyakāriṇī.

107 to 109. Bhagavān Mahāvīra's paternal uncle was Supārśva, his elder brother was Nandivardhana and his sister was Sudarśanā. His wife was Yaśoda of the Kauṇḍinya *gotra*.
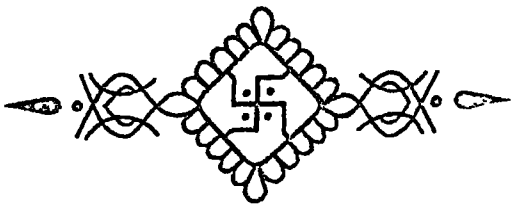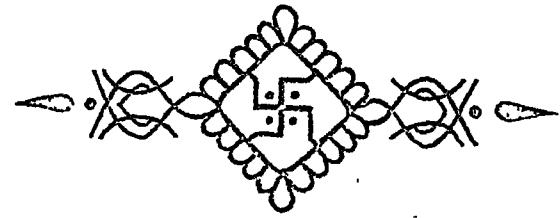
समणस्स णं भगवओ महावीरस्स धूया कासवी गोत्तेणं, तीसे णं दो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा—अणोज्जा इ वा, पियदंसणा इ वा ॥१०८॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स नत्तुई कासवी गोत्तेणं, तीसे णं दो नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा—सेसवई इ वा, जसवई इ वा ॥१०९॥

समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपइन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापितीहिं देवत्तगएहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुन्नाए समत्तपइन्ने पुणरवि लोगंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मियमहुर-
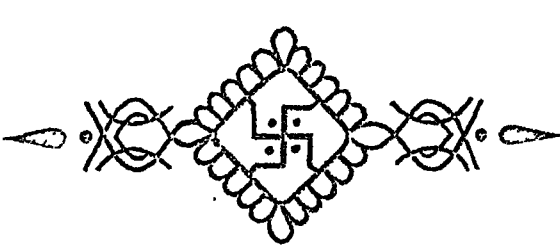
१०८. श्रमण भगवान् महावीर की पुत्री काश्यप गोत्र की थी। उसके दो नाम इस प्रकार कहे जाते हैं :—
१. अनोद्या और २. प्रियदर्शना।

१०९. श्रमण भगवान् महावीर की दौहित्री काश्यप गोत्र की थी। उसके दो नाम इस प्रकार कहे जाते हैं :—
१. शेषवती और २. यशस्वती।

११०. श्रमण भगवान् महावीर दक्ष थे, दक्षप्रतिज्ञ थे, असाधारण रूपवान् थे, स्वात्मलीन थे, सरल स्वभावी थे, विनीत थे, सुप्रसिद्ध थे, ज्ञातवंश के थे, ज्ञातवंश में चन्द्रमा के समान थे, विदेह थे, विदेहदिन्ना—त्रिशला माता के पुत्र थे, विशिष्ट कान्ति के धारक थे, विशिष्ट देह से अत्यन्त सुकुमार थे। वे तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में निस्पृह रह कर, अपने माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर, ज्येष्ठ पुरुषों की अनुज्ञा प्राप्त कर, अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर, गृह त्याग के लिये उद्यत थे। फिर भी जीतकल्पी लोकान्तिक देवों ने उस प्रकार की इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, हृदयस्पर्शी, उदार, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्यरूप, मंगलकारी, मृदु, मधुर, मंजुल,

She had two more names : Anavadyā and Priyadarsanā. His daughter's daughter was also of the Kāśyapa *gotra*. She had two names : Śeṣavatī and Yaśovatī.

110. *Srāmaṇa* Bhagavān Mahāvīra was celebrated as a versatile man. He was true to his words, a model of handsomeness, self-contained *(ālīna)*, gentlemanly and modest. A son of the *Jñātṛ* clan, he shed lustre on his clan like the moon. He was a Videha for he was the son of Videhadattā; he was a noble son of Videha, a tender son of Videha. He spent thirty years of his life in Videha and then after his parents had passed away to the abode of the gods, he sought permission from his elders and fulfilled his vow.

Once again the *Laukāntika* gods, following established tradition, joyously felicitated him and hailed him incessantly, addressing him in tones that were charming, amiable and pleasing; speaking in accents which were heart-warming, gracious, generous,
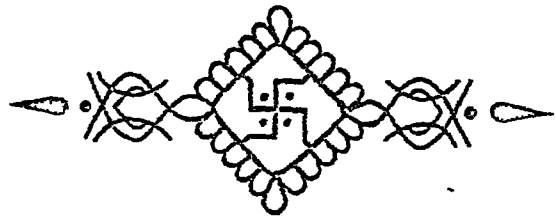
सस्सिरीयाहिं [हिययगमणिज्जाहिं हिययपह्लायणिज्जाहिं गंभीराहिं अपुणरुत्ताहिं] वग्गूहिं अणवरयं अभिनंदमाणा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी—जय २ नंदा ! जय २ भद्दा ! भद्दं ते, जय २ खत्तिय-वरवसहा ! बुज्झाहि भगवं लोगनाहा ! पवत्तेहि धम्मतित्थं, परं हियसुहं निस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सति त्ति कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति ॥११०॥

पुव्विं पि णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्सगाओ गिहत्थ-धम्माओ अणुत्तरे आहोहिए अप्पडिवाई नाणदंसणे हुत्था । तए णं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं आहोहिएणं नाणदंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ, अप्पणो निक्खमणकालं आभोइत्ता चिच्चा हिरण्णं चिच्चा सुवण्णं चिच्चा धणं चिच्चा रज्जं चिच्चा रट्ठं एवं बलं
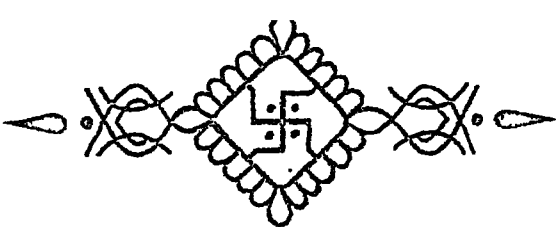
शोभाकारी, [हृदयंगम, हृदयाह्लादक, गम्भीर, और पुनरुक्ति रहित] वाणी से अनवरत अभिनन्दन करते हुए भगवान् की स्तुति की। भगवान् का अभिनन्दन और स्तवना करके देवों ने इस प्रकार कहा– "हे नन्द! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे भद्र! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम्हारा कल्याण हो। हे क्षत्रियवर-वृषभ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे लोकनाथ! हे भगवन्! वोध प्राप्त करो। सम्पूर्ण जगत् के समस्त प्राणियों के हित के लिये धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो। यह धर्मतीर्थ सम्पूर्ण जगत् में समस्त प्राणियों का श्रेष्ठ हित, सुख और निःश्रेयस् करने वाला होगा।" इस प्रकार कह कर वे देव जय जय का घोष करते हैं।

१११. श्रमण भगवान् महावीर मनुष्य सम्बन्धी गृहस्थ-धर्म में प्रवेश करने से पूर्व भी अनुत्तर, आभोगिक (प्रत्यक्ष), अप्रतिपाति ज्ञान और दर्शन के धारक थे। पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर अनुत्तर, प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन से अपना अभिनिष्क्रमण का समय आ गया है, ऐसा देखते हैं। अभिनिष्क्रमण का समय देखकर, रजत का त्याग कर, सुवर्ण का त्याग कर, धन का त्याग कर, राज्य का त्याग कर, राष्ट्र का त्याग कर, इसी प्रकार सेना,

virtuous, noble and auspicious; they uttered words which were sweet, soft and well-measured and which avoided repetitions; words which were profound and graceful, and went straight to the heart, filling it with jubilance. They exclaimed: "Hail to the joy-giving one, the noble one, may all go well with you. Hail to the great bull among the *Kṣatriyas*. Awake, O lord, O leader of men, awake, and bearing in mind the welfare, happiness and spiritual well-being of all the worlds and of all living beings, auspicate the great stream of *dharma*". Having uttered these words, the gods hailed him repeatedly with great shouts of 'Victory'.

111. Even before he became a householder, *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra had the gift of a supreme, unerring, omniscient intuitive vision. His vision gave him foreknowledge of his renunciation. So when the hour of renunciation came, he gave up his gold, his gold-ornaments, his kingdom, his empire, his imperial armies, carriages, treasuries, and warehouses, as well as his towns, his harem and all his subjects. He renounced his immense wealth comprising gold-heaps, gems, precious stones,
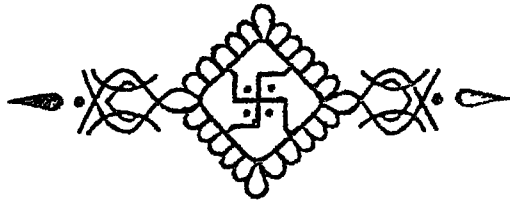
वाहणं कोसं कुट्ठागारं चिच्चा पुरं चिच्चा अंतेउरं चिच्चा जणवदं चिच्चा विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयणमाइयं संतसारसावतिज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता, दाणं दायारेहिं परिभाइत्ता, दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता, जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं चंदप्पभाए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखिय-चक्किय-नंगलिय-मुहमंगलिय-वद्धमाण-पूसमाण-घंटियगणेहिं, ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मियमहुरसस्सि-रीयाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं अट्ठसइयाहिं अपुणरुत्ताहिं वग्गूहिं
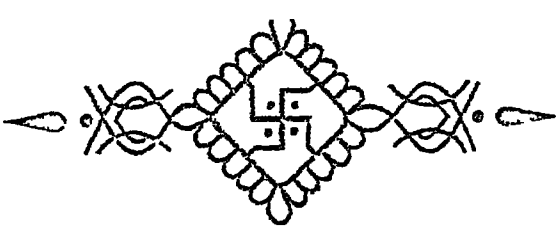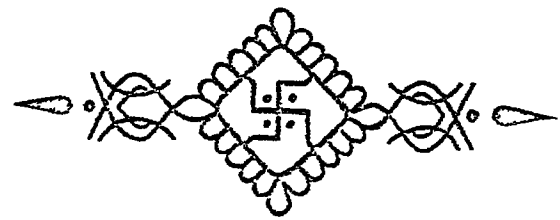
वाहन, कोष, कोषागार का त्याग कर, पुर का त्याग कर, अन्तःपुर का त्याग कर, जनपद का त्याग कर, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल, माणिक आदि समस्त सारभूत समृद्धि का त्याग कर, विशेष रूप से परित्याग कर, विगोपित (आरक्षित) धन को याचकों को दान रूप में तथा गोत्रियों में विभाजित कर दिया।

श्रमण भगवान् महावीर जब हेमन्त ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष मार्गशीर्ष कृष्ण चल रहा था तब उस मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी के दिन जब छाया पूर्व दिशा की ओर ढल रही थी, प्रमाणोपेत पौरुषी आ गई थी — उस समय सुव्रत दिवस में, विजय मुहूर्त्त में, चन्द्रप्रभा नामक शिविका (पालकी) में बैठे। मार्ग में शिविका के पीछे देव, मानव और असुरों का समूह चल रहा था। उसमें (दीक्षा महोत्सव यात्रा में) आगे कितने ही शंखधर, चक्रधर, हलधर, (हलायुध धारक), मुख-मांगलिक, वर्द्धमानक (अपने कन्धों पर दूसरों को बिठाकर चलने वाले), मंगल-पाठक और घण्टे बजाने वाले चल रहे थे। दर्शकगण इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, हृदयस्पर्शी, उदार, कल्याणकारी, शिवकारक, धन्यकारक, मंगलमय, मृदु, मधुर, शोभायुक्त, हृदय को प्रह्लादित करने वाली, पुनरुक्ति रहित, एक सौ अर्थयुक्त वाणी से

pearls, mother-of-pearls *(śaṅkha)*, corals, rubies and all else that was of value and consequence. He renounced it all with utter indifference and had it distributed among the poor and the debt-burdened, through proper hands.

And on the tenth day of the first fortnight, the dark fortnight of the month of *Mārgaśirṣa*, the first month of winter, when, on that day, the day called *Suvrata*—the shadows had moved to the east for one whole man-length and the moment was the auspicious moment called *Vijaya* (success), Bhagavān Mahāvīra left his home on his litter called the *Candraprabha*. On his way, he was followed by a huge congregation of gods, men and demons. Surrounding him walked many groups of men, some carrying auspicious conches, others carrying weapons shaped like wheels *(cakra)* or ploughs *(lāngala)*; some were uttering auspicious words and others shouted words of benediction *(vardhamānaka)*. With him walked his retainers *(puṣyajana)* and men who proclaimed his march by ringing bells.
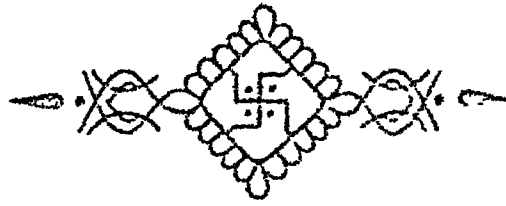
अभिनंदमाणा अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी ॥१११॥

जय २ नंदा! जय २ भद्दा! भद्दं ते, [अभग्गेहिं नाणदंसण-चरित्तेहिं अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं, जियविग्घो वि य वसाहि तं देव! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागदोसमल्ले तवेणं, धिइधणियबद्धकच्छे मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं
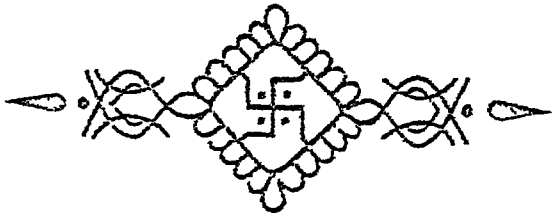
भगवान् का अभिनन्दन और स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे :

११२. "हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे भद्र! तुम्हारी जय हो, जय हो । तुम्हारा कल्याण हो । [निर्दोष ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा, नहीं जीती हुई इन्द्रियों पर जय प्राप्त करो। जीतकर श्रमण धर्म का पालन करो । विघ्नों पर विजय प्राप्त कर हे देव ! तुम मोक्ष के मध्य में निवास करो । तप से रागद्वेषरूपी मल्लों का नाश करो। धैर्यरूप सुदृढ कच्छ (लंगोट) बांधकर उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा आठों कर्म-शत्रुओं का मर्दन करो।

All hailed him and honoured him with pleasant, heart-warming and auspicious words, exclaiming:

112. "Hail to the bestower of joy, the virtuous one. May virtue attend upon you. May you succeed in controlling the unconquerable sense-impulses with your unerring intuitive vision and your unswerving conduct, and may you observe the *dharma* of the Jinas. May you dwell in perfection. O godly one, superceding all obstacles, may you repulse the terrible foes of vice and worldly attachment through your austerities. May you annihilate the eight *karma*-foes through your heroic fortitude and a spirit enlightened with the radiance of ultimate *dhyāna* (meditation). May you remain ever-wakeful, O heroic one, and may the banner of spiritual glory *(ārādhanā)* be yours in this theatre of the world. May you attain the highest omniscient *(kevala)* vision, which is untouched by darkness. And travelling on the straight and unbending path on which the Jinas of yore have travelled, may you attain ultimate freedom *(moksa)*.
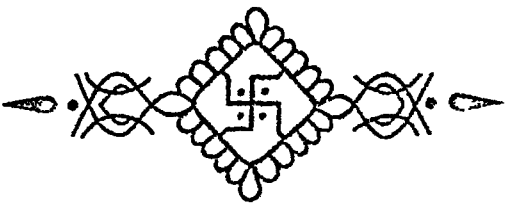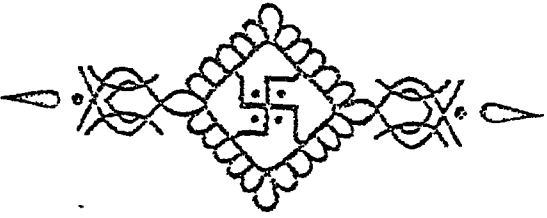
सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं वरणाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं जिणवरोवदिट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेणं, हंता परीसहचमूं,] जय जय खत्तियवरवसहा ! बहूइं दिवसाइं बहूइं पक्खाइं बहूइं मासाइं बहूइं उऊइं बहूइं अयणाइं बहूइं संवच्छराइं, अभीते परीसहोवसग्गाणं, खंतिखमे भयभेरवाणं, धम्मे ते अविग्घं भवउ त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजंति ॥११२॥ तए णं समणे भगवं महावीरे नयणमाला-सहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे २, हिययमालासहस्सेहिं उन्नंदिज्जमाणे २, मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे २, कंतिरूवगुणेहिं पत्थिज्जमाणे २, अंगुलिमालास-हस्सेहिं दाइज्जमाणे २, दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारिसहस्साणं अंजलि-

हे वीर ! अप्रमत्त वनकर त्रैलोक्य-रंगमण्डप में आराधना पताका को फहरावो। अन्धकार रहित, अनुत्तर और श्रेष्ठतम केवलज्ञान को प्राप्त करो। जिनेश्वरों द्वारा उपदिष्ट अकुटिल मार्ग का अनुसरण कर तुम परमपद मोक्ष को प्राप्त करो। परीपहों की सेना का नाश करो।] हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! हे क्षत्रिय नरपुंगव ! तुम्हारी जय जय हो। वहुत दिनों तक, वहुत पक्षों तक, बहुत महीनों तक, वहुत ऋतुओं तक, वहुत अयनों तक, वहुत वर्षों तक परीपहों, उपसर्गों और भय-भैरव प्रसंगों पर शांति और क्षमा को धारण कर, निर्भीक होकर विचरण करो। तुम्हारी धर्म-साधना विघ्न रहित हो।" इस प्रकार कहते हुए दर्शकगण जय जयकार करते हैं।
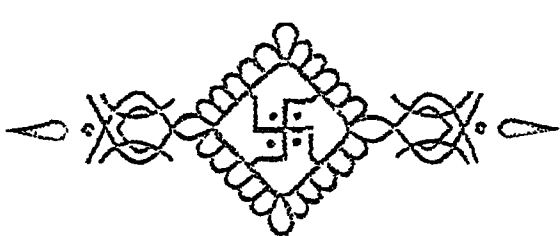
११३. श्रमण भगवान् महावीर हजारों नेत्रों से देखे जाते हुए, हजारों मुखों से प्रशंसित होते हुए, हजारों हृदयों से अभिनन्दित होते हुए, हजारों मनोरथों से इच्छित होते हुए, कान्ति, रूप और गुणों से प्रार्थित होते हुए, हजारों अंगुलियों से इंगित होते हुए, अपने दाहिने हाथ से हज़ारों नर-नारियों के

May you be victorious over the armies of adversity with your forbearance. Hail ! bull among the best of *kṣatriyas.* May you dwell fearlessly amidst sufferings and calamities and fright and terror for innumerable fortnights, months, seasons, sesterixes and years. May nothing hinder you in your *dharma*".

Having said this, they once again raised great shouts of 'Victory'.

113. As he proceeded on his home-leaving journey *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra was surrounded by thousands of admiring eyes gazing up to him, and by lips which sang hymns of his praise, and by hearts which offered him adoration. As he moved, he was the centre of aspiration for thousands. His radiance and his beauty excercised a captivating allure on every onlooker. Thousands of fingers pointed at him : as the goal. He raised his right hand to accept the reverent gesture of a thousand folded palms.

As he passed he crossed rows of a thousand mansions. Sweet, enchanting music of strings mingled with rhythmic drums, songs and other
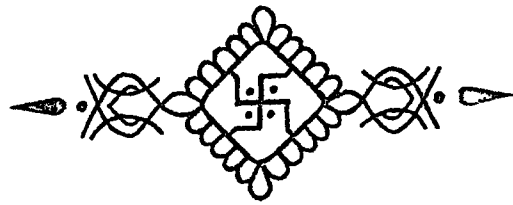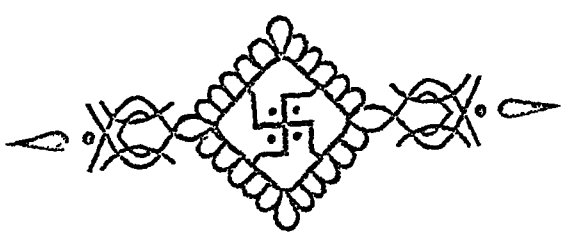
मालासहस्साइं पडिच्छमाणे २, भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे २, तंती-तल-ताल-तुडिय-गीय-वाइयरवेणं महुरेण य मणहरेणं जयजयसद्द-घोसमीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिबुज्झमाणे २, सव्विड्ढीए जाव [सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्ववाहणेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूतीए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वसंगमेणं सव्वपगतीहिं सव्वनाडएहिं सव्वतालायरेहिं सव्वोरोहेणं सव्वपुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालं-कारविभूसाए सव्वतुडियसद्दसन्निनादेणं महता इड्ढीए महता जुतीए महता बलेणं महता वाहणेणं महता समुदएणं महता वरतुडिय-जमग-समगप्पवादितेणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-दुंदुहि-निग्घोस-नादिय] रवेणं कुंडपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव णायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव
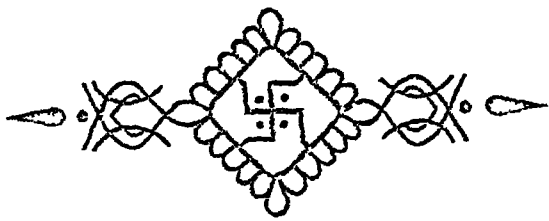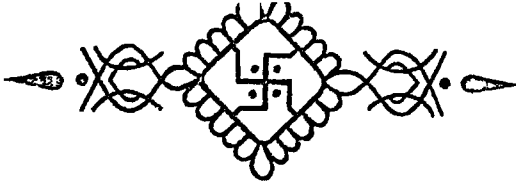
नमस्कार को स्वीकार करते हुए, हजारों गृहपंक्तियों को पार करते हुए, वीणा, हस्तताल, त्रुटित आदि के गाने और वादित्रों के रव से तथा मधुर और मनोहर जय जयकार शब्द-घोप के मिश्रण से अत्यन्त मंजुल जयनाद घोप से सावधान होते हुए, समस्त समृद्धि के साथ, यावत् [समस्त द्युति, समस्त वल-सेना, समस्त वाहन, समस्त समुदाय, समस्त आदर-औचित्य, समस्त ऐश्वर्य, समस्त शोभा, समस्त उत्कण्ठा, समस्त प्रकार के प्रजाजन, सर्व प्रकार के नृत्य और नाटक, समस्त अन्तःपुर, सभी प्रकार के पुष्प, फल, वस्त्र, गन्ध, माला और अलंकार, सभी प्रकार के वाद्यमान वादित्र, महती समृद्धि, महती द्युति, महती सेना, वहुत से वाहनों और विशाल जन-समुदाय के साथ तथा एक साथ वजते हुए अनेक उत्तम वाद्यों की ध्वनि के साथ एवं शंख, पणव, भेरी, झल्लरी, खरमुखी, हुडुक, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि आदि वादित्रों के तुमुल] घोप के साथ कुण्डपुर नगर के वीचों-वीच होकर निकलते हैं। निकलकर जहां ज्ञातखण्डवन नामक उद्यान है, जहां पर श्रेष्ठ अशोक का वृक्ष है, वहां आते हैं।

instruments, greeted him on his path; and with the music were raised shouts of 'Victory'. He moved amidst all the splendours of glory, for he was surrounded by congregations of armies, carriages and retainers. He marched with honour, with the flourish of majesty, amidst a tumult of great excitement. He was surrounded by throngs of men hailing from every walk of life : by all his subjects *(prakṛti)*, high or low, by dancers and performers, ballad-singers, ballad-singing drum-players *(tālāvacara)* and all the women of his womens' apartments *(avarodha)*.

He marched through the town of Kuṇḍapura with great pomp amidst the sweet fragrance of flowers and perfumes and the magnificence of beautiful garlands, clothes, ornaments and splendours of every kind. His procession reverberated with the sound of a myriad musical instruments and shone with the dazzle of a thousand riches. It contained large contingents playing on the *tūrya*, *yamaka* and *samaka;* it rang with the sounds of conches, cymbals *(paṇava)*, *paṭaha*-drums, kettle-drums *(bherī)*, *jhallarī*-drums, *khara-mukhīs*, *huḍukkās* and great *dundubhi*-drums.
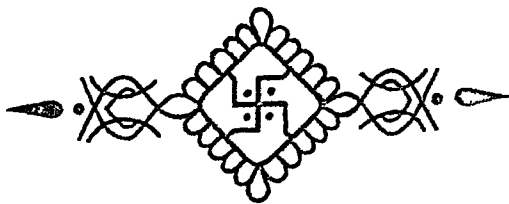
उवागच्छइ ॥११३॥

उवागच्छित्ता असोगवर-पायवस्स अहे सीयं ठावेइ, अहे सीयं ठावित्ता सीयाओ पच्चो-रुहइ, सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयति, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थु-त्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवा-गएणं एगं देवदूसमादाय एगे
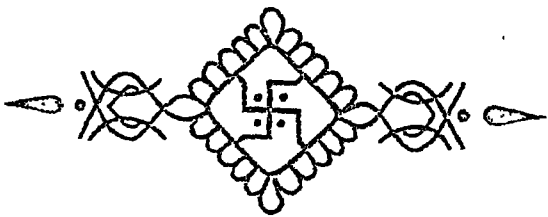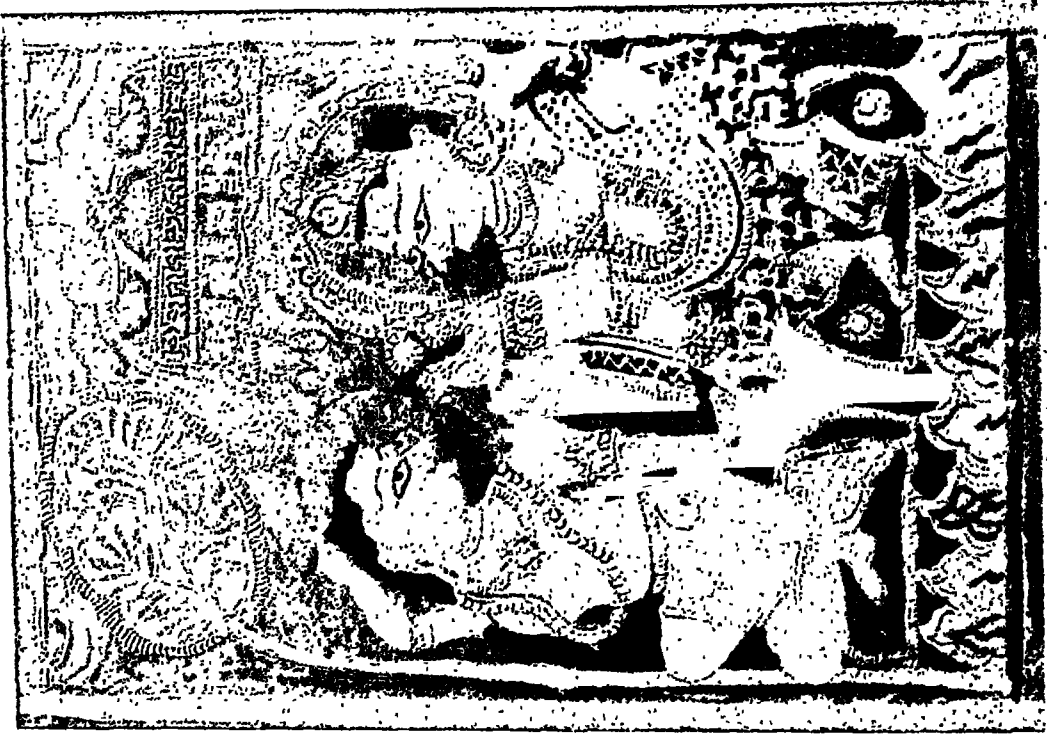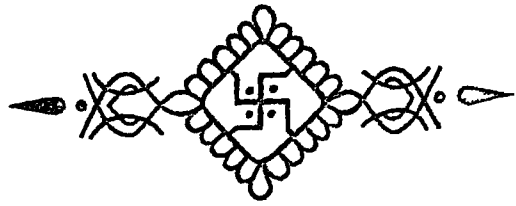
११४. वहां पहुंचने पर उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे शिविका रखी जाती है। अशोक वृक्ष के नीचे शिविका रखने पर भगवान् शिविका से उतरते हैं। पालकी से उतर कर वर्द्धमान स्वयमेव आभरण, माला, अलंकार आदि उतारते हैं। आभरणादि उतारकर स्वयमेव पंच-मुष्टि लोच करते हैं। पंच-मुष्टि लुंचन कर पानी रहित छट्ठभक्त अर्थात् दो उपवास किये हुए, हस्तोत्तरा (उत्तरा-फाल्गुनी) नक्षत्र का योग आने पर, एक देवदूष्य वस्त्र को धारण कर, एकाकी ही

He crossed the town of Kuṇḍapura and arrived at the park called the Jñāti-ṣaṇḍa-vana and came to the place where an *aśoka* tree stood.

114. He stopped his litter near this magnificent *aśoka* tree and climbed down the carriage. Then he shed all his finery, his ornaments and garlands. He plucked out his hair with his fists in five handfuls. He undertook a vow that he will have only one meal, without water, out of six regular meals. Then, when the moon was in conjunction with the constellation *uttarāphālguni*, he became a homeless mendicant, wandering solitary with a lone piece of holy cloth on his person.
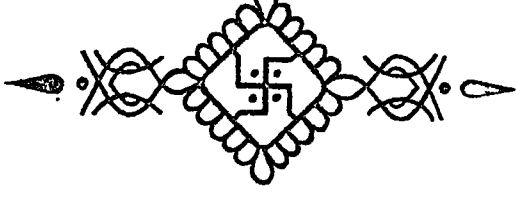
अबीए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥११४॥

समणे भगवं महावीरे संवच्छरं साहियं मासं [जाव] चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलेपाणिपडिग्गहिए ।११५।

समणे भगवं महावीरे सातिरेगाइं दुवालस वासाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तंजहा—दिव्वा वा माणुसा वा
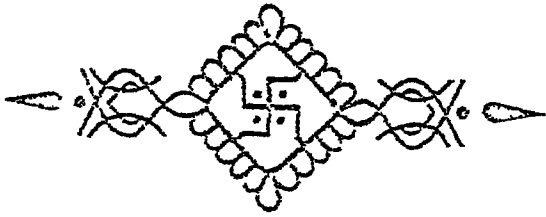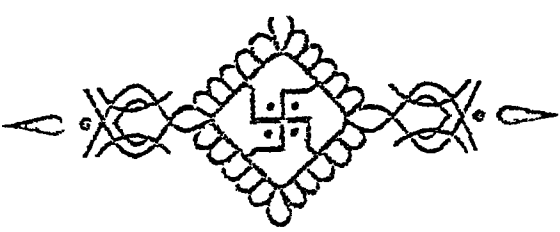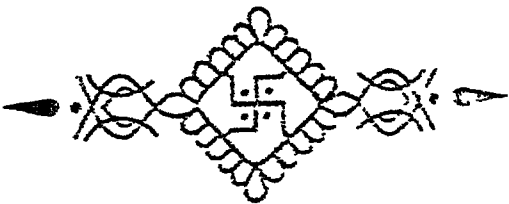
मुण्डित होकर, गृहवास को त्याग कर अनगारत्व स्वीकार करते हैं।

११५. श्रमण भगवान् महावीर एक वर्ष से अधिक एक महीने तक अर्थात् तेरह महीनों तक वस्त्रधारी रहे। उसके पश्चात् वस्त्र रहित हुए और पाणिपात्री (करपात्री) हुए।

११६. श्रमण भगवान् महावीर प्रव्रजित होने के पश्चात् बारह वर्ष से कुछ अधिक समय तक शरीर की ओर से सर्वथा उदासीन रहे। शरीर का त्याग कर दिया हो इस प्रकार शरीर की ओर से सर्वथा अनासक्त रहे। साधना काल में जो भी देवकृत, मनुष्यकृत,
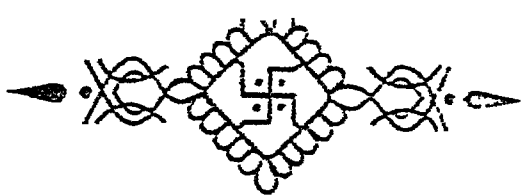
115. *Sramaṇa* Bhagavān Mahāvīra wore his cloth for an year and a month, after which he gave up all clothing. He used his hands as his only begging-bowl.

116. *Sramana* Bhagavān Mahāvīra cultivated an attitude of 'giving up the body' *(utsrsta-kaya)* and 'renouncing the body' *(tyakta-deha)* for a period

तिरिक्खजोणिया वा अणुलोमा वा पडिलोमा वा ते उप्पन्ने सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ॥११६॥

तए णं समणे भगवं महावीरे अणगारे जाते, इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाण-भंडमत्त-निक्खेवणासमिए उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी अकोहे अमाणे अमाए अलोभे संते पसंते उवसंते परिनिव्वुडे अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नग्गंथे निरुवलेवे। [दुन्नि संघयणगाहाओ—]

कंसे संखे जीवे, गगणे वाऊ य सारएसलिले।
पुक्खरपत्ते कुम्मे, विहगे खग्गे य भारुंडे ॥१॥
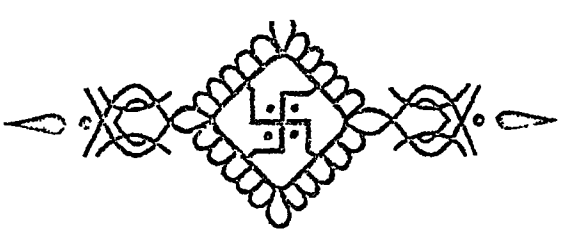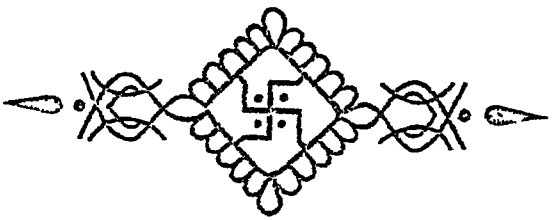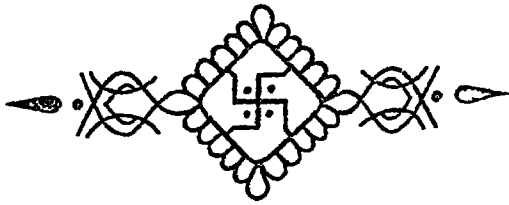
तिर्यंचकृत अनुकूल या प्रतिकूल उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, उन्हें वे निर्भय होकर सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं, सहन करने में समर्थ होते हैं, धैर्य रखते हैं और अपने सन्तुलन को बनाये रखते हैं।

११७. जब से श्रमण भगवान् महावीर अनगार हुए तब से वे ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भाण्डमात्र-निक्षेपणा समिति और उच्चार-प्रस्रवण खेल-शिघान-जल्ल-पारिष्ठापनिका समिति इन पांचों समितियों के धारक, मन, वचन और काय समितियों के पालक, मनगुप्ति, वचनगुप्ति, और 'कायगुप्ति इन तीनों गुप्तियों के रक्षक, इन्द्रिय-संयमी, और अंतरंग ब्रह्मचारी हुए। क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों से रहित हुए। शान्त, प्रशान्त और उपशान्त हुए तथा सभी प्रकार से सन्तापों से रहित हुए। अनास्रवी, ममता रहित, अकिंचन – परिग्रह रहित, ग्रन्थि रहित और निर्लेप हुए।

कांस्यपात्र, शंख, जीव, आकाश, वायु, शरद् ऋतु का जल, कमल पत्र, कूर्म, पक्षी, गेंडा, भारण्ड,

of over twelve years. With forbearance he endured all adversities that came his way whether caused by gods, men or beasts—adversities both natural and supernatural. He endured them all with compassion, stoic detachment and equanimity as and when they arose.

117. And Bhagavān Mahāvīra, then, became truly abodeless *(anāgārika)*. He was self-restrained in his way-faring *(īrya)*, his speech and his desires, as well as in holding and rightly placing the begging-bowl. He was circumspect in discarding excreta, urine, saliva, phlegm or body-dirt. He was self-controlled in mind, speech and body. He had restrained his heart, his tongue, his body, his senses and his carnal desires. He was free of anger, pride, deceit and greed. His spirit was calm, composed, and tranquil. He attained that emancipation which arises from total withdrawal *(parinirvṛta)*. He was liberated from the knots of *karma (anāsrava)*. He had become ego-free and free from all sense of possessiveness. He had broken free from all bonds and attachments. He was like a pure bronze vessel emptied of all water or like the unstained mother-of-pearl.
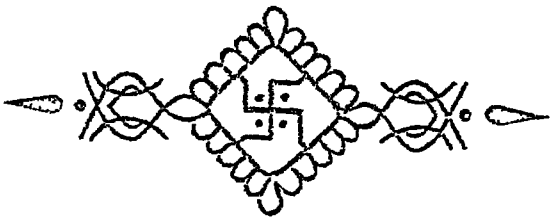
कुंजर वसहे सीहे, णगराया चेव सागरमखोहे ।
चंदे सूरे कणगे, वसुंधरा चेव सुहुयहुए ॥२॥

कंसपाई इव मुक्कतोए, संखो इव निरंजणे, जीवो इव अप्पडिहयगती, गगणं पि व निरालंबणे, वाउरिव अप्पडिबद्धे, सारदसलिलं व सुद्धहियए, पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे, कुम्मो इव गुत्तिदिए, खग्गिविसाणं व एगजाए, विहग इव विप्पमुक्के, भारंडपक्खी व अप्पमत्ते, कुंजरो इव सोंडीरे, वसभो इव जायथामे, सीहो इव दुद्धरिसे, मंदरो इव अप्पकंपे, सागरो इव गंभीरे, चंदो इव सोमलेसे, सूरो इव दित्ततेए, जच्चकणगं व जायरूवे, वसुंधरा इव सव्वफासविसहे, सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते ॥११७॥

नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधो भवति । से य पडिबंधे
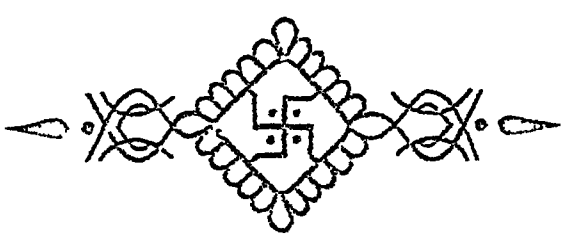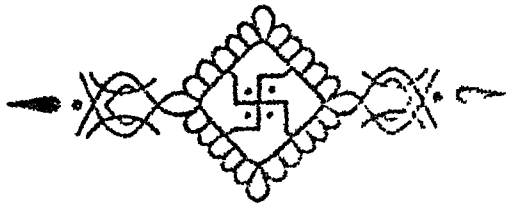
हाथी, बैल, सिंह, पर्वतराज, अक्षुभित सागर, चन्द्र, सूर्य, सुवर्ण, पृथ्वी और अग्नि (इन पदार्थों की उपमा के अनुरूप गुणों के धारक हुए।)

अर्थात् कांस्यपात्र की तरह निर्लेप, शंख की तरह निरंजन, जीव की तरह अप्रतिहत गति के धारक (अर्थात् अस्खलित रूप से विहार करने वाले), आकाश के समान निरालम्बी, वायु के समान अप्रतिबद्ध, शरदृऋतु के जल के समान विशुद्ध हृदयी, कमल पत्र के समान निर्लेप – अनासक्त, कूर्म के समान गुप्तेन्द्रिय, गेंडे के शृंग के समान एकाकी, पक्षियों की तरह स्वतन्त्र, भारण्ड पक्षी के समान अप्रमत्त, हाथी के समान शौण्डीर – शौर्यधारक, वृषभ के समान प्रबल पराक्रमी, सिंह के समान दुर्द्धर्ष, मेरु पर्वत के समान निष्कम्प – सुनिश्चल, समुद्र के समान गम्भीर, चन्द्र के समान सौम्य, सूर्य के समान देदीप्यमान तेज के धारक, उत्तम स्वर्ण की तरह कान्तिमान् सौन्दर्य के धारक, पृथ्वी की तरह समस्त स्पर्शों को सहन करने वाले सर्वसह अथवा क्षमाशील और अग्नि की तरह तेज से जाज्वल्यमान हुए।

११८. उन श्रमण भगवान् महावीर को कहीं पर भी और किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। वह प्रतिबन्ध

He was like the boundlessly moving spirit or like the self-supporting sky. He was unimpeded like the winds and had a mind as pure as autumn waters. He was like an unsullied lily-leaf. Like a tortoise with his senses withdrawn within himself. He was solitary like the one single horn of a rhinoceros. He was free as a bird, ever-wakeful like the *bhāruṇḍa*-bird, full of valour like an elephant, strong as a bull, unconquerable as a lion, steadfast like the Mandara mountain, deep as the ocean, calm and beautiful as the Moon, refulgent as the Sun, free of dross like the purest gold and all-enduring like the Earth. He glowed with light like flaming fire.

118. All these above analogies have been summed up in two verses (*gāthās*) :

A bronze vessel, the mother-of-pearl
The spirit, the sky, the wind and autumn waters
lily-leaf, tortoise, bird
rhinoceros and *bhāruṇḍa*-bird.
The elephant, the bull, the lion
The best of mountains, ocean and imperturbability
The Moon, the Sun and gold
The Earth and flaming fire.
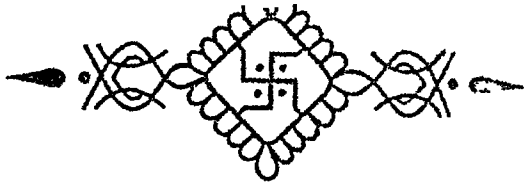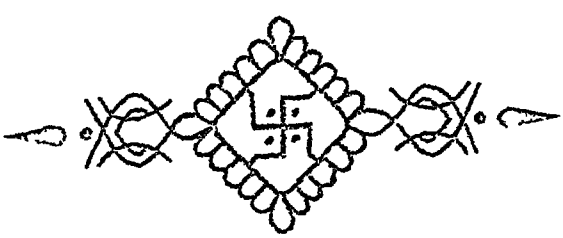
चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ—सचित्ताचित्तमीसेसु दव्वेसु। खित्तओ—गामे वा नगरे वा अरण्णे वा खेत्ते वा खले वा घरे वा अंगणे वा नहे वा। कालओ—समए वा आवलियाए वा आणापाणुए वा थोवे वा खणे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उऊ वा अयणे वा संवच्छरे वा अन्नयरे वा दीहकालसंजोए वा। भावओ—कोहे वा माणे वा मायाए वा लोभे वा भए वा हासे वा पिज्जे वा दोसे वा कलहे वा जाव [अब्भक्खाणे वा पेसुन्ने वा परपरिवाए वा अरतिरती वा मायामोसे वा] मिच्छादंसणसल्ले वा (ग्रं. ६००)। तस्स णं भगवंतस्स नो एवं भवति ॥११८॥

से णं भगवं वासावासवज्जं अट्ठ गिम्हहेमंतिए मासे गामे एगराइअं नगरे पंचराईअं, वासीचंदणसमाणकप्पे समतिणमणिलेट्ठुकंचणे सम-

चार प्रकार का होता है, यथा – द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्य से सजीव, निर्जीव और मिश्र। क्षेत्र से – ग्राम, नगर, अरण्य, खेत, खलिहान, गृह, आंगन और आकाश। काल से समय, आवलिका, आनप्राण, स्तोक, क्षण, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष अथवा दूसरा कोई भी दीर्घकाल का संयोग। भाव से क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, हास्य, राग, द्वेष, कलह, यावत् [अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति, रति, माया-मृषावाद और] मिथ्या दर्शन शल्य। संयमी महावीर उक्त चारों प्रकार के प्रतिबन्धनों से प्रतिबाधित नहीं हुए।
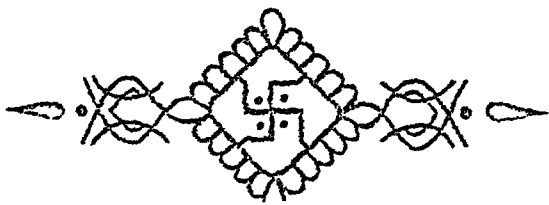
११९. वे भगवान् वर्षावास – चातुर्मास को छोड़कर ग्रीष्म और हेमन्त ऋतु में आठ मास तक विहार करते रहते थे। ग्राम में एक रात्रि और नगर में पांच रात्रि रहते थे अर्थात् इससे अधिक नहीं रहते थे। वसूला और चन्दन के स्पर्श में भी समान संकल्प वाले, तृण और मणि, पत्थर और स्वर्ण में भी समान वृत्ति वाले, सुख

Bhagavān Mahāvīra was free from all possible impediments which are known to be of four kinds : (1) *dravya* or material impediments; (2) impediments due to *sthāna*, that is, place; (3) impediments due to *kāla*, or time and (4) impediments due to *bhāva* or inner-impulses.

Dravya-impediments are caused by sentient, insentient or mixed objects.

Sthāna-impediments may occur in a village, a town, a forest, a farm, a barn, a house, a courtyard or the sky.

Kāla-impediments comprise durations such as *samaya*, *avalikā*, *anapānaka* (time taken in drawing a breath), *stoka* (seven *anapānakas*), *kṣaṇa* (multiple breaths), *lava* (seven *stokas*), *muhūrta* (seventy *lavas*), *ahorātra* (day and night), *pakṣa* (a fortnight), a month, a season, an year and longer durations.

Bhāva-impediments are : anger, pride, deceit, greed, fear, laughter, love, hatred, quarrelsomeness, calumny, slander, scandal-mongering, attachment, aversion, hypocrisy and the anguish of false vision. Bhagavān Mahāvīra had transcended these impediments.
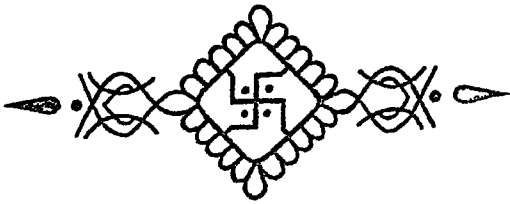
दुक्खसुहे इहलोग-परलोग-अप्पडिबद्धे जीवियमरणे निरवकंखे संसार-पारगामी कम्मसंगनिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए एवं च णं विहरति ॥११९॥

तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेणं अणुत्तरेणं दंसणेणं अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं आलएणं अणुत्तरेणं विहारेणं [अणुत्तरेणं वीरिएणं] अणुत्तरेणं अज्जवेणं अणुत्तरेणं मद्दवेणं अणुत्तरेणं लाघवेणं अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तीए [अणुत्तराए गुत्तीए] अणुत्तराए तुट्ठीए अणुत्तरेणं सच्च-संजम-तव-सुचरिय-सोवच्चिय-फलनिव्वाणमग्गेणं, अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालस संवच्छराइं विइक्कंताइं। तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं पाईणगा-मिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिवट्टाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं
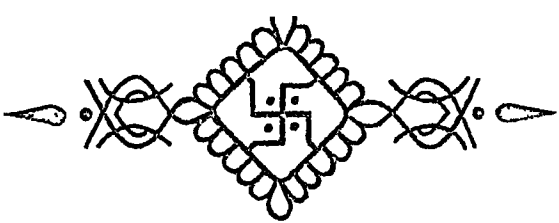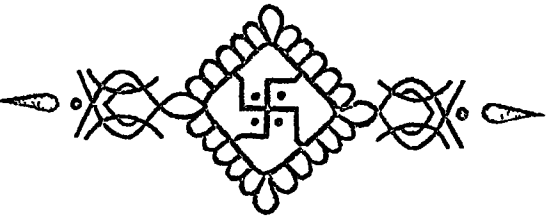
और दुःख को समान भाव से सहन करने वाले, इहलोक और परलोक के प्रतिबन्धों से रहित, जीवन और मरण की आकांक्षा से मुक्त, संसार को पार करने वाले, संयमी महावीर कर्म संगति का नाश करने के लिये उद्यमशील होकर इस प्रकार विचरण करते हैं।

१२०. इस प्रकार भगवान् को—अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, श्रेष्ठतम चारित्र, निर्दोष आश्रय स्थान, प्रशस्त विहार, [सर्वोत्कृष्ट वीर्य – पराक्रम,] अनुपम ऋजुता – सरलता, अनुपम मृदुता – विनम्रता, अनुपम लघुता, प्रशस्त शान्ति, अनुपम अपरिग्रहभाव, [अनुपम गुप्ति] अनुपम प्रसन्नता, अनुपम सत्य, संयम, तप आदि गुणों से सम्यक् आचरण द्वारा निर्वाण का मार्ग प्रशस्त करते हुए (मोक्षलाभ सन्निकट आता है), उन सभी सद्गुणों से आत्मा को भावित करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। तेरहवें वर्ष के मध्यभाग में जब ग्रीष्म ऋतु का दूसरा महीना, चौथा पक्ष वैशाख शुक्ल चल रहा था तब उस वैशाख शुक्ल दशमी के दिन, जब छाया पूर्व दिशा की तरफ ढलने लगी थी, प्रमाणोपेत पौरुषी आ गई थी, उस समय सुव्रत नामक दिवस में,

119. Bhagavān Mahāvīra spent no more than one night in a village and no more than five nights in a town, excepting the four months of rain.

He viewed both foul excreta and fragrant sandalwood with an equanamity of vision. He looked at a piece of straw, a precious gem or a clod of clay with equal detachment. Joy or sorrow left him equally unaffected. Neither did this world nor the next hold any allure for him. He had reached beyond *saṁsāra* (the interminable cycle of existence) and desired neither life nor death. He only aspired to *annihilate every single particle of karma* that still clung to him. And thus he spent his days.

120. Meditating on his inmost self, Bhagavān Mahāvīra spent twelve years of his life on the path to ultimate *nirvāṇa* which can be attained only through truth, self-control, spiritual practices *(tapas)* and right conduct : through the highest knowledge, vision, the most virtuous behaviour, *blameless habitation, blameless wayfaring,* supreme will, honesty and humility as well as the most prefect skill, forebearance, independence, restraint, *contentment and understanding.*
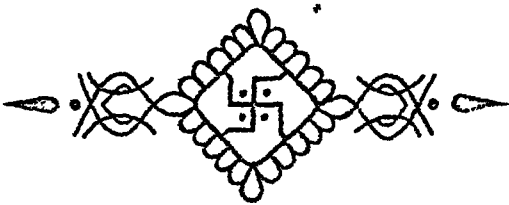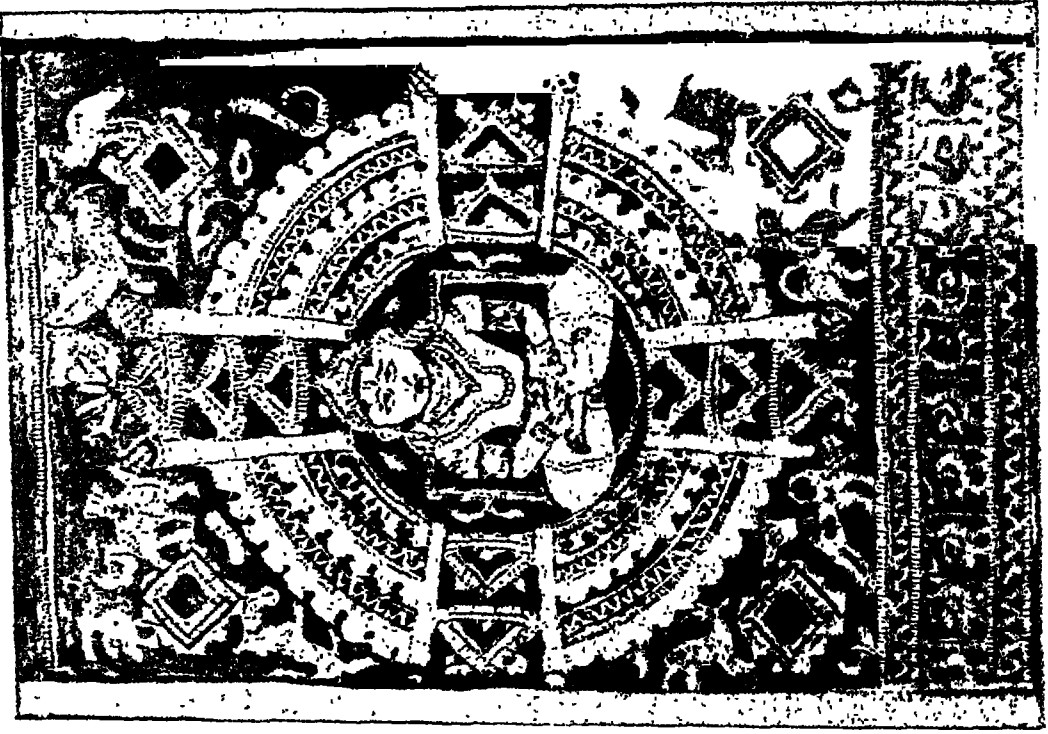
विजएणं मुहुत्तेणं जंभियगा-
मस्स नगरस्स बहिया उजुवा-
लियाए नईए तीरे वेयावत्तस्स
चेईयस्स अदूरसामंते सामा-
गस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि
सालपायवस्स अहे गोदोहियाए
उक्कुडुयनिसिज्जाए आयाव-
णाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं
भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं
नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणं-
तरियाए वट्टमाणस्स अणंते
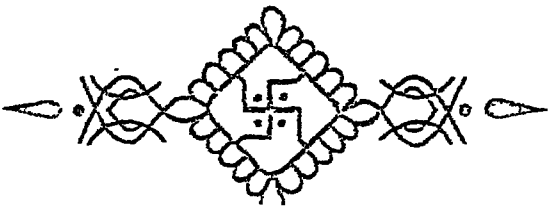
विजय मुहूर्त में, जृम्भिका नामक ग्राम के बाहर, ऋजुवालिका नदी के किनारे, जीर्णोद्धार योग्य चैत्य से न अत्यधिक दूर और न अत्यधिक निकट श्यामाक नामक गृहपति के खेत में, शालवृक्ष के नीचे, गोदोहिका आसन से उत्कट रूप में बैठे हुए, आतापना द्वारा तप करते हुए, निर्जल छट्ठभक्त – दो उपवास किये हुए, ध्यानमग्न भगवान् को हस्तोत्तरा (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्र का योग आने पर अनन्त,
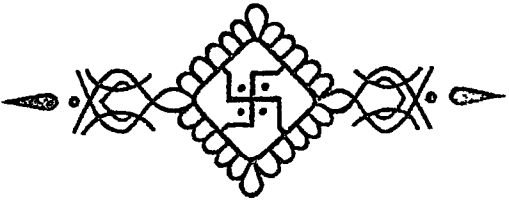
And, then, in the thirteenth year of his wanderings, Bhagavān Mahāvīra attained the ultimate knowledge and vision called *kevala* : the vision which is final, unimpeded, unveiled, total and all-embracing. This happened in the second month of summer, the month of *Vaiśākha*, in that season's fourth fortnight when the moon was in its waxing phase. The day was the tenth of the fortnight, it was the day called *Suvrata*. The shadows had moved to the east for one man-length and the hour (*muhūrta*) was the auspicious hour called *Vijaya* (Success). Bhagavān Mahāvīra, who had been taking only one meal without water in three days, was at that time sitting in meditation under a *śāla* tree in the fields of the householder Śyāmaka, near an abandoned temple called *Vijayāvarta* on the banks of the Ṛjupālikā river in the vicinity of the village called Jṛmbhaka. He sat with heels together, crouching in the posture of milking a cow, exposing himself to the heat of the sun. The moon was at the moment in conjunction with the constellation *uttarāphālguni*.
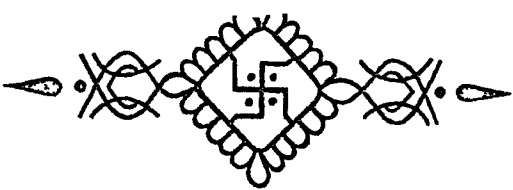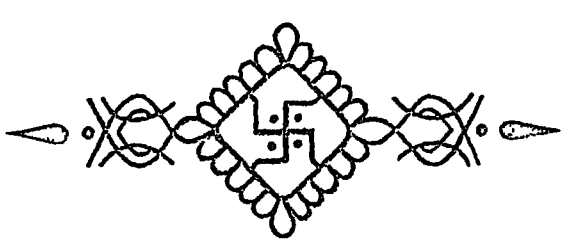
अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ॥१२०॥ तए णं समणे भगवं महावीरे अरहा जाए, जिणे केवली सव्वन्नू सव्वदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स परियायं जाणइ पासइ, सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं गतिं ठिइं चवणं उववायं तक्कं मणो माणसियं भुत्तं कडं पडिसेवियं आविकम्मं रहोकम्मं अरहा अरहस्स भागी, तं तं कालं मणवयणकायजोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरति ॥१२१॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासे वासावासं उवागए। चंपं च पिट्ठिचंपं च नीसाए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए। वेसालिं नगरिं वाणियगामं च नीसाए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए। रायगिहं नगरं नालंदं
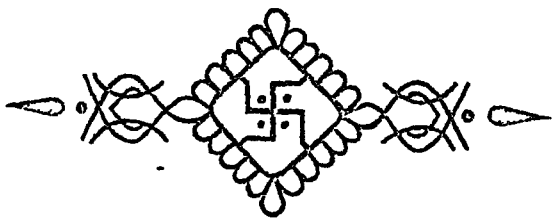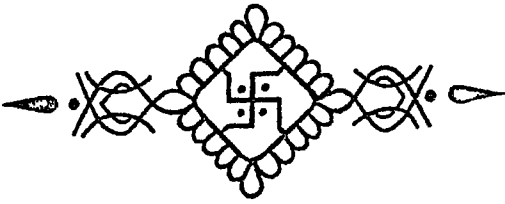
सर्वोत्कृष्ट, व्याघात रहित, आवरण रहित, समग्र व परिपूर्ण ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

१२१. उसके पश्चात् भगवान् महावीर अर्हत् हुए, जिन, केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए। अब भगवान् देव, मनुज और असुर सहित जगत् के समस्त पर्यायों को जानते हैं, देखते हैं। सम्पूर्ण लोक में समस्त जीवों के आगमन, गमन, स्थिति, च्यवन, उपपात, तर्क, मानसिक संकल्प, भोजन, सभी प्रकार के किये हुए प्रकट या प्रच्छन्न कृत्यों को भगवान् जानते हैं, देखते हैं। भगवान् अर्हत् हुए अतः अब उनके सम्मुख किसी प्रकार का रहस्य नहीं रहा अर्थात् अरहस्य के भागी हुए। उस उस समय में उपस्थित मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियों एवं सम्पूर्ण लोकस्थ समस्त जीवों के समग्र भावों को जानते हुए, देखते हुए अर्हत् महावीर विचरण करते हैं।

१२२. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर ने अस्थिक ग्राम में प्रथम वर्षावास – चातुर्मास किया। चम्पानगरी और पृष्ठचम्पा में भगवान् ने तीन चातुर्मास किये। वैशाली नगरी और वाणिज्य ग्राम में भगवान् ने बारह चातुर्मास किये। राजगृह नगरी में और उसके बाहर नालिन्दपाटक (नालन्दा) की

121. And thus Bhagavān Mahāvīra became an Arhat, a Jina possessed of the all-knowing, all-seeing *kevala*-vision. He knew and saw the minds and conditions of gods, men and demons. He knew their stations, their comings and their goings. He knew how they departed from life and how they came to be born. He knew their hearts, their thoughts, their whole psyche. He knew their experiences, their actions and their sinnings, whether secret or open. For to an Arhat nothing is hidden. He knows and can perceive all beings in all the worlds : he knows them in their mind, speech and physique; he knows and perceives them in their various conditions and their inner being.

122. After his *kevala*-knowledge, *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra spent the four months of rain in a village called Asthikā, without moving out of the village for the whole season. He spent three rainy seasons in Campā and Pṛṣṭi-campā. For twelve rainy seasons he made his abode in the town of Vaiśālī and in Vaṇijagrāma. He spent fourteen rains in the vicinity of the town of Rājagṛha and of Nālandā.
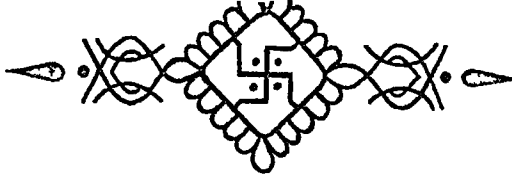
च बाहिरियं नीसाए चोद्दस अंतरावासे वासावसं उवागए । छ मिहिलिया, दो भद्दियाए, एगं आलभियाए, एगं सावत्थीए, [एगं पणीय-भूमीए,] एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रण्णो रज्जूसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए ॥१२२॥

तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रण्णो रज्जू-सहाए अपच्छिमे अंतरावासे वासावासं उवागए, तस्स णं अंतरा-वासस्स जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं जा सा चरमा रयणी तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाति-जरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे, चंदे नामं से दुच्चे संवच्छरे पीइवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे सुव्वयग्गी
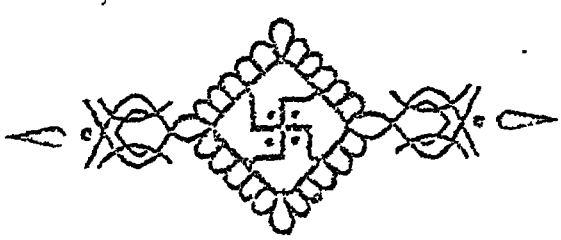
निश्रा में भगवान् ने चौदह चातुर्मास किये। छह मिथिला नगरी में, दो भद्रिका नगरी में, एक आलम्भिका नगरी में, एक श्रावस्ती नगरी में, एक प्रणीतभूमि नामक अनार्यदेश में चातुर्मास किया और एक अन्तिम चातुर्मास करने के लिये भगवान् मध्यमपापा के राजा हस्तिपाल की रज्जुकसभा में आए।

१२३. वहां जिस समय भगवान् मध्यमपापा के राजा हस्तिपाल की रज्जुकसभा में अन्तिम वर्षावास करने के लिये पधारे हुए थे उस समय वर्षा ऋतु का चौथा मास, सातवां पक्ष, कार्तिक कृष्ण चल रहा था तब उस कार्तिक कृष्ण अमावस्या की अन्तिम रात्रि चल रही थी। उस रात्रि को श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए अर्थात् संसार को त्यागकर चले गए। जन्म-ग्रहण की परम्परा का समूलोच्छेद कर चले गए। उनके जन्म, जरा और मरण के समस्त बन्धन नष्ट हो गए। भगवान् सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, मुक्त हुए, अन्तकृत् हुए, समस्त दुःखों का नाश कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

भगवान् महावीर जिस समय सिद्धिगति को प्राप्त हुए उस समय चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर, प्रीतिवर्द्धन नामक मास, नन्दिवर्धन नामक पक्ष, सुव्रताग्नि

He spent six rains in Mithilā, two in Bhadrikā and one each in Ālabhikā, Śrāvasti and Paṇitabhūmi, which is in the Vajja-country. His last season of rains was spent in the town of Pāpā, where he stayed in the scribes' working-hall of king Hastipāla.

123. Bhagavān Mahāvīra breathed his last at Pāpā in the scribes' hall of king Hastipāla, and passed away from this world. This happened during the fourth month of rain in the seventh fortnight of that season—the dark half of the month of *Kārtika*—on the fifteenth night of that fortnight. Bhagavān Mahāvīra had freed himself from the fetters of life, death and decay; he had attained total perfection and had become enlightened and liberated. He had dealt the last blow to all worldly passions and had become fulfilled, reaching a state beyond pain. The year when *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra breathed his last and attained liberation, was the year called *Candra* which is the second year of the five-year cycle. The month was the month called *Prītivardhana*. The fortnight was *Nandivardhana*. The day was the day named *Suvratāgni*,
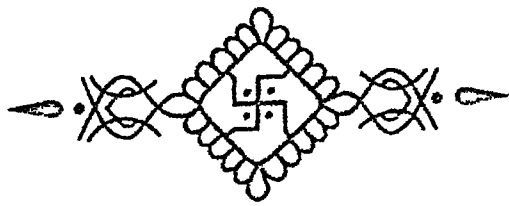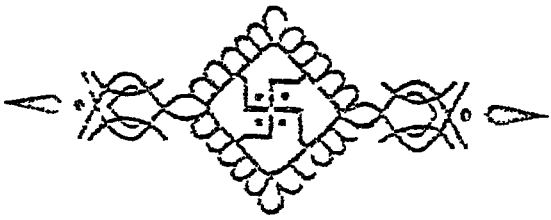
नामं से दिवसे उवसमि त्ति पवुच्चइ, देवाणंदा नामं सा रयणी निरिति त्ति पवुच्चइ, अच्चे लवे मुहुत्ते पाणू थोवे सिद्धे नागे करणे सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते सातिणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१२३॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी
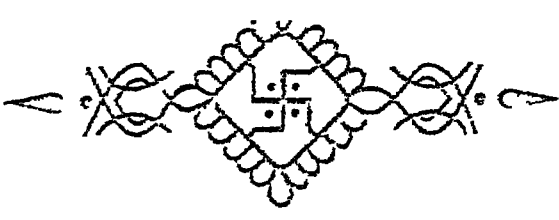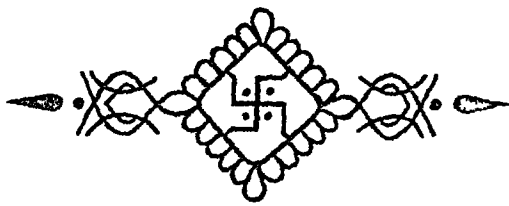
नामक दिन जिसे 'उपशम' भी कहा जाता है, देवानन्दा नाम की रात्रि जिसका दूसरा नाम 'निरति' भी है, अर्च नामक लव, मुहूर्त्त नामक प्राण, सिद्ध नामक स्तोक, नाग नामक करण, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त चल रहा था। ऐसे समय में स्वाति नक्षत्र का योग आने पर, भगवान् संसार को छोड़कर चले गए, यावत् समस्त दुःखों का नाश कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

१२४. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् उनके समस्त दुःख नष्ट हो गए। उस रात्रि में

or alternatively *Upaśamī*. The night was *Devānandā*, or alternatively *Nirṛti*. Bhagavān Mahāvīra passed away that night when the time was the *lava* named *Arcya* within the *prāṇa* named *Mukta*, the *stoka* named *Siddha*, and the *muhūrta* named *Sarvārtha-siddha*. The moon was in conjunction with the *svati* constellation.

124. On the night when Bhagavān Mahāvīra breathed his last and became liberated reaching a
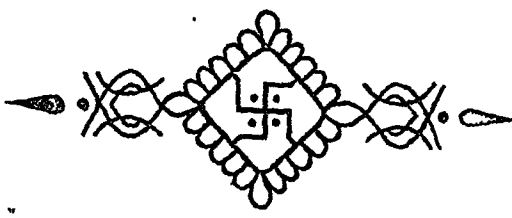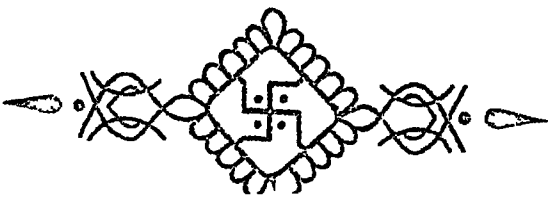
बहूहिं देवेहिंय देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उज्जोविया या वि होत्था ॥१२४॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं य देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उप्पिंजलगभूया कहकहगभूया या वि होत्था ॥१२५॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं जेट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स अंतेवासिस्स नायए पिज्जबंधणे वुच्छिन्ने, अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ॥१२६॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं नव मल्लई नव लिच्छई कासीकोसलगा अट्ठारस वि
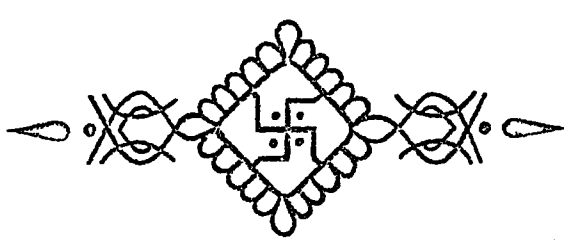
वहुत से देवों और देवियों के ऊपर-नीचे आने-जाने से वह रात्रि प्रकाशमान हो गई।

१२५. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए, उस रात्रि में बहुत से देवों के आने-जाने से हलचल मच गई और सर्वत्र कल-कल नाद व्याप्त हो गया।

१२६. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् उनके समस्त दुःख नष्ट हो गए, उस रात्रि में उनके ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति अनगार का भगवान् महावीर से जो राग-स्नेहवन्ध था उसके नष्ट हो जाने से उन्हें अन्तरहित सर्वोत्कृष्ट यावत् श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

१२७. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए, उस रात्रि में काशीदेश के मल्लवंशीय नौ गणराजा और कौशलदेश के लिच्छवीवंशीय नौ गणराजा, इस प्रकार अठारह

state beyond pain, many a gods and goddesses glided up and down the skies, shedding lustre in the dark.

125. On that night, as countless gods and goddesses glided resplendently in ascending and descending movements, there was a great bewilderment all around and a mighty tumult of wonder arose in the world.

126. And on that night, Indrabhūti, a home-less mendicant of the Jñāta clan and the chief disciple of Bhagavān Mahāvīra, was at last freed of all the bonds of attachment and attained the boundless, ultimate *kevala*-knowledge.

127. On that moonless night, eithteen democratic princely chiefs *(gaṇa-rājānaḥ)*—nine Mallakas and nine Licchavis—of Kāśi and Kauśala,
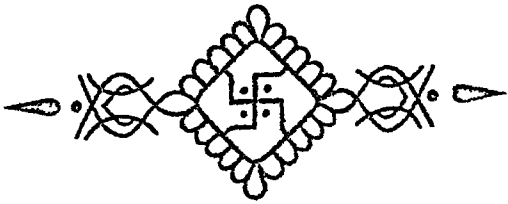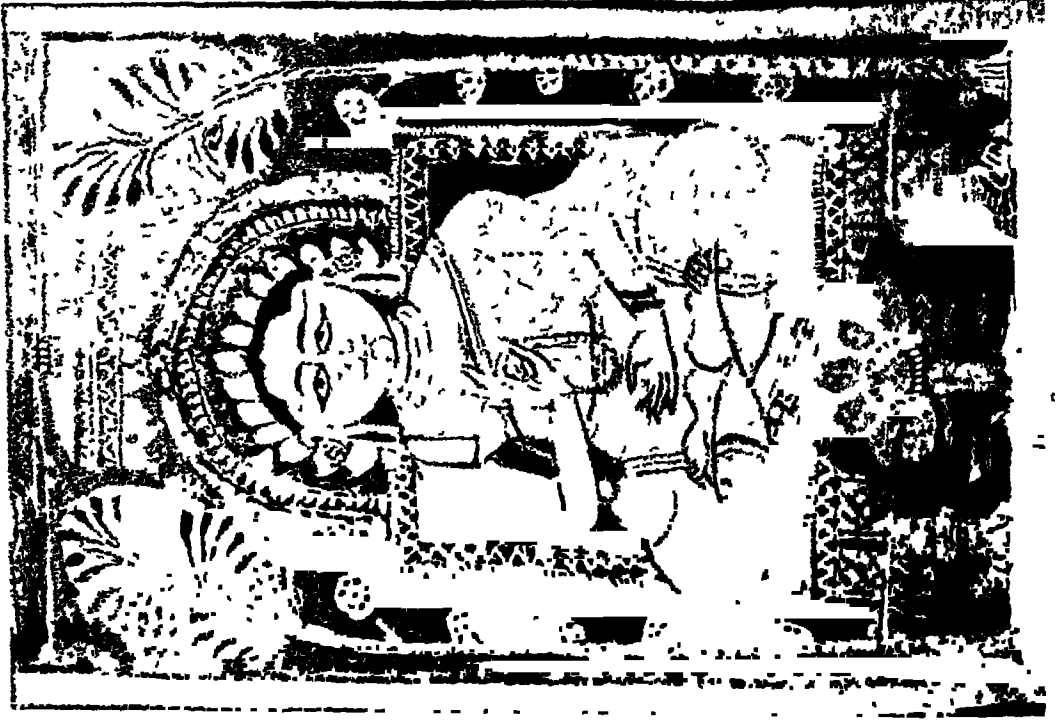
गणरायाणो अमावसाए पारा-
भोयं पोसहोववासं पट्ठवइंसु,
गए से भावुज्जोए, दव्वुज्जोयं
करिस्सामो ॥१२७॥

जं रयणिं च णं समणे जाव
सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं
च णं खुद्दाए नाम भासरासी
महग्गहे दोवाससहस्सट्ठिई
समणस्स भगवओ महावीरस्स
जम्मनक्खत्तं संकंते ॥१२८॥

जप्पभिइं च णं से खुद्दाए
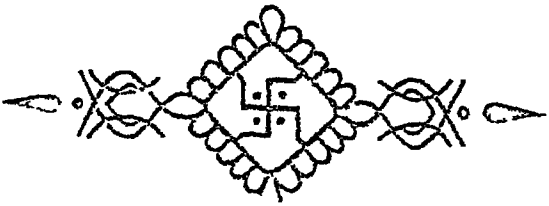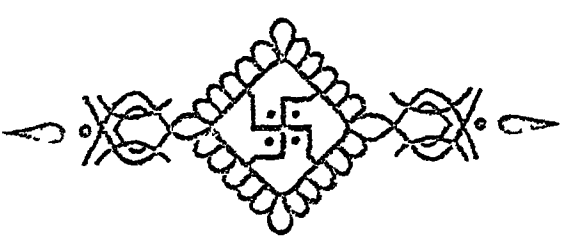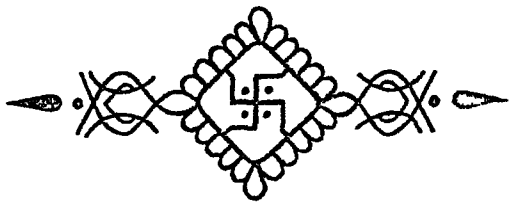
गणराजाओं ने अमावस्या के दिन आठ पहरी पौषधोपवास व्रत में रहते हुए यह विचार किया कि 'भावोद्योत अर्थात् ज्ञानरूपी प्रकाश नष्ट हो गया है, अतः अब हम द्रव्योद्योत करेंगे।'

१२८. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए यावत् समस्त दुःखों से मुक्त हुए, उस रात्रि में दो हजार वर्ष पर्यन्त रहने वाला क्षुद्रस्वभावी भस्मराशि नामक महाग्रह श्रमण भगवान् महावीर के जन्म-नक्षत्र पर आया।

१२९. जब से क्रूर स्वभाव वाला

illuminated their doors and observed the *poṣadha* fasts. They exclaimed: "The lamp of inner light is extinguished; let us now burn lamps of ordinary clay."

128. On the night when *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra breathed his last and became free from the fetters of pain and misery, a great star called Kṣudrātmā (the Lowly One), which was made up of a heap of ashes, came into conjunction with the constellation of Bhagavān Mahāvīra's birth. This conjunction will last for a duration of two thousand years.
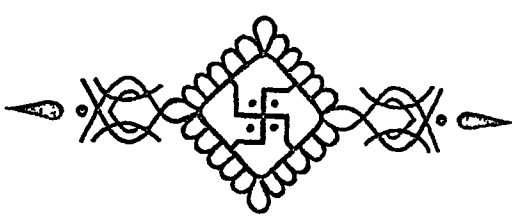
भासरासी महग्गहे दोवाससहस्सट्ठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते, तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो उदिए उदिए पूयासक्कारे पवत्तइ ॥१२९॥ जया णं से खुद्दाए जाव जम्मनक्खत्ताओ विइक्कंताओ भविस्सति, तया णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य उदिए २ पूयासक्कारे भविस्सइ ॥१३०॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, तं रयणिं च णं कुंथू अणुद्धरी नामं समुप्पन्ना, जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो चक्खुफासं हव्वमागच्छंति, जा अठिआ चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य चक्खुफासं हव्वमागच्छंति, जं पासित्ता बहूहिं निग्गंथेहिं निग्गंथीहि य भत्ताइं पच्चक्खायाइं ॥१३१॥
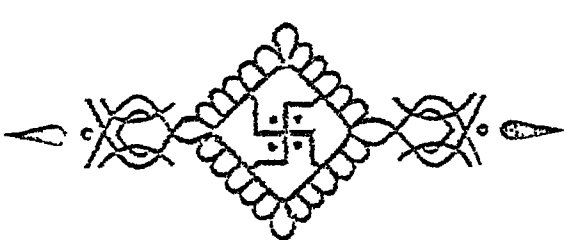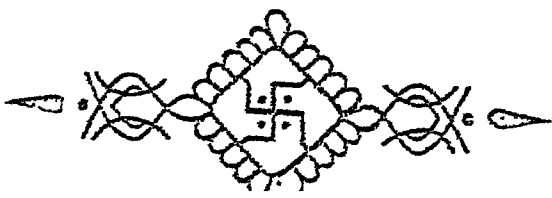
भस्मराशि नामक महाग्रह, जो दो हजार वर्ष तक एक ही राशि पर रहता है, श्रमण भगवान् महावीर की जन्मराशि पर संक्रान्त हुआ तब से श्रमण–निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों के पूजा-सत्कार में उत्तरोत्तर वृद्धि नहीं होगी।

१३०. जब वह क्षुद्र भस्मराशि ग्रह, यावत् भगवान् महावीर के जन्म-नक्षत्र पर से हट जायेगा तब श्रमण–निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों के पूजा-सत्कार में उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होती रहेगी।

१३१. जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् समस्त दुःखों से मुक्त हुए, उस रात्रि में कुन्थु नामक क्षुद्र जीवराशि उत्पन्न हो गई। जब ये कुन्थु स्थिर हों, हलन-चलन नहीं करते हों तो छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को सहसा दृष्टिगोचर नहीं होते थे, जब वे जीव अस्थिर, चलते-फिरते हों तो छद्मस्थ साधु और साध्वियों के दृष्टिपथ में आते थे। इस प्रकार की जीवराशि को देखकर बहुत से साधु और साध्वियों ने भक्त-पान का परित्याग कर दिया अर्थात् अनशन स्वीकार कर लिया।

129. Ever since the moment when the great star, Kṣudrātmā, with its heap of ashes, has cast an evil influence over the constellation of Mahāvīra's birth, less honour is increasingly given, less reverence is paid to *nirgranthas* and *śramaṇas*, whether monks or nuns.

130. The moment when the influence of Kṣudrātmā will pass away from the constellation of Mahāvīra's birth, increasingly more honour and reverence will be paid to *nirgranthas* and *śramaṇas*, both monks and nuns.

131. On the night, at the moment when *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra breathed his last and reached the state beyond all pain, a subtle worm called Anuddharī was born. Monks and nuns, whose minds are clouded by ignorance, cannot easily perceive this worm when it is stationary and unmoving. But when the worm is not at rest and makes a movement then monks and nuns can see it easily.
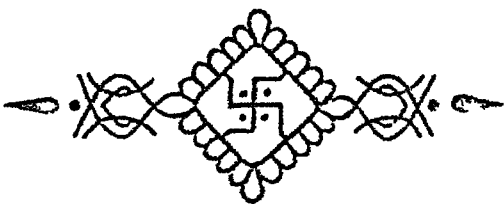
से किमाहु भंते ? अज्जप्पभिइं दुराराहए संजमे भविस्सति ॥१३२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूति-पामुक्खाओ चोद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया हुत्था ॥१३३॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंदणापामुक्खाओ छत्तीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था ॥१३४॥

समणस्स भगवओ महावीरस्स संख-सयगपामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया होत्था ॥१३५॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसा-रेवईपामोक्खाणं समणोवासियाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ अट्ठारससहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था ॥१३६॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिन्नि सया चउद्दसपुव्वीणं
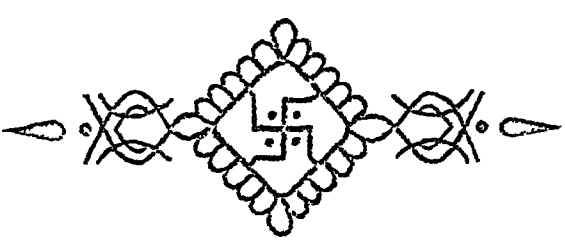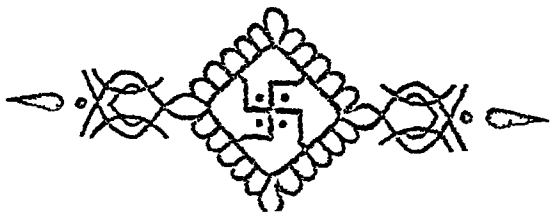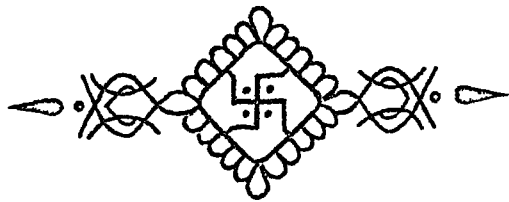
१३२. हे भगवन् ! जीवराशि को देखकर साधु-साध्वियों ने अनशन क्यों किया ? उत्तर – आज से संयम की आराधना अत्यन्त दुराराध्य होगी, ऐसा समझ कर ही उन्होंने अनशन किया है ।

Having espied this worm, numerous monks and nuns have renounced their meals.

132. And why is this being related ? Because this is the period during which self-restraint will be extremely difficult to acquire.

१३३. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी ।

133. In his time and age, *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra had an excellent congregation of monks, numbering fourteen thousand. Indrabhūti was their chief.

१३४. श्रमण भगवान् महावीर के आर्या चन्दना प्रमुख छत्तीस हजार साध्वियों की उत्कृष्ट श्रमणी सम्पदा थी ।

134. Bhagavān Mahāvīra had also an excellent congregation of nuns, thirty-six thousand strong. Āryikā Candanā was the chief nun.

१३५. श्रमण भगवान् महावीर के शंख, शतक आदि प्रमुख एक लाख उनसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक सम्पदा थी ।

135. Bhagavān Mahāvīra had an excellent congregation of lay followers, numbering fifty-nine thousand men. Śaṅkha and Śataka were the chief of these.

१३६. श्रमण भगवान् महावीर के सुलसा, रेवती प्रमुख तीन लाख अठारह हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका सम्पदा थी ।

136. Bhagavān Mahāvīra also had an excellent community of lay women-followers, numbering three-hundred and eighteen thousand women. Sulasā and Revatī were their chief.

१३७. श्रमण भगवान् महावीर के चौदह पूर्वधर,
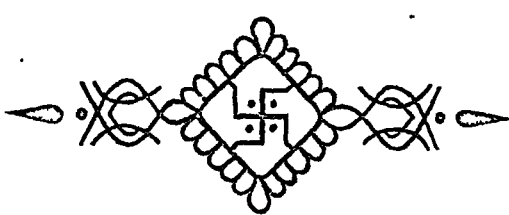
अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिणो विव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था ॥१३७॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेरस सया ओहिनाणीणं अइसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणीणं संपया हुत्था ॥१३८॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया केवलनाणीणं संभिण्णवरनाणदंसणधराणं उक्कोसिया केवलवरनाणिसंपया होत्था ॥१३९॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त सया वेउव्वीणं अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्विसंपया होत्था ॥१४०॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पंच सया विउलमईणं अड्ढा-इज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं [जीवाणं] मणोगए भावे जाणंताणं उक्कोसिया विउलमतिसंपया
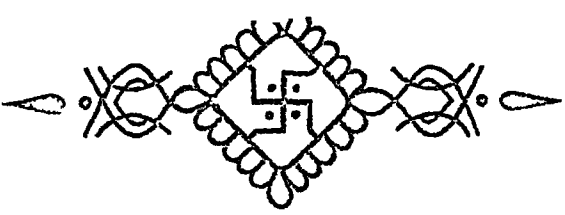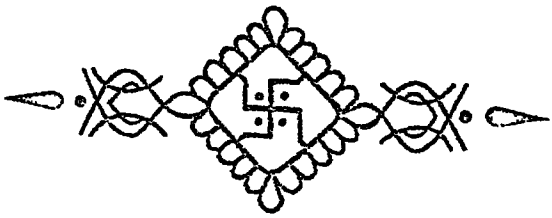
जो जिन नहीं होते हुए भी जिन के तुल्य, सर्वाक्षर-सन्निपाती, जिनरूप सत्य स्पष्ट करने वाले तीन सौ चौदह उत्कृष्ट पूर्वधारियों की सम्पदा थी।

137. Bhagavān Mahāvīra had a group of three hundred excellent disciples who knew all the fourteen sacred *Pūrva*-treatises. These disciples, though not Tīrthaṅkaras, were almost like Tīrthaṅkaras. They knew every syllable of the canon and could expound their true import unerringly, like the Tīrthaṅkaras themselves.

१३८. श्रमण भगवान् महावीर के अवधिज्ञान और विशिष्ट अतिशय धारक तेरह सौ अवधिज्ञानियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

138. Bhagavān Mahāvīra had an excellent group of thirteen hundred followers who had attained the highest summits of the supreme *avadhi*-knowledge.

१३९. श्रमण भगवान् महावीर के केवलज्ञानधारक और सम्पूर्ण श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन को प्राप्त किये हुए सात सौ केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

139. Bhagavān Mahāvīra also had a group of seven hundred excellent disciples who had wholly attained the ultimate and highest *kevala*-knowledge.

१४०. श्रमण भगवान् महावीर के वैक्रियलब्धिधारक, देव नहीं होते हुए भी देवों की समृद्धि को प्राप्त ऐसे सात सौ वैक्रियलब्धि वाले श्रमणों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

140. Bhagavān Mahāvīra had a group of seven hundred disciples who possessed the power of occult transformation. They were god-like, though not gods.

१४१. श्रमण भगवान् महावीर के अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र में रहने वाले, पर्याप्तक (छहों पर्याप्तियों से सम्पन्न) संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानने वाले, विपुल मतिज्ञान के धारक पांच सौ मनपर्यवज्ञानधारकों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

141. Bhagavān Mahāvīra had an assembly of five hundred exceedingly wise persons. They knew the inner thoughts of all conscious, developed beings who possessed five sense organs, beings who dwelled in the two oceans and two-and-a-half continents.
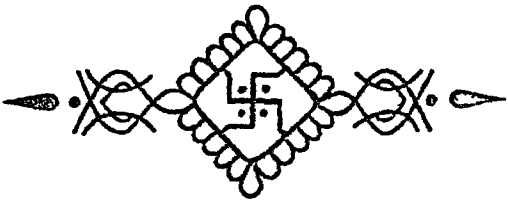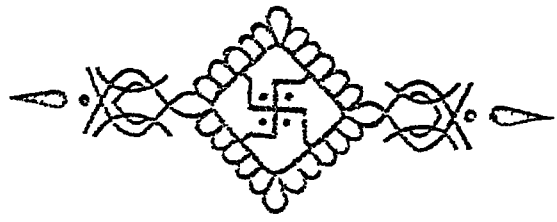
हुत्था ॥१४१॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वादे अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ॥१४२॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त अंतेवासिसयाइं सिद्धाइं [जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं,] चउद्दस अज्जियासयाइं सिद्धाइं ॥१४३॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाणं गतिकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ॥१४४॥

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स दुविहा अंतगडभूमी हुत्था, तंजहा—जुगंतकडभूमी य, परियायंतकडभूमी य । जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी, चउवासपरियाए अंतमकासी ॥१४५॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं
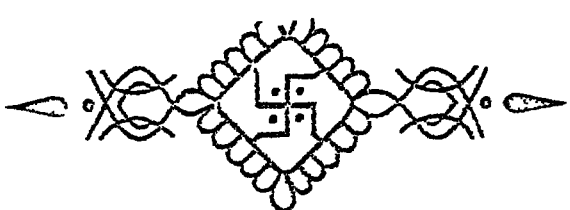
१४२. श्रमण भगवान् महावीर के, देव, मनुज और असुरों की परिषद् में वाद-शास्त्रार्थ करते हुए अपराजित रहें, ऐसे चार सौ वादियों की उत्कृष्ट वादी सम्पदा थी।

१४३. श्रमण भगवान् महावीर के सात सौ अन्तेवासी शिष्य सिद्ध हुए, उनके समस्त दु:ख नष्ट हो गये तथा चौदह सौ साध्वियां सिद्ध हुई, निर्वाण को प्राप्त हुई।

१४४. श्रमण भगवान् महावीर के, गति में कल्याण प्राप्त करने वाले, वर्तमान स्थिति में कल्याण अनुभव करने वाले और भविष्य में भद्र-मंगल, कल्याण प्राप्त करने वाले आठ सौ अनुत्तरोपपातिक श्रमणों की उत्कृष्ट सम्पदा थी, अर्थात् ऐसे आठ सौ शिष्य अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए जो कि एकावतारी होंगे।

१४५. श्रमण भगवान् महावीर के समय में मोक्ष जाने वाले श्रमणों की दो प्रकार की भूमि थी – युगान्तकृत् भूमि और पर्यायान्तकृत् भूमि। भगवान् से तीसरे पुरुष तक मोक्ष गये अर्थात् भगवान् स्वयं, पट्टधर सुधर्म और प्रपट्टधर (प्रशिष्य) जम्बू तक मोक्ष गए, यह युगान्तकृत् भूमि जम्बू तक चली और पश्चात् मोक्षगमन-परम्परा बंद हो गई। भगवान् को कैवल्य-लाभ होने के चार वर्ष पश्चात् मुक्तिगमन प्रारम्भ हुआ, यह पर्यायान्तकृत् भूमि हुई।

१४६. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष तक

142. Bhagavān Mahāvīra had a gathering of four hundred logicians who could never be vanquished in disputes, whether in the assembly of gods or men or demons.

143. Bhagavān Mahāvīra had a group of seven hundred intimate disciples who had achieved perfection and had reached a state beyond pain and had attained final liberation. He had a similar group of fourteen hundred nuns.

144. Bhagavān Mahāvīra had an assembly of eight hundred sages who were in their final birth. Their persons were all-auspicious, whether at rest or in movement. Their future was blessed.

145. Bhagavān Mahāvīra had instituted a two-fold time phase for achieving the final end : an epoch-unit *(yugāntakṛtabhūmi)* and a serial-unit *(paryāyāntakṛtabhūmi)*. The epoch-unit lasted for three generations after him and the serial-unit began four years after he attained *kevala*-knowledge.

146. In those days, in those times, *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra spent the first thirty years of his life as a house-holder.
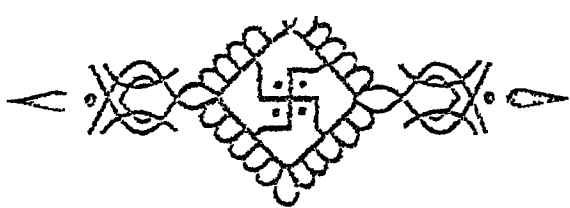
अगारवासमज्झे वसित्ता, साइरेगाइं दुवालस वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, देसूणाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसम-सुसमाए [समाए] बहुविइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रण्णो रज्जूसभाए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि संपलियंकनिसण्णे पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाण-फलविवागाइं पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठ-वागरणाइं वागरित्ता पहाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे २ कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे
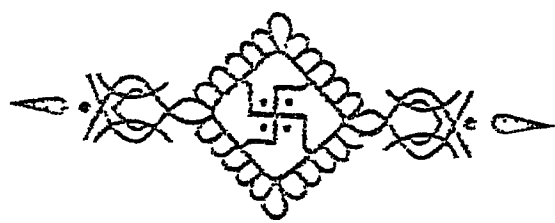
गृहवास में रहकर, बारह वर्ष से भी अधिक समय तक छद्मस्थ पर्याय में रहकर, कुछ कम तीस वर्ष तक केवली पर्याय का पालन कर, बयालीस वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर, कुल बहोत्तर वर्ष की आयु पूर्ण कर, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मों के क्षीण होने पर, इसी अवसर्पिणी के दुषम-सुषम नामक चौथे आरे के बहुत कुछ व्यतीत होने पर तथा उस दुषम-सुषम आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष रहने पर, मध्यमपापा नामक नगरी में हस्तिपाल राजा की रज्जुक सभा में, एकाकी, निर्जल छट्ठ भक्त के साथ स्वाति नक्षत्र का योग आने पर, प्रत्यूषकाल के समय (चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर), पद्मासन में बैठे हुए भगवान् पचपन अध्ययन कल्याणफल विपाक के, पचपन अध्ययन पापफल विपाक के, छत्तीस अध्ययन अपृष्ठ व्याकरण के (प्रश्न न किये जाने पर भी समाधान उत्तर रूप) कहकर और प्रधान नामक अध्ययन का प्रतिपादन करते-करते कालधर्म को प्राप्त हुए। जन्म ग्रहण की परम्परा का उच्छेद कर चले गये। उनके जन्म, जरा और मरण के बन्धन विच्छिन्न हो गये। वे सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, मुक्त हुए, अन्तकृत् हुए,

Then he lived in relative ignorance for a phase of over twelve years. Finally, he dwelt in the supreme state of *kevala*-knowledge for a little less than thirty years. He thus dwelt as a *śramaṇa* for a period of forty-two years and lived a life of seventy-two years in all. He had undone all worldly bonds : the bond of name, of one's allotted life-span, *gotra* and consciousness. Annihilating the bonds of birth, decay and death, he passed away from this world into the state beyond *karma* and reached the ultimate state of perfection, enlightenment and liberation : a state beyond all pain. In his last days, he was living alone in king Hastipāla's scribes-hall at Madhyamā-pāpā, taking only one meal, without water, out of six regular meals. He breathed his last early at dawn while sitting in the yogic posture called *saṁparyaṅka*. The moon was, at the time, in conjunction with the *svāti* constellation. Bhagavān Mahāvīra had ended his exposition of the fifty-five chapters concerning the fruits of good action and the fifty-five chapters concerning the fruits of sin, as well as the thirty-six chapters dealing with unasked questions and was meditating on the chapter called *pradhāna* (the most important of all).

At that moment, a major portion of the *duḥṣama-*
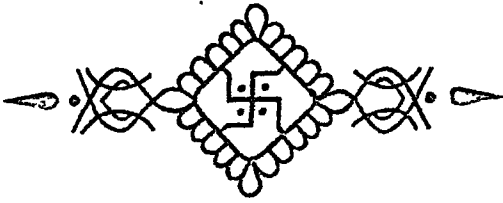
परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१४६॥

समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छति, वायणंतरे पुण अयं तेणउए संवच्छरे काले गच्छति इति दीसइ ॥१४७॥ ॥ छ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए पंचविसाहे हुत्था, तंजहा—विसाहाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते १, विसाहाहिं जाए २, विसाहाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ३, विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ४, विसाहाहिं परिनिव्वुए ५ ॥१४८॥
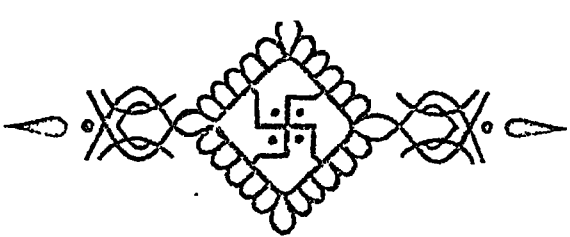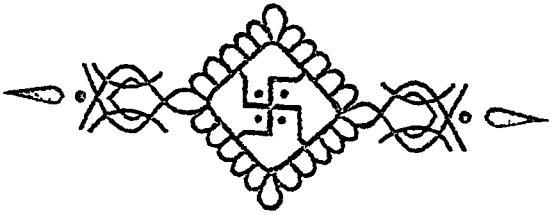
परिनिर्वाण को प्राप्त हुए और समस्त दुःखों से रहित हुए।

१४७. जिनके समस्त दुःख नष्ट हो गये हैं ऐसे श्रमण भगवान् महावीर को निर्वाण प्राप्त हुए नौ सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। हजारवें वर्ष का अस्सीवां वर्ष चल रहा है। अर्थात् भगवान् महावीर के निर्वाण से नौ सौ अस्सीवाँ वर्ष चल रहा है। दूसरी वाचना के अनुसार नौ सौ तेरानवें वर्ष का समय चल रहा है, ऐसा पाठ दृष्टिगोचर होता है।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वनाथ

१४८. उस काल और उस समय में पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वनाथ के पांच (कल्याणक) विशाखा नक्षत्र में इस प्रकार हुए – १. पार्श्व अर्हत् विशाखा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये, २. विशाखा नक्षत्र में उनका जन्म हुआ, ३. विशाखा नक्षत्र में उन्होंने मुण्डित होकर, गृहवास का त्यागकर अनगारत्व स्वीकार किया, ४. विशाखा नक्षत्र में इन्हें अन्तररहित, सर्वोत्कृष्ट निर्व्याघात, आवरण रहित, सम्पूर्ण और परिपूर्ण अनुत्तर केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ और ५. विशाखा नक्षत्र में ही वे निर्वाण को प्राप्त हुए।

susama phase of this present *avasarpiṇī* was already spent; only three years eight-and-a-half months of the phase remained.

147. Nine full centuries have now passed since Bhagavān Mahāvīra attained liberation and passed away into a state beyond all pain. Of the tenth century, the current year is the eightieth. According to another reading, however, the current year is the ninety-third.

The Life of Pārśva

148. At that time, in that epoch, five important events in the life of Arhat Pārśva, the Chosen One, all occurred when the moon was in conjunction with the constellation *viśākhā*. During such a conjunction, he descended and was conceived unto a womb. Then during a similar conjunction he was born. Again, during a like conjunction, he pulled out his hair and became a homeless mendicant. It was during another such conjunction that he attained that supreme knowledge (*kevala-jñāna*) which is ultimate, infinite, unobstructed, unclouded, total and all-embracing. Finally, during this very conjunction, he attained *parinirvāṇa*.
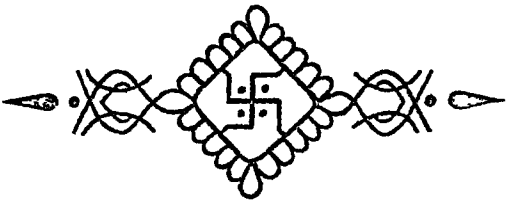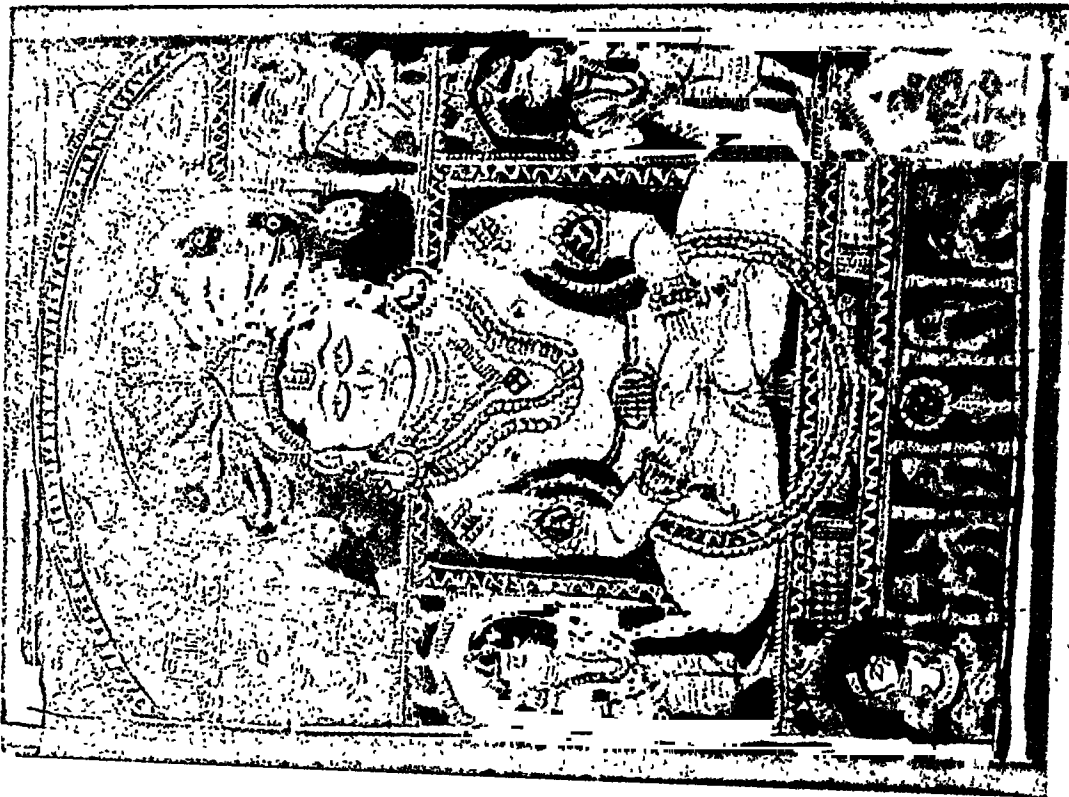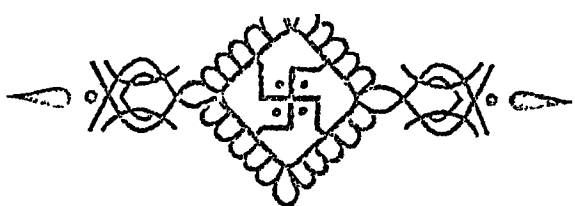
तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले, तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं पाणयाओ कप्पाओ वीसं साग-रोवमट्ठिइयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वाणारसीए नयरीए आससेणस्स रण्णो वम्माए देवीए पुव्वरत्तावरत्त-
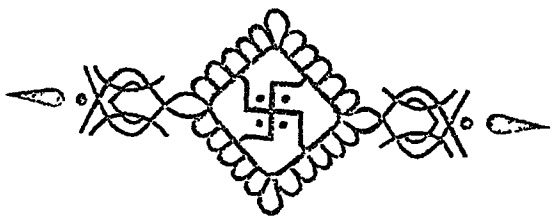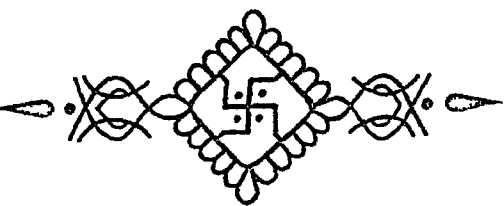
१४६. उस काल और उस समय में पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष चैत्र कृष्ण चल रहा था, तब उस चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन प्राणत नामक कल्प (देवलोक) से बीस सागरोपम की आयु पूर्ण होने पर च्युत हुए और च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्षस्थ वाराणसी नामक नगरी में अश्वसेन नामक राजा की रानी वामादेवी की कुक्षि में मध्यरात्रि
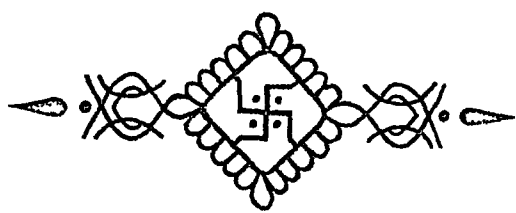
149. At that time, in that epoch, it was the fourth day of the first fortnight of the first summer month, the month of *Caitra*, when Arhat Pārśva, the Chosen One, descended from the celestial sphere *(kalpaloka)* called *Prāṇaka*, after having lived there for a period of twenty *sāgaras*. He descended to the land of Bhārata in the *continent of Jambūdvīpa* and was conceived unto the womb of Vāmādevī, the wife of king Aśvasena, ruling at the city of Vārāṇasī. Pārśva, then, entered a new existence with a new body and a new repast.

कालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए (ग्रं. ७००) भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥१४९॥

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तिन्नाणोवगए यावि होत्था—चइस्सामि त्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, चुएमि त्ति जाणइ। तेणं चेव अभिलावेणं सुविणदंसणविहाणेणं सव्वं जाव नियगं गिहं अणुप्पविट्ठा, जाव सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ ॥१५०॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले तस्स णं पोसबहुलस्स दसमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं
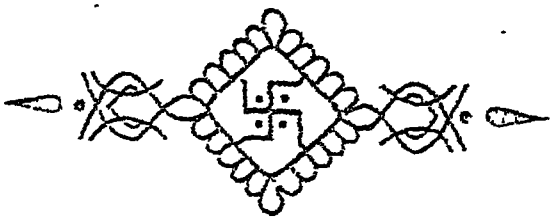
के समय विशाखा नक्षत्र का योग आने पर, (मानव-सम्बन्धी) आहार, भव और शरीर प्राप्त होने पर गर्भरूप में उत्पन्न हुए।

१५०. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधि) से युक्त थे। 'यहां से च्युत होऊंगा' ऐसा वे जानते थे। 'च्युत हो रहा हूं' ऐसा वे नहीं जानते थे। 'च्युत हो गया हूं' ऐसा वे जानते थे। यहां से लेकर महावीर-चरित्र में कथित स्वप्नदर्शन-विधान सम्बन्धित समस्त वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् माता अपने गृह में प्रवेश करती है और यावत् माता सुखपूर्वक उस गर्भ को धारण करती है।

१५१. उस काल और उस समय पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व को जब हेमन्त ऋतु का दूसरा मास, तीसरा पक्ष, पौष कृष्ण चल रहा था तब उस पौष कृष्ण दशमी के दिन, नौ माह परिपूर्ण होने पर और साढ़े सात अहोरात्र व्यतीत होने पर, मध्यरात्रि के समय विशाखा नक्षत्र का योग आने पर

This occurred at midnight when the previous night was just giving way to the new and the moon was in conjunction with the constellation *viśākhā*.

150. Arhat Pārśva, the Chosen One, had, at that time, a three-fold awareness : he was aware that he will descend; he was not aware of the descent itself but he was aware that he had descended.
At this place let one repeat, with suitable substitutions, all the words with which Triśalā's conception of Bhagavān Mahāvīra was described earlier : descriptions which included the dream-vision of the mother, the pronouncement of the dream oracle and the mother's joyous pregnancy (up to *sūtra* 92).

151. In those times, in that epoch, after spending a period of nine month seven-and-a-half days in the womb, Arhat Pārśva, the Chosen One, was born during the second month of winter. The day was the tenth day of the third fortnight of that season. He was born at midinght, at the moment when the previous night was just giving way to the new. The moon was in conjunction with the constellation *viśākhā*. Both mother and child were in excellent health.
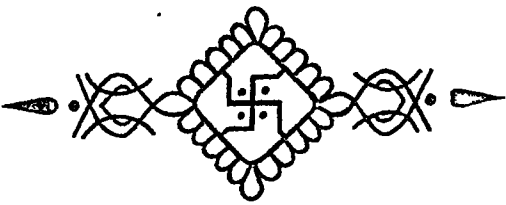
आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया। जं रयणिं च णं पासे अरहा पुरिसादाणीए जाए, सेसं तहेव, नवरं पासाभिलावेणं भाणियव्वं, जाव तं होउ णं कुमारे पासे नामेणं ॥१५१॥

पासे णं अरहा पुरिसादाणीए दक्खे दक्खपतिन्ने पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए, तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता, पुणरवि लोगंतिएहिं
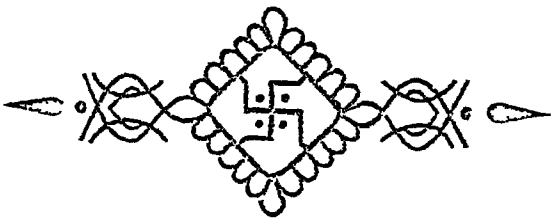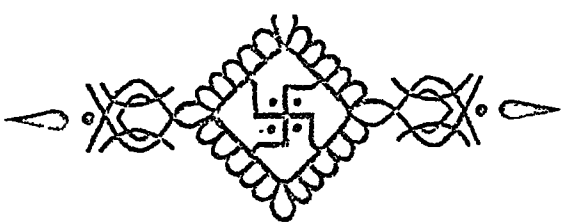
आरोग्यवती माता ने सुखपूर्वक पुत्र रूप में जन्म दिया। जिस रात्रि में पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व का जन्म हुआ, यहां से लेकर नाम स्थापना पर्यन्त समग्र वृत्तान्त पूर्व में वर्णित महावीर-चरित्र के समान यहां भी समझना चाहिए। विशेष बात यह है कि महावीर के स्थान पर पार्श्व का नाम लेना चाहिए। यावत् माता-पिता ने कुमार का नाम पार्श्व हो ऐसा कहकर पार्श्व नाम रखा।

१५२. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वनाथ दक्ष थे, दक्ष-प्रतिज्ञ थे, असाधारण रूपवान थे, स्वात्मलीन थे, सरल स्वभावी थे, विनीत थे। वे तीस वर्ष तक गृहवास में रहे। उसके पश्चात् परम्परानुसार लोकान्तिक

Later events occurred just in the manner as described in the life of Bhagavān Mahāvīra. Then came the occasion of giving the child a name. He was named Kumāra Pārśva.

152. Arhat Pārśva, the Chosen One, was an accomplished man, a man mindful of fulfilling his vows. He was handsome, self-restrained, well-mannered and modest. He lived as a house-holder for thirty years and then became a homeless mendicant. At this time, the *lokāntika* gods,
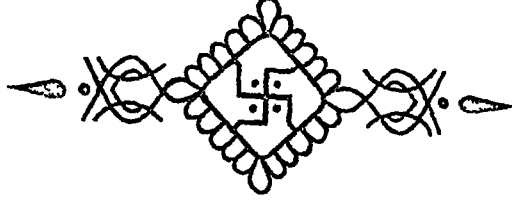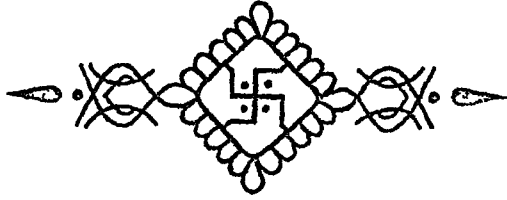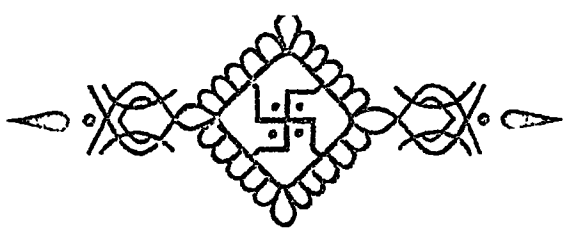
जियकप्पिएहिं [देवेहिं] ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी—जय जय नंदा! जय जय भद्दा ! भद्दं ते जाव जय जय सद्दं पउंजंति ॥१५२॥

पुव्विं पि णं पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए, तं चेव सव्वं जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता, जे से हेमंताणं दोच्चे मासे तच्चे पक्खे पोसबहुले तस्स णं पोसबहुलस्स एक्कारसीदिवसेणं पुव्वण्हकालसमयंसि विसालाए सिबियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए, तं चेव सव्वं, नवरं वाणारसिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवर-पायवस्स अहे सीयं ठावेइ, सीयं ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयति, आभरणमल्लालं-

जीतकल्पी देवों ने आकर उनसे इष्ट यावत् हृदयाह्लादक गम्भीर वाणी से इस प्रकार कहा – "हे नन्द ! जय जय हो। हे भद्र ! जय जय हो। तुम्हारा कल्याण हो, यावत् धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो।" इस प्रकार जय जय घोष करते हैं।
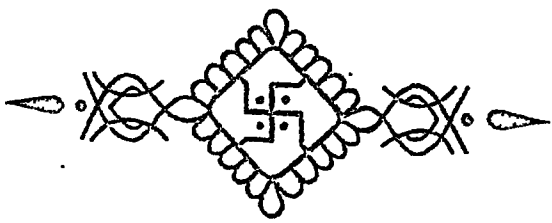
following their established custom, hailed him with sweet words, exclaiming : "Victory to the joyous one, victory to the gentle one; may it ever fare well with you.........Victory, Victory. This, too, occurred as with Bhagavān Mahāvīra.

१५३. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व मनुष्य सम्बन्धी गृहस्थ-धर्म में प्रवेश करने से पूर्व भी सर्वोत्कृष्ट प्रत्यक्ष-ज्ञान के धारक थे। आगे का समग्र वर्णन पूर्ववर्णित महावीरचरित्र के समान ही समझना चाहिए। यावत् अभिनिष्क्रमण के समय याचकों को दान देकर, जब हेमन्त ऋतु का दूसरा महीना, तीसरा पक्ष, पौष कृष्ण चल रहा था तब उस पौष कृष्ण एकादशी के दिन पूर्वाह्न समय में, विशाला नामक शिविका में बैठकर, देव, मनुज और असुरों के समूह के साथ, आगे का समस्त वर्णन महावीर वर्णन के समान समझना चाहिए। विशेष बात यह है कि वाराणसी नगरी के बीचों-बीच होकर निकलते हैं। निकल कर जहां आश्रमपद नामक उद्यान है, जहां श्रेष्ठ अशोक का वृक्ष है, वहां आते हैं। वहां आकर उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे शिविका रखी जाती है। शिविका रखने पर भगवान् पार्श्व स्वयमेव आभरण, माला, अलंकार आदि उतारते हैं। आभरणादि

153. Arhat Pārśva, the Chosen One, was endowed with the gift of a supreme, unerring, omniscient, intuitive vision, even before he became a householder. He renounced all his possessions and gave them away as gifts. Then in the second month of winter, the month of *Pauṣa*, during the third fortnight of that season, a dark fortnight, on the eleventh day of that fortnight, Arhat Pārśva left his home in a litter which was called *Viśālā*. Surrounded by men, gods and demons, he journeyed through the town of Vārāṇasī, and arriving at the park called Āśramapada, he came to a great *aśoka* tree where his litter was put down. He stepped down his litter, shed all his finery, his garlands and his ornaments.
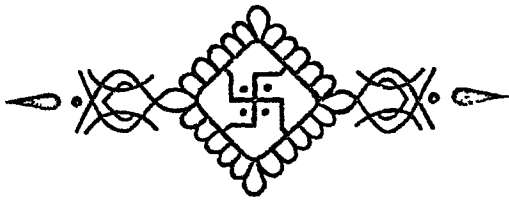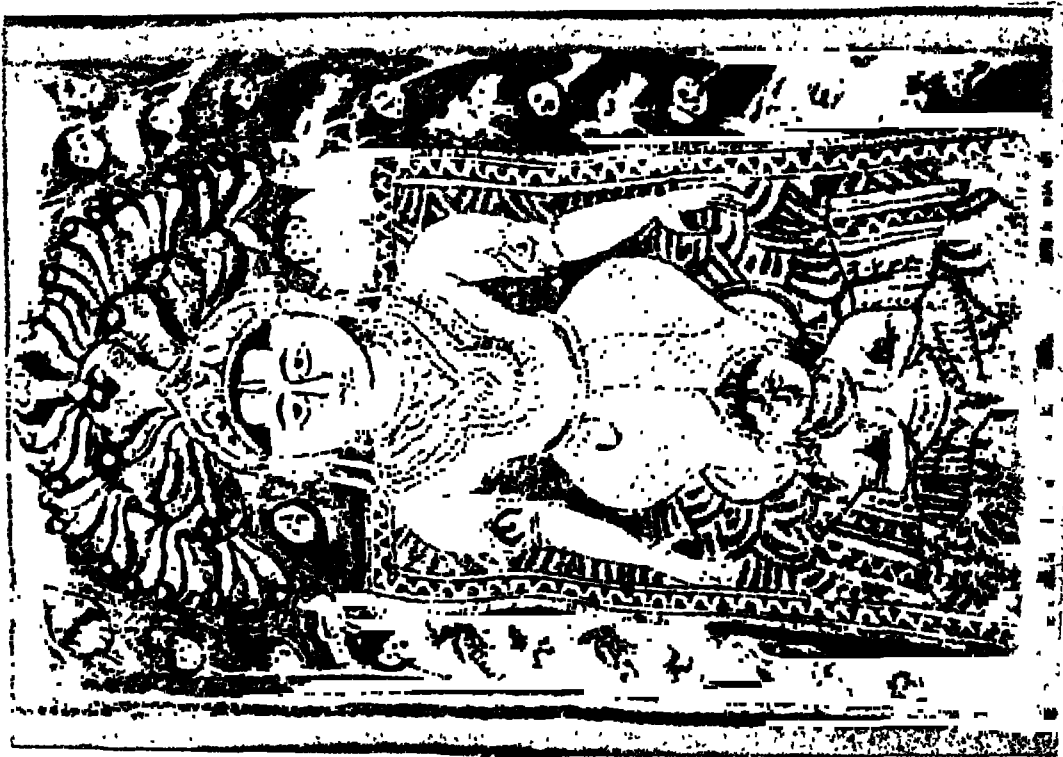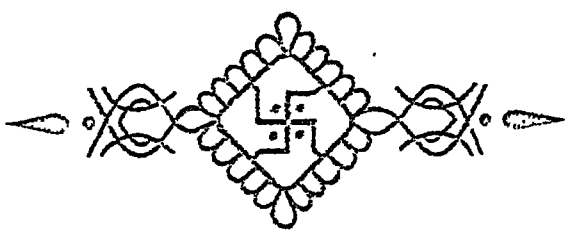
कारं ओमुइत्ता सयमेव पंच-
मुट्ठियं लोयं करेइ, लोयं
करित्ता अट्ठमेणं भत्तेणं अपा-
णएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं
जोगमुवागएणं एगं देवदूस-
मादाय तिहिं पुरिससएहिं
सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ
अणगारियं पव्वइए ॥१५३॥

पासे णं अरहा पुरिसादा-
णीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं
वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ
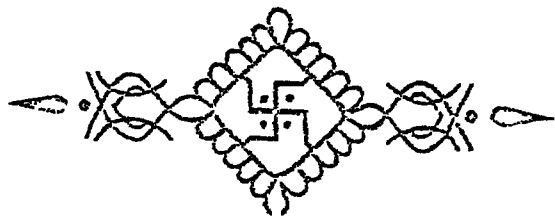
उतारकर, पार्श्व स्वयमेव पंचमुष्टि लुंचन करते हैं। पंचमुष्टि लोच कर, पानी-रहित अष्टम भक्त (तेला) किये हुए, विशाखा नक्षत्र का योग आने पर, एक देवदूष्य वस्त्र को ग्रहण कर, तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर अनगारत्व स्वीकार करते हैं।

With his own hands he plucked out his hair in five handfuls. He undertook a vow to partake of only one meal, without water, out of eight regular meals. Then, when the moon was in conjunction with the constellation *viśākhā*, he became a homeless mendicant, wandering in the company of three hundred other mendicants, with a lone piece of holy cloth on his person.

१५४. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तयांसी दिनों तक शरीर की ओर से सर्वदा उदासीन रहे। शरीर का त्याग कर दिया हो इस प्रकार शरीर की ओर से सर्वदा अनासक्त रहे। छद्मस्थ काल में जो भी

154. Arhat Pārśva dwelt for eighty-three days with a stead-fast attitude of 'giving up the body' *(utsṛṣṭa-kāya)* and 'renouncing the body' *(tyakta-deha)*.
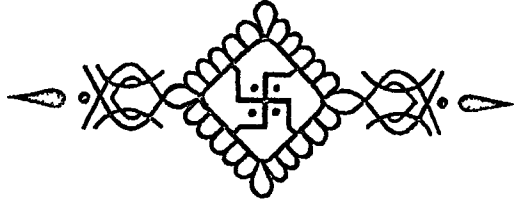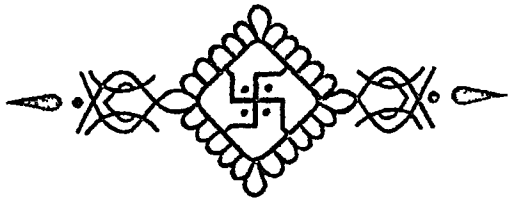
उवसग्गा उप्पज्जंति, तंजहा—दिव्वा वा माणुस्सा वा तिरिक्खजोणिया वा, अणुलोमा वा पडिलोमा वा, ते उप्पन्ने सम्मं सहइ तितिक्खइ खमइ अहियासेइ ॥१५४॥

तए णं से पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए जाव अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं विइक्कंताइं, चउरासीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि धायतिपायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने, जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१५५॥

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा
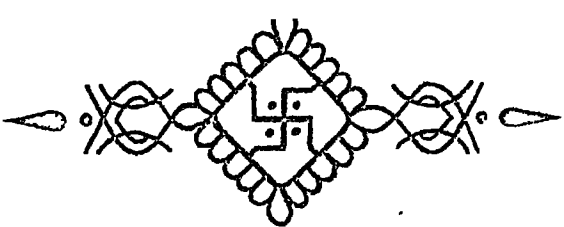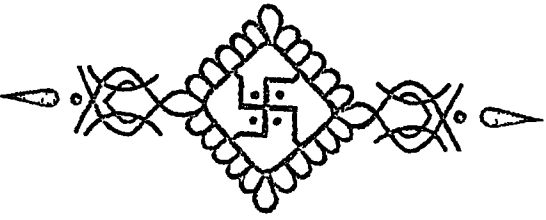
उपसर्ग उत्पन्न होते, यथा – देवजन्य, मनुष्यकृत और तिर्यच जाति कृत, अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्ग आदि। ऐसे उपसर्गों के उत्पन्न होने पर उनको वे निर्भय होकर सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं, सहन करने में समर्थ होते हैं, धैर्य रखते हैं और अपना सन्तुलन बनाये रखते हैं।

१५५. जब से भगवान् पार्श्व अनगार हुए तब से ईर्यासमिति यावत् सर्वोत्कृष्ट सत्य, संयम, तपादि गुणों से आत्मा को भावित करते हुए उनके तयांसी अहोरात्र व्यतीत हो चुके थे और चौरासीवां अहोरात्र चल रहा था। जब ग्रीष्म ऋतु का पहला महीना, पहला पक्ष चैत्र कृष्ण चल रहा था तब उस चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन पूर्वाह्न के समय में, धातृवृक्ष के नीचे, निर्जल छट्ठभक्त किये हुए, ध्यान मग्न भगवान् पार्श्व को विशाखा नक्षत्र का योग आने पर अनन्त, सर्वोत्कृष्ट, व्याघात रहित, आवरण रहित, यावत् श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। यावत् भगवान् पार्श्व जानते हुए, देखते हुए विचरते हैं।

१५६. पुरुपादानीय अर्हत् पार्श्व के आठ गण और आठ गणधर थे।

He endured with forbearance all adversities that came his way from gods, men or beasts, adversities both natural and supernatural. He endured them all with compassion, stoic detachment and equanimity, as and when they arose.

155. And Arhat Pārśva then became truly abodeless. Like Bhagavān Mahāvīra, he was self-restrained in every way. He spent eighty-three days and nights meditating on his innermost self. Then, on the eighty-fourth day, he attained the ultimate knowledge and vision called *kevala* : the knowledge which is final, unimpeded, unveiled, total and all-embracing. The day on which this occurred was the fourth day of the dark fortnight of the month of *Caitra*, this being the first fortnight of the summer season. The time was forenoon. The moon was in conjunction with the constellation *viśākhā*. Arhat Pārśva was, at that time, meditating under a *dhātṛ* tree. He was eating only one meal, without water, out of six regular meals.

156. Arhat Pārśva, the Chosen One, had eight *gaṇas* and eight *gaṇadharas*.
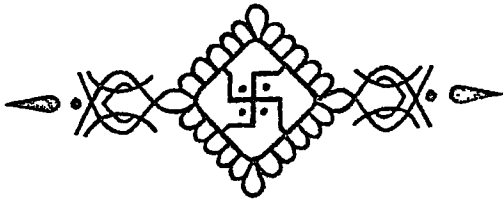
हुत्था, तंजहा— सुंभे य अज्जघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य ।
सोमे सिरिहरे चेव, वीरभद्दे जसे वि य ॥१५६॥

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्णपामोक्खाओ सोलस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था । पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूलापामोक्खाओ अट्ठत्तीसं अज्जिया-साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था । पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुव्वयपामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसा-हस्सीओ चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था । पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदापामोक्खाणं समणोवासियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवा-सियाणं संपया होत्था । पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठसया
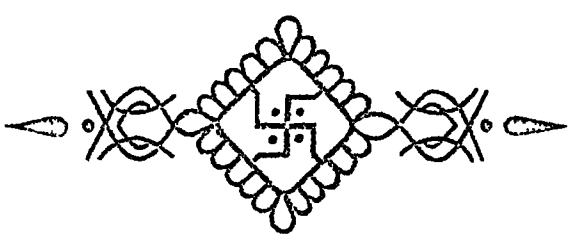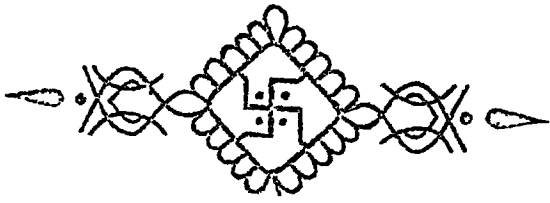
वे इस प्रकार हैं :– १. शुम्भ, २. आर्यघोष, ३. वसिष्ठ, ४. ब्रह्मचारी, ५. सोम, ६. श्रीधर, ७. वीरभद्र और ८. यश।

१५७. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के आर्यदिन्न प्रमुख सोलह हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के आर्या पुष्पचूला प्रमुख अड़तीस हजार साध्वियों की उत्कृष्ट श्रमणी सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के सुव्रत प्रमुख एक लाख चौसठ हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के सुनन्दा प्रमुख तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका सम्पदा थी।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के साढ़े तीन सौ

They were as follows: Śumbha, Āryaghoṣa, Vasiṣṭha, Brahmacārī, Soma, Śrīdhara, Vīrabhadra and Yaśa.

157. Arhat Pārśva had an excellent congregation of sixteen thousand monks. Āryadinna was their chief. He had a remarkable congregation of thirty-eight thousand nuns. Puṣpacūlā was their chief. He had an excellent congregation of lay followers numbering one hundred and sixty-four thousand men. Suvrata was their chief. He also had an excellent community of lay-women, three hundred and twenty seven thousand strong. Sunandā was their chief. He had a group of three-hundred and fifty followers who knew all the sacred *Pūrva*-treatises. These followers, though not Tīrthaṅkaras, were almost like Tīrthaṅkaras. They knew every syllable of the canon and could expound their true import unerringly, like the Tīrthaṅkaras.
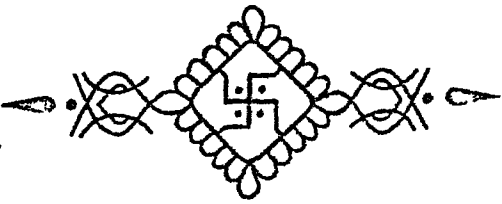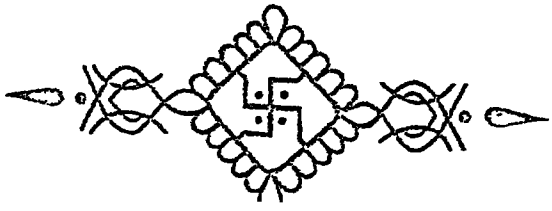
चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर जाव चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था। पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चोद्दससया ओहिनाणीणं, दस सया केवलनाणीणं, एक्कारस सया वेउव्वीणं, [छस्सया रिउमईणं,] अद्धट्ठमसया विउलमतीणं, छस्सया वाईणं, दस अंतेवासिसया सिद्धा, वीसं च अज्जियासया सिद्धा, बारस सया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ॥१५७॥

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अंतगडभूमी होत्था, तंजहा—जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य। जाव चउत्थाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी, तिवासपरियाए अंतमकासी ॥१५८॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता, तेसीइं राइंदियाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता,
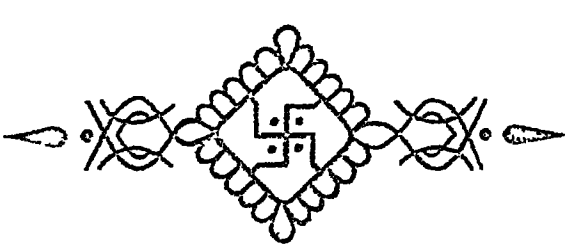
चौदह पूर्वधरों की सम्पदा थी जो जिन नहीं होते हुए भी जिन के तुल्य, सर्वाक्षर सन्निपाती यावत् चौदह पूर्वधर थे।

पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के चौदह सौ अवधिज्ञानी, एक हजार केवलज्ञानी, ग्यारह सौ वैक्रियलब्धिधारी, [छह सौ ऋजुमति,] साढ़े सात सौ विपुलमति और छह सौ वादियों की सम्पदा थी।

भगवान् पार्श्व के एक हजार श्रमण सिद्ध हुए, दो हजार साध्वियां सिद्ध हुई और वारह सौ साधु अनुत्तरोपपातिक विमान में उत्पन्न हुए।

१५८. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के समय में अन्तकृत् भूमि दो प्रकार की थी, यथा – युगान्तकृत् भूमि और पर्यायान्तकृत् भूमि। भगवान् पार्श्व से चतुर्थ पट्टधर तक मुक्तिमार्ग चालू रहा, यह युगान्तकृत् भूमि हुई और भगवान् पार्श्व के कैवल्यलाभ के तीन वर्ष वाद मुक्तिमार्ग प्रारम्भ हुआ, यह पर्यायान्तकृत् भूमि हुई।

१५९. उस काल और उस समय पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व तीस वर्ष तक गृहवास में रह कर, तयांसी दिन छद्मस्थ श्रमण-पर्याय का पालन कर,

He had a group of fourteen hundred followers who had attained the supreme *avadhi*-knowledge; a group of a thousand followers who had attained *kevala*-knowledge; a group of eleven hundred followers who possessed the power of occult transformation; a group of seven hundred and fifty exceedingly wise persons; a gathering of six hundred logicians, versed in disputations; a group of six hundred sages who were unbending and straightforward *(ṛju-mati)* in their thoughts and he also had a group of twelve hundred disciples who were in their final birth.

158. Arhat Pārśva, the Chose One, had instituted a two-fold time-phase for achieving the final end: an epoch-unit *(yugāntakṛtabhūmi)* and a serial-unit *(paryāyāntakṛtabhūmi)*. The epoch-unit lasted for four generations after him and the serial-unit began three years after his *kevala*-knowledge.

159. In that epoch, in that age, Arhat Pārśva, the Chosen One, spent the first thirty years of his life as a house-holder. Then he lived in relative ignorance for eighty-six days. Finally, he dwelt in the supreme state of *kevala*-knowledge for a little less than seventy years.
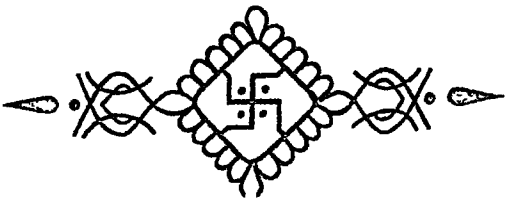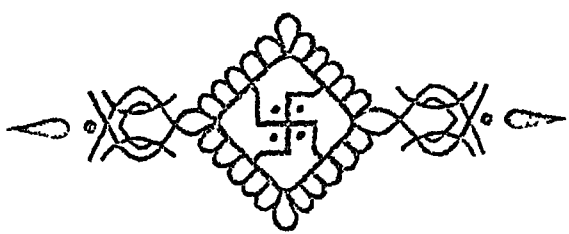
देसूणाइं सत्तरिं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बहुपडिपुण्णाइं सत्तरिं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, एगं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसम-सुसमाए [समाए] बहुविइक्कंताए जे से वासाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावणसुद्धे, तस्स णं सावणसुद्धस्स अट्ठमीपक्खेणं उप्पिं सम्मेय-सेलसिहरंसि अप्पचउत्तीसइमे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि वग्घारियपाणी कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१५९॥

पासस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स दुवालस वाससयाइं विइक्कंताइं, तेरसमस्स य वाससयस्स अयं तीसइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥१६०॥ ॥ छ ॥
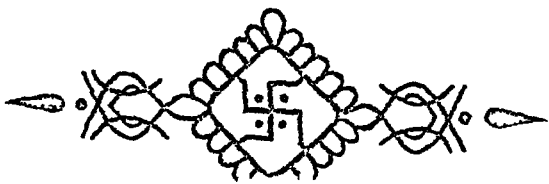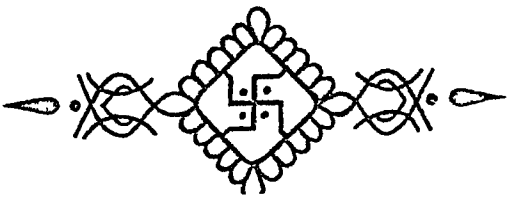
कुछ कम सत्तर वर्ष केवली-पर्याय का पालन कर, परिपूर्ण सत्तर वर्ष श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, समग्र एक सौ वर्ष की सर्वायु पूर्ण कर, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मों के क्षीण होने पर, इसी अवसर्पिणी के दुषम-सुषम नामक चतुर्थ आरे के वहुत कुछ व्यतीत होने पर, जब वर्षा ऋतु का प्रथम मास, द्वितीय पक्ष श्रावण शुक्ल चल रहा था तब उस श्रावण शुक्ल अष्टमी के दिन सम्मेत-शैल के शिखर पर, स्वयं सहित चौतीस अर्थात् स्वयं एवं अन्य तेतीस श्रमणों के साथ जल-रहित मासिक-भक्त तप करके, विशाखा नक्षत्र का योग आने पर, पूर्वाह्न काल में दोनों हाथ लम्बे रहें – इस प्रकार की ध्यानमुद्रा में रहते हुए कालधर्म को प्राप्त हुए, व्यतिक्रान्त हुए, यावत् समस्त दुःखों से मुक्त हुए।

He thus dwelt as a *śramaṇa* for full seventy years and lived a life lasting a hundred years in all. He had undone all wordly fetters: fetters of name, *gotra* and consciousness. Annihilating the bonds of birth, decay and death, he passed away from this world into the state beyond *karma*, and attained the state of ultimate perfection, enlightenment and liberation:a state transcending all pain. He breathed his last while he was on the summit of mount Sammeta, in the company of thirty-three others. He was, at that moment, meditating in a posture with lifted hands. He had been taking one meal, without water, in a month.

He passed away at forenoon. The moon was in conjunction with the constellation *viśākhā*. It was the second fortnight, that is, the bright fortnight of the first month of the rainy season, the month of *Śrāvaṇa*. The day was the eighth of the fortnight. At that moment, a major portion of the *duḥṣama-suṣama* phase of this present *avasarpiṇī* was already spent.

१६०. अर्हत् पार्श्व को कालधर्म प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए वारह सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और तेरहवें शतक में तीसवां वर्ष अर्थात् वारह सौ तीस का संवत्सर चल रहा है।

160. Twelve full centuries have now passed since Arhat Pārśva, the Chosen One, attained liberation and passed away into a state beyond pain. Of the thirteenth century, the current year is the thirtieth.
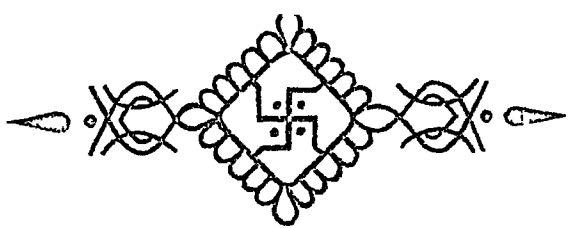
तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी पंचचित्ते हुत्था, तंजहा—चित्ताहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते, जाव चित्ताहिं परिनिव्वुए ।१६१।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले, तस्स णं कत्तिय-बहुलस्स तेरसीपक्खेणं अपरा-जियाओ महाविमाणाओ
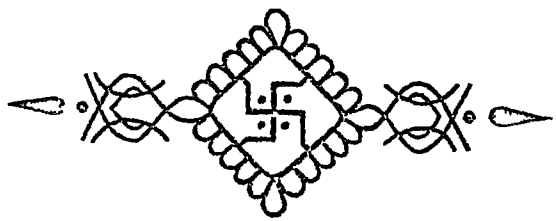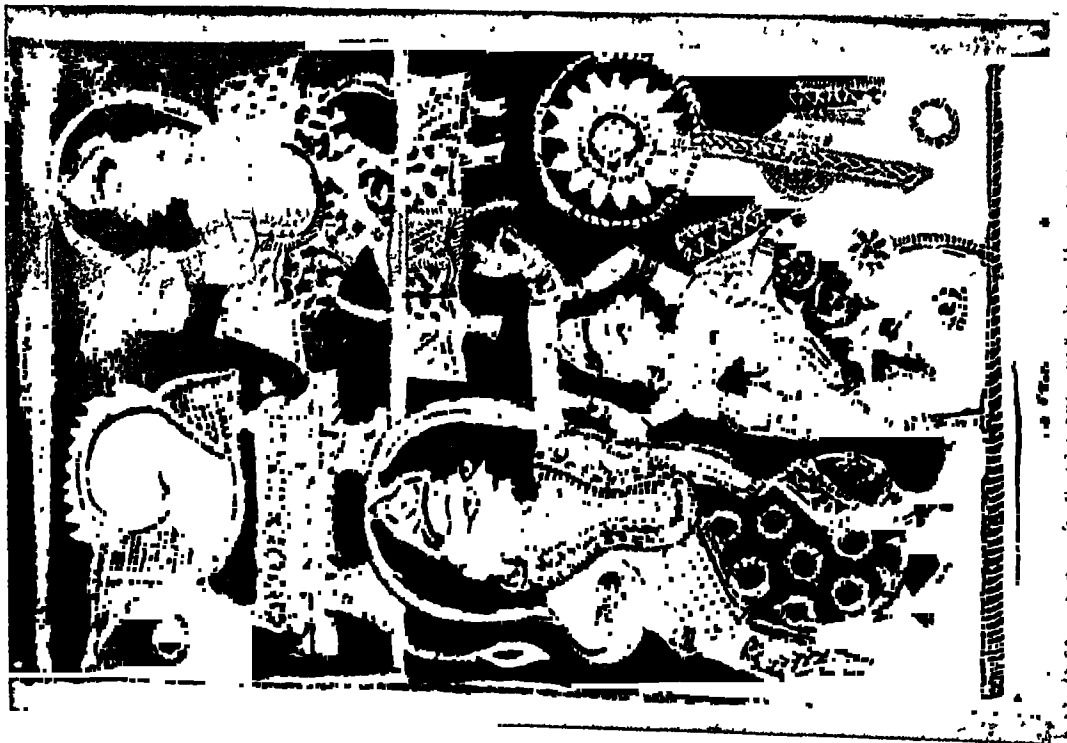
अर्हत् अरिष्टनेमि

१६१. उस काल और उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि के पांच (कल्याणक) चित्रा नक्षत्र में इस प्रकार हुए – अर्हत् अरिष्टनेमि चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भरूप में उत्पन्न हुए, यावत् चित्रा नक्षत्र में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

१६२. उस काल और उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि जब वर्षा ऋतु का चतुर्थ मास, सातवां पक्ष कार्तिक कृष्ण चल रहा था तब उस कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के दिन, तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले अपराजित नामक महा-विमान से

Life of Ariṣṭanemi

161. In that epoch, in that age, five prime events in the life of Arhat Ariṣṭanemi, all occurred when the moon was in conjunction with the constellation *citrā*. During such a conjunction, he descended and entered a womb. Then, during a similar conjunction, he took birth. Later, during a like conjunction, he plucked out his hairs and became a homeless mendicant, He attained *kevala*-knowledge during another such conjunction and, finally, when he passed away, the moon was again in *citrā*.

162. At that time, in that epoch, it was the thirteenth day of the seventh fortnight of the season of rains, that is, the dark half of the fourth rain-month, the month of *Kārtika*, when Arhat Ariṣṭanemi descended from the celestial abode called *Aparājita*, after having lived there for a period of thirty-three *sāgaropamas*.
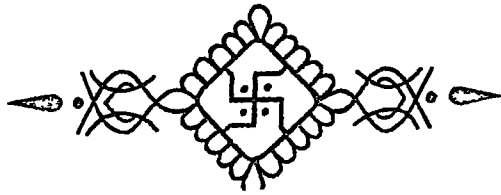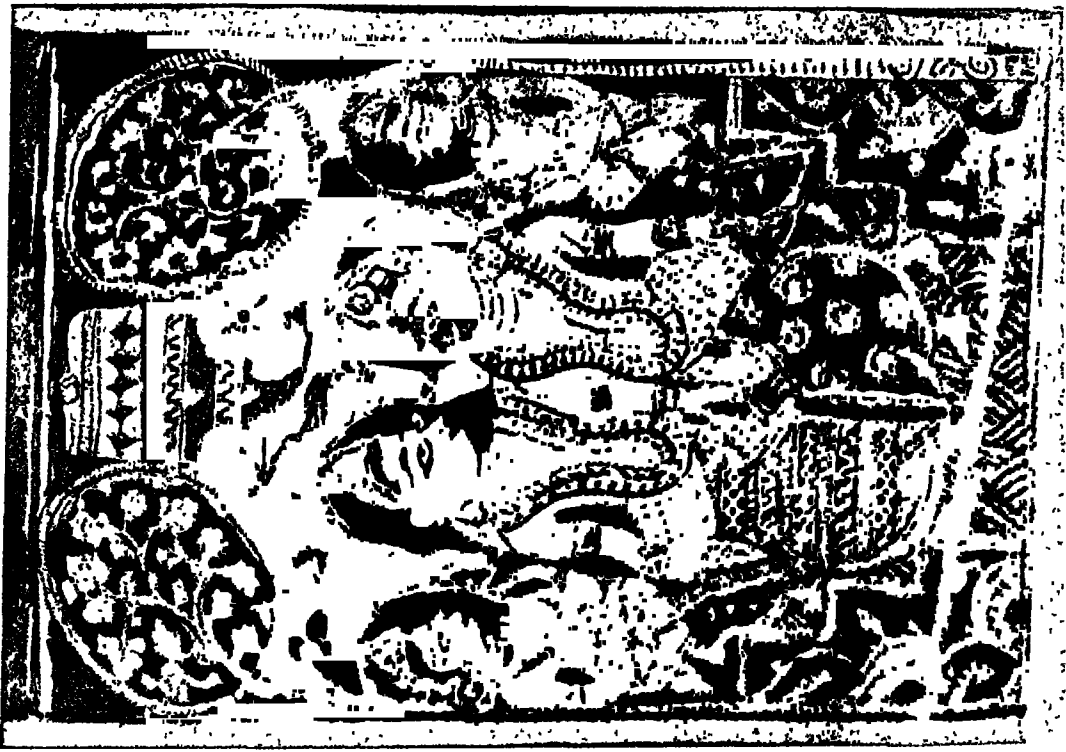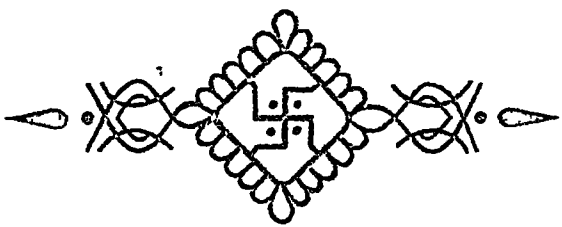
तित्तीसं सागरोवमट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सोरियपुरे नयरे समुद्दविजयस्स रण्णो भारियाए सिवाए देवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं गब्भत्ताए वक्कंते, सव्वं तहेव सुमिणदंसणदविणसंहरणाइयं इत्थं भाणियव्वं ॥१६२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं
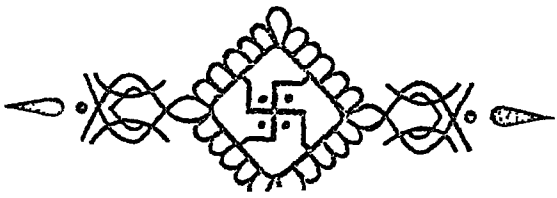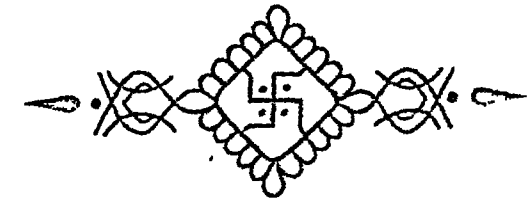
च्युत हुए और च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष के सोरियपुर नामक नगर में राजा समुद्रविजय की भार्या शिवादेवी की कुक्षि में, मध्यरात्रि के समय, यावत् चित्रा नक्षत्र का योग आने पर गर्भरूप में उत्पन्न हुए। स्वप्न दर्शन से लेकर धनवृष्टि तक का सारा वर्णन पूर्व-वर्णित महावीर-वर्णन के समान यहां पर भी पढ़ना चाहिए।

१६३. उस काल और उस समय

He descended to the land of Bhārata, in the continent of Jambūdvīpa and was conceived unto the womb of Śivādevī, wife of king Samudravijaya, ruling at the city of Sauripura. The previous night was, at that moment, just giving way to the new. The moon was in conjunction with the constellation *citrā*.

Later events that happened before the birth of Arhat Ariṣṭanemi should be taken as identical with events that occurred in the life of Bhagavān Mahāvīra.
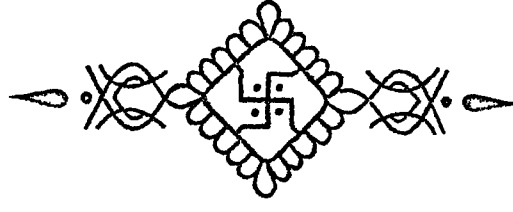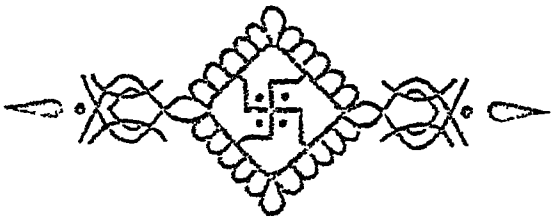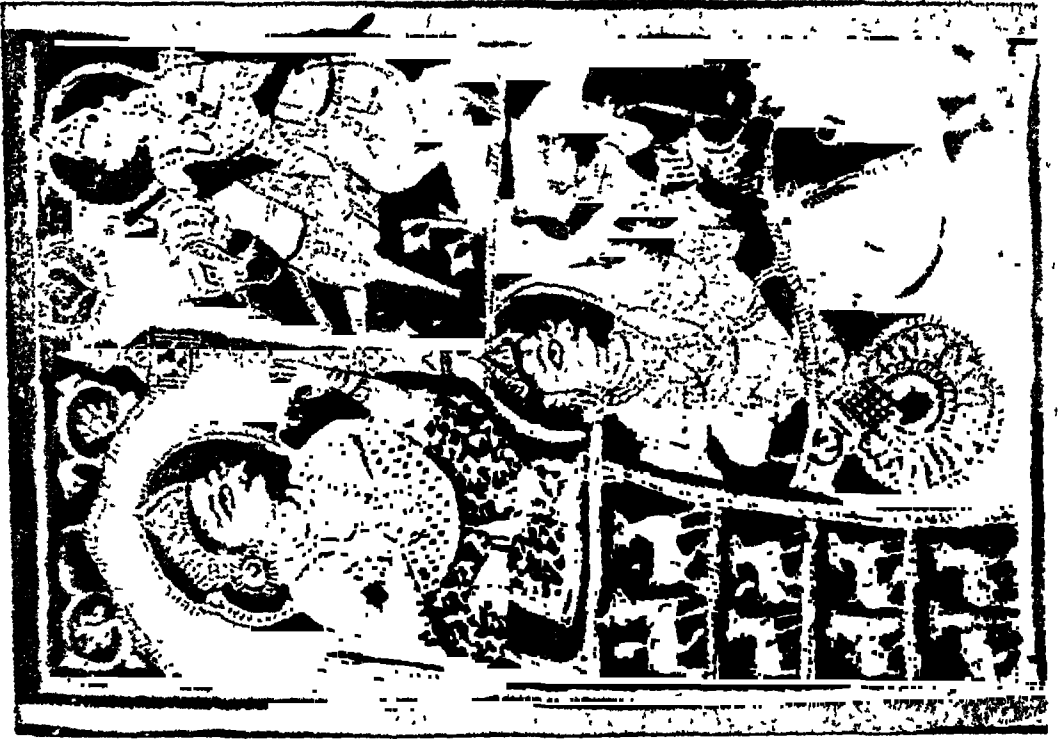
अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावण-सुद्धे, तस्स णं सावणसुद्धस्स पंचमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं जाव चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोग-मुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया। जम्मणं समुद्द-विजयाभिलावेणं नेयव्वं, जाव तं होउ णं कुमारे अरिट्ठनेमी नामेणं ॥१६३॥

अरहा अरिट्ठनेमी दक्खे
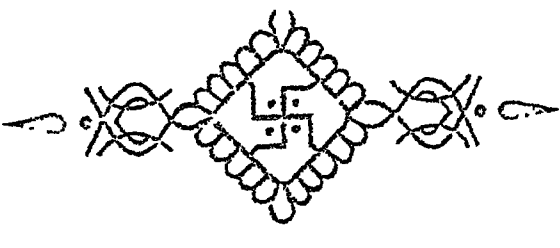
अर्हत् अरिष्टनेमि को जब वर्षा ऋतु का पहला मास, दूसरा पक्ष श्रावण शुक्ल चल रहा था तब उस श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन नव मास परिपूर्ण होने पर, यावत् चित्रा नक्षत्र का योग आने पर आरोग्यवती शिवादेवी ने सुखपूर्वक पुत्र रूप में जन्म दिया। जन्म-वर्णन में पिता समुद्रविजय नामक, यावत् इस कुमार का नाम अरिष्टनेमि हो पर्यन्त समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।

१६४. अर्हत् अरिष्टनेमि दक्ष थे,

163. In those times, in that epoch, after spending a period of nine months seven-and-a-half days in the womb, Arhat Ariṣṭanemi was born during the first month of the rainy season, the month of *Śrāvaṇa*. The day was the fifth day of the second fortnight of the season, the bright fortnight of that month. The moon was in conjunction with the constellation *citrā*. Both mother and child were in excellent health.

At this place, let one repeat, with suitable substitutions, words which have been used to describe the events in Bhagavān Mahāvīra's life, till the event of giving the child a name. Arhat Ariṣṭanemi was named Kumāra Ariṣṭanemi.
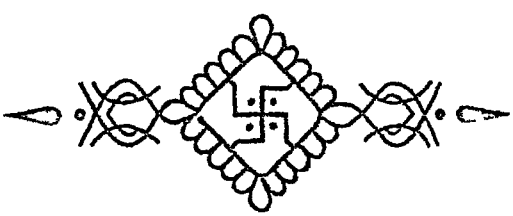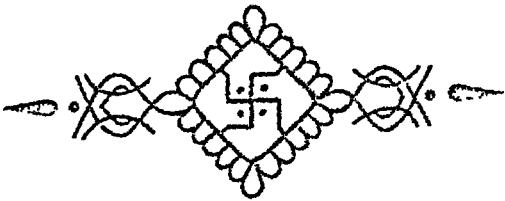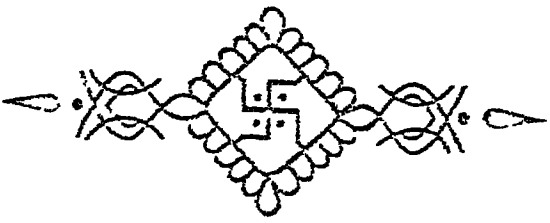
जाव तिण्णि वाससयाइं कुमारे अगारवासमज्झे वसित्ता णं पुणरवि लोयंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं तं चेव सव्वं [भाणियव्वं,] जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता, जे से वासाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे सावणसुद्धे, तस्स णं सावणसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि उत्तरकुराए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए अणुगम्ममाणमग्गे जाव बारवतीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयति, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय एगेणं पुरिससहस्सेणं [सद्धिं]
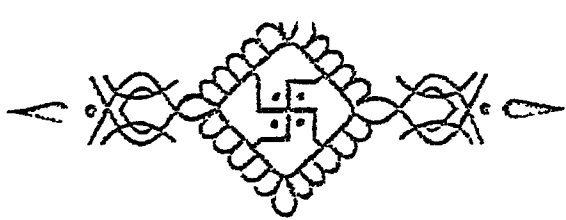
यावत् वे तीन सौ वर्ष तक गृहवास में रहे। उसके पश्चात् जीतकल्पी लोकान्तिक देवों ने आकर उनसे निवेदन किया, इत्यादि कथन पूर्ववत् कहना चाहिए। यावत् याचकों को दान दिया।

जब वर्षा ऋतु का प्रथम मास, दूसरा पखवाड़ा श्रावण शुक्ल चल रहा था तब उस श्रावण शुक्ल छठ के दिन पूर्वाह्न समय में, अर्हत् अरिष्टनेमि उत्तरकुरा नामक शिविका में बैठकर, देव, मानव और असुरों के समुदाय से परिवृत्त होकर, यावत् द्वारवती (द्वारिका) नगरी के बीचों-बीच होकर निकलते हैं। निकल कर जहां रैवतक नामक उद्यान है वहां आते हैं। वहां आकर उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे शिविका रखवाते हैं। रखवाकर शिविका से उतरते हैं। शिविका से उतर कर स्वयं हाथों से आभरण, माला और अलंकारों को उतारते हैं। स्वयमेव अलंकारादिकों को उतारकर पंच मुष्टि लुंचन करते हैं। लोच कर, जल-रहित छट्ठभक्त (दो उपवास) किये हुए चित्रा नक्षत्र का योग आने पर, एक देवदूष्य वस्त्र ग्रहण कर, एक हजार पुरुषों के साथ

164. Arhat Ariṣṭanemi was a man of vision. He lived in his home for a period of three hundred years. Then, like the other Arhats, he gifted away all his possessions and went forth from his home on the litter called *Uttarakurā*. He was hailed by the *lokātinka* gods. He went through the town of Dvāravatī (i. e. Sauripura) followed by gods, men and demons. He journeyed to the park called Revataka and came to a great *aśoka* tree. Here he alighted from his litter, shed all his finery, his garlands and his ornaments and plucking out his hair in five handfuls, became an homeless mendicant in the company of a thousand others. He took to the practice of eating only one meal, without water, out of six regular meals. The moon was, at this time, in conjunction with the constellation *citrā*.
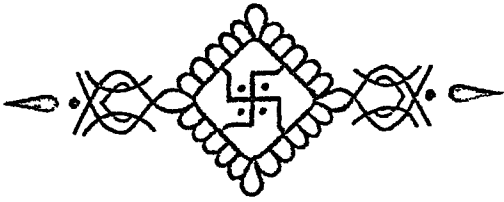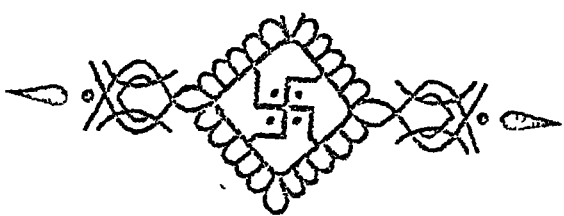
मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वईए ॥१६४॥

अरहा णं अरिट्ठनेमी चउप्पन्नं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे, तं चेव सव्वं जाव पणपन्नगस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले, तस्स णं आसोयबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे उज्जिंत-सेलसिहरे वडपायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे जाव केवलवर-नाणदंसणे समुप्पन्ने। [जाव] सव्वलोए सव्वजीवाणं भावे जाणमाणे पासमाणे विहरति ॥१६५॥

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस गणा अट्ठारस गणहरा हुत्था। अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स वरदत्तपामोक्खाओ अट्ठारस समण-

करते हैं।
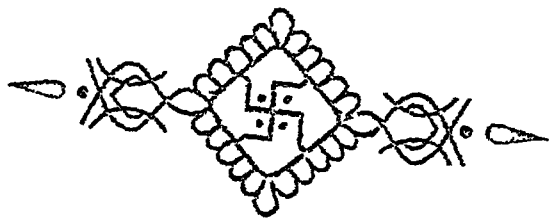
१६५. अर्हंत् अरिष्टनेमि प्रव्रजित होने के पश्चात् चौपन अहोरात्र तक शरीर की ओर सर्वदा उदासीन रहे। देहत्यक्त के समान शरीर की सार-सम्भाल, शुश्रूषा आदि से सर्वदा अनासक्त रहे, इत्यादि सभी कथन पूर्वोक्त वर्णन के समान समझना चाहिए। अर्हंत् अरिष्टनेमि को इस प्रकार रहते हुए पचपनवां अहोरात्र चल रहा था। जब वर्षा ऋतु का तीसरा महीना, पांचवां पक्ष आश्विन कृष्ण चल रहा था तब उस आश्विन कृष्ण अमावस्या के दिन, दिवस के पश्चिम भाग में अर्थात् अपराह्न में उज्जयंत-शैल के शिखर पर वटवृक्ष के नीचे, जल-रहित छट्ठ भक्त (दो उपवास) किये हुए, ध्यानमुद्रा में मग्न अर्हंत् अरिष्टनेमि को चित्रा नक्षत्र का योग आने पर, यावत् अनन्त, सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। यावत् अर्हंत् अरिष्टनेमि समग्र लोक में स्थित समस्त जीवों के भावों को जानते और देखते हुए विचरण करते हैं।

165. Arhat Ariṣṭanemi remained for a period of fifty-four days in the attitude of 'giving up the body' *(utsṛṣṭakāya)* and 'renouncing the body' *(tyakta-deha)* and meditated upon his inner self. On the fifty-fifth day, he attained the ultimate, *kevala*-knowledge. The state and condition of all living beings was revealed to him. The day on which this occurred was the fifteenth day of the fifth fortnight of the season of rains, that is, the dark half of the month of *Āśvina*. The time was evening. The moon was in conjunction with the constellation *citrā*. Arhat Ariṣṭanemi was, at that moment, sitting in meditation under a banyan tree on the sumit of mount Ujjayanta (Girnar). Thereafter he dwelt in a state of *kevala*-knowledge.

१६६. अर्हंत् अरिष्टनेमि के अठारह गण और अठारह गणधर थे।

अर्हंत् अरिष्टनेमि के वरदत्त प्रमुख अठारह

166. Arhat Ariṣṭanemi had eighteen *gaṇas* and a similar number of *gaṇadharas*. He had an excellent congregation of eighteen thousand monks. Their chief was Varadatta.
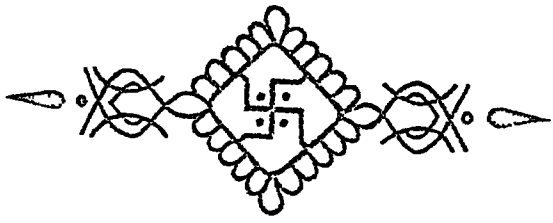
साहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अज्जजक्खिणिपामोक्खाओ चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था। अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स नंदपामोक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणत्तरिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था। अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स महासुव्वय-पामोक्खाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ छत्तीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था। अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तारि सया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर जाव होत्था। पण्णरस सया ओहिनाणीणं, पन्नरस सया केवलनाणीणं, पन्नरस सया वेउव्वीणं, दस सया विउलमईणं, अट्ठ सया वाईणं, सोलस सया अणुत्तरोववाइयाणं, पन्नरस समणसया सिद्धा, तीसं अज्जियासयाइं
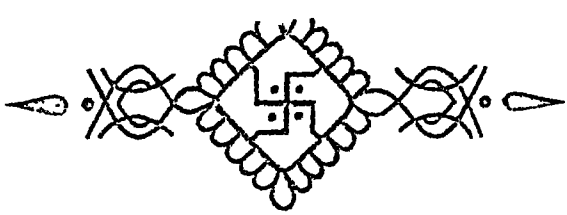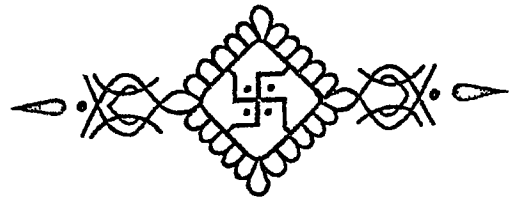
हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी ।

अर्हत् अरिष्टनेमि के आर्या यक्षिणी प्रमुख चालीस हजार श्रमणियों की उत्कृष्ट आर्या सम्पदा थी ।

अर्हत् अरिष्टनेमि के नन्द प्रमुख एक लाख उनहत्तर हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक सम्पदा थी ।

अर्हत् अरिष्टनेमि के महासुव्रता प्रमुख तीन लाख छत्तीस हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका सम्पदा थी ।

अर्हत् अरिष्टनेमि के जिन नहीं किन्तु जिन के सदृश, सर्वाक्षर-सन्निपाती ऐसे चार सौ, चतुर्दश पूर्वधरों की यावत् उत्कृष्ट चौदह पूर्वधारियों की सम्पदा थी ।

अर्हत् अरिष्टनेमि के पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, पन्द्रह सौ केवलज्ञानी, पन्द्रह सौ वैक्रियलब्धिधारी, एक हजार विपुलमती (मनपर्यवज्ञानी) और आठ सौ वादियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी ।

अर्हत् अरिष्टनेमि के सोलह सौ श्रमण अनुत्तरोपपातिक विमान में गए, पन्द्रह सौ श्रमण सिद्ध हुए और तीन हजार श्रमणियां सिद्ध हुईं ।

He had an excellent congregation of fourty-four thousand nuns. Āryā Yakṣiṇī was their chief.

He had an excellent community of lay followers numbering a hundred and sixty-nine thousand. Nanda was their chief.

He had an excellent community of women lay-followers numbering three hundred and thirty six thousand women. Mahāsuvratā was their chief. He had a group of four hundred followers who knew all the sacred *Pūrva*-treatises. These followers, though not Tīrthaṅkaras, were almost like Tīrthaṅkaras. They knew every syllable of the canon and could expound it like Tīrthaṅkaras.

He had a group of fifteen hundred followers who had attained *avadhi*-knowledge, and another fifteen hundreed who had attained *kevala*-knowledge.

Another group of his followers, numbering fifteen hundred, had the power of occult transformation. He had a group of a thousand exceedingly wise men, a group of eight hundred sophists, a group of sixteen hundred sages in their final life, and a group of fifteen hundred monks and three thousand nuns who had attained perfection.
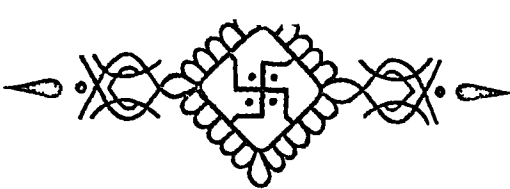
सिद्धाइं ॥१६६॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स दुविहा अंतगडभूमी होत्था, तंजहा–जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य। जाव अट्ठमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी, दुवालसपरियाए अंतमकासी ॥१६७॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरिहा अरिट्ठनेमी तिण्णि वाससयाइं कुमारवासमज्झे वसित्ता, चउप्पन्नं राइंदियाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, देसूणाइं सत्त वाससयाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, पडिपुण्णाइं सत्त वाससयाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, एगं वास-सहस्सं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते, इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए [समाए] बहुविइक्कंताए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स अट्ठमी-पक्खेणं उप्पिं उज्जितसेलसिहरंसि पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं

१६७. अर्हत् अरिष्टनेमि के समय अन्तकृतों की दो प्रकार की भूमि हुई—युगान्तकृत् भूमि और पर्यायान्तकृत् भूमि। अर्हत् अरिष्टनेमि के पश्चात् आठवें युगपुरुष (पट्टधर) पर्यन्त मुक्तिमार्ग चालू रहा, यह युगान्तकृत् भूमि हुई और अर्हत् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान प्राप्त होने के दो वर्ष पश्चात् मुक्तिमार्ग का प्रारम्भ हुआ, यह पर्यायान्तकृत् भूमि हुई।

१६८. उस काल और उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष तक कुमारावस्था में रहकर, चौपन अहोरात्र तक छद्मस्थ श्रमण-पर्याय का पालन कर, कुछ कम सात सौ वर्ष पर्यन्त केवली-पर्याय का पालन कर, परिपूर्ण सात सौ वर्ष पर्यन्त श्रमण-धर्म का पालन कर, समस्त एक हजार वर्ष का सर्वायु पूर्णकर, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मों के क्षीण होने पर, इसी अवसर्पिणी के दुषम-सुषम नामक चतुर्थ आरे के बहुत कुछ व्यतीत हो जाने पर, जब ग्रीष्म ऋतु का चौथा मास, आठवां पक्ष आषाढ शुक्ल चल रहा था तब उस आषाढ शुक्ल अष्टमी के दिन, उज्जयंत-शैल के शिखर पर, पांचसौ छत्तीस अनगारों के

167. Arhat Ariṣṭanemi had instituted a two-fold time phase for those achieving the final end: an epoch-unit *(yugāntakṛtabhūmi)* and a serial-unit *(paryāyāntakṛtabhūmi)*. The first lasted for eight generations after him and the second began two years after him.

168. In that epoch, in those times, Arhat Ariṣṭanemi spent the first three hundred years of his life as a prince. Then he lived in relative ignorance for a period of fifty-four days. He dwelt in *kevala*-knowledge for a little less than seven hundred years. He thus dwelt as a *śramaṇa* for a period of full seven hundred years. His total span of life was a thousand years. He had undone all wordly fetters of one's allotted span of life : the fetters of name, *gotra* and consciousness, and had reached a state beyond pain. He breathed his last on the summit of mount Ujjayanta (Girnar) during the eighth fortnight of the fourth month of summer, that is, the second fortnight of the month of *Āṣāḍha*. The day was the eighth of the fortnight. This event occurred at midnight, when the previous night was just giving place to the new,

सद्धिं मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं चित्तानक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि निसज्जिए कालगते (ग्रं. ८००) जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१६८॥

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स कालगयस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स चउरासीइं वाससहस्साइं विइक्कंताइं, पंचासीतिमस्स वाससहस्सस्स नव वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥१६९॥ ॥ छ ॥

नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स जाव प्पहीणस्स पंच वाससय-सहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥१७०॥

मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ कालगयस्स [जाव प्पहीणस्स] एक्कारस
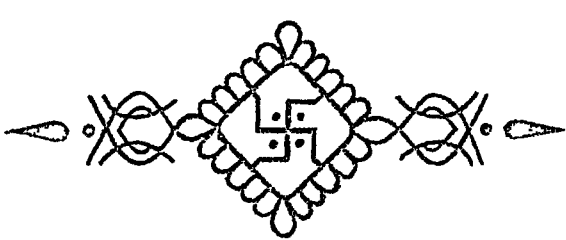
साथ, जलरहित मासिक-भक्त तप करके, चित्रा नक्षत्र का योग आने पर, मध्यरात्रि के समय बैठे-बैठे कालधर्म को प्राप्त हुए। यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए।

१६६. अर्हत् अरिष्टनेमि को कालधर्म को प्राप्त हुए, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए, चौरासी हजार वर्ष व्यतीत हो गए और पचासीवें हजार वर्ष के नौ सौ वर्ष भी व्यतीत हो गए तथा उस पर दशवीं शती का अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है। अर्थात् अरिष्टनेमि को कालगत हुए चौरासी हजार नौ सौ अस्सी वर्ष व्यतीत हो गए हैं।

The moon was in conjunction with the constellation *citrā*. A major part of the *duḥṣama-suṣama* phase of the present *avasarpiṇī* was over. Arhat Ariṣṭa-nemi was at that time practising the vow of taking only one meal, without water, in a month. He was in the company of five hundred and thirty-six homeless mendicants.

169. A full eighty-four millenium have passed since Arhat Ariṣṭanemi breathed his last and passed away into a state beyond pain. Of the eighty-fifth millenium, nine hundred years have passed. The current year is the eightieth year of the millenium's last century.

तीर्थंकरों का अन्तर-काल

१७०. अरहंत नमि को कालगत हुए यावत् समस्त दुःखों से रहित हुए, पांच लाख चौरासी हजार नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये और उस दसवें सैकड़े का अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है।

१७१. अरहंत मुनिसुव्रत को कालगत हुए यावत् सर्व दुःख-मुक्त हुए, ग्यारह

Periods of Other Tīrthaṅkaras

170. Full eighty-four thousand and nine hundred years have passed since Arhat Nami breathed his last and passed away into a state beyond pain. The current year is the eightieth year of the remaining tenth century.

171. Full eleven hundred eighty four thousand and nine hundred years have passed since Arhat Munisuvrata breathed his last.

वाससयसहस्साइं चउरासीइं च वाससहस्साइं नव य वाससयाइं वीइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ।१७१।

मल्लिस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स पन्नट्ठिं च वाससयसहस्साइं चउरासीइं वाससहस्साइं नव य वाससयाइं विइक्कंताइं, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे
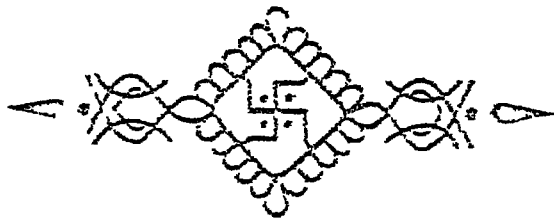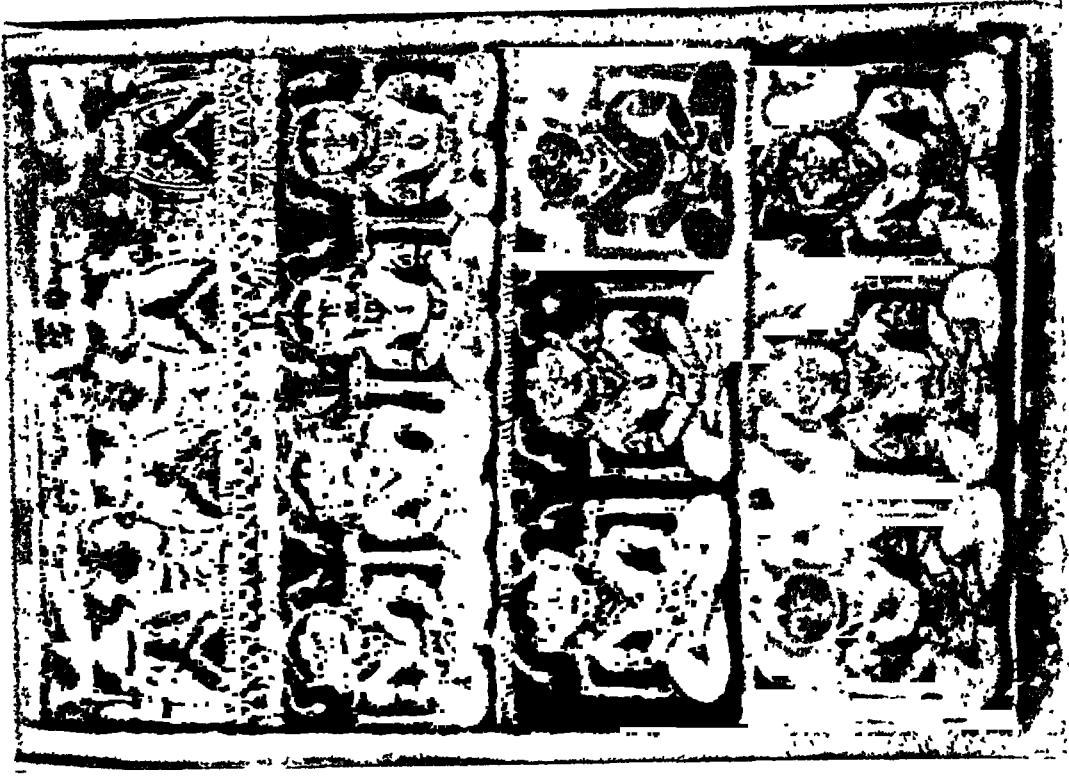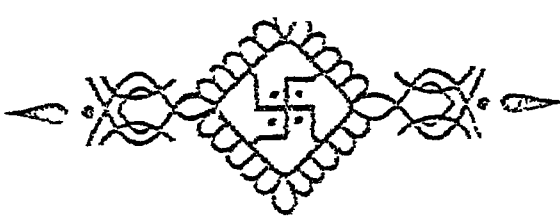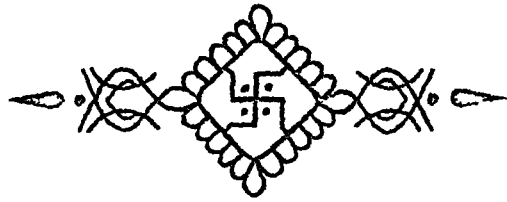
लाख चौरासी हजार नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गए और उस दसवीं शताब्दी का अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है।

The current year is the eightieth year of the remaining tenth century.

१७२. अर्हत् मल्लि को यावत् सर्व दुःख-हीन हुए, पैंसठ लाख चौरासी हजार नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये और अब उस पर दशवीं शती का अस्सीवां संवत्सर का समय चल रहा है।

172. Full sixty-five hundred eighty-four thousand and nine hundred years have now passed since the passing away of Arhat Malli. The current year is the eightieth year of the remaining tenth century.
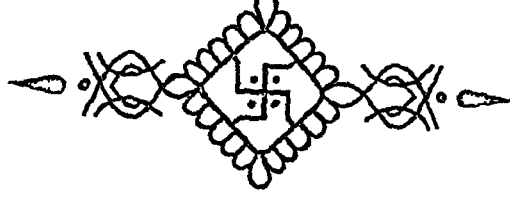
संवच्छरे काले गच्छइ ॥१७२॥

अरस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगे वासकोडिसहस्से विइक्कंते, सेसं जहा मल्लिस्स। तं च एयं-पंचसट्ठिं लक्खा चउरासीइसहस्सा विइक्कंता, तम्मि समए महावीरो निव्वुओ, तओ परं नव वाससया विइक्कंता, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे [काले गच्छइ]। एवं अग्गतो जाव सेयंसो ताव दट्ठव्वं ॥१७३॥

कुंथुस्स णं [अरहओ] जाव प्पहीणस्स एगे चउभागपलिओवमे विइक्कंते पंचसट्ठिं च सयसहस्सा, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७४॥

संतिस्स णं [अरहओ] जाव प्पहीणस्स एगे चउभागूणे पलिओवमे विइक्कंते पन्नट्ठिं च सयसहस्सा, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७५॥

धम्मस्स णं [अरहओ] जाव प्पहीणस्स तिण्णि सागरोवमाइं
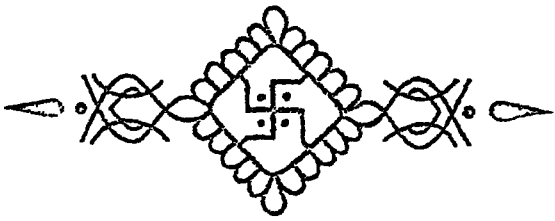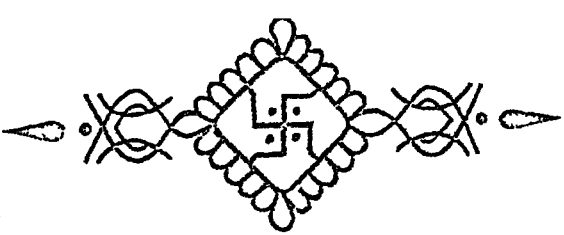
१७३. अर्हत् अर को यावत् सर्व दुःख-रहित हुए, एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो चुके। शेष अन्तर अर्हत् मल्लि के समान समझना चाहिए। वह शेष अन्तर इस प्रकार है :- अर्हत् अर के मुक्तिगमन के पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष में अर्हत् मल्लि का निर्वाण हुआ और अर्हत् मल्लि के निर्वाण के पश्चात् पैंसठ लाख चौरासी हजार वर्ष व्यतीत हो गए, उस समय महावीर का निर्वाण हुआ। महावीर के निर्वाण के बाद नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गए और अब उस पर दशवीं शती का अस्सीवां संवत्सर का समय चल रहा है।

इसी प्रकार आगे श्रेयांसनाथ का वर्णन आता है वहां तक समझना चाहिए।

१७४. अर्हत् कुन्थु को यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए एक पल्योपम का चतुर्थ भाग जितना समय व्यतीत हो गया। उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए, इत्यादि शेष वर्णन अर्हत् मल्लि के सम्बन्ध में जैसा कहा है वैसा ही यहां समझना चाहिए।

१७५. अर्हत् शान्ति को यावत् सर्व दुःख-हीन हुए चार भाग कम एक पल्योपम अर्थात् पौन पल्योपम जितना समय व्यतीत हो गया। उसके बाद पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए, इत्यादि शेष वर्णन अर्हत् मल्लि के सम्बन्ध में जैसा कहा गया है वैसा ही यहां समझना चाहिए।

१७६. अर्हत् धर्म को यावत समस्त दुःखों से मुक्त हुए

173. Full ten million thousand years, plus the number of years since Arhat Malli, have now passed since the passing away of Arhat Ara. The calculation is as follows : Arhat Malli breathed his last ten million years after Arhat Ara had, passed away. Six million five hundred and eighty-four thousand years after this event, Bhagavān Mahāvīra attained *nirvāṇa*. Thereafter, nine full centuries have passed; of the tenth this is the eightieth year.

This reckoning should be similarly applied to the other Tīrthaṅkaras that follow.

174. A quarter of a *palyopama*, plus the number of years since Malli, have now passed after Arhat Kunthu breathed his last and reached a state beyond pain; the rest of the figure should be understood as with Malli.

175. Three quarters of a *palyopama*, plus the number of years since Malli have passed away after Arhat Śānti attained *parinirvāṇa*.

176. Three *sāgaropamas*, plus the number of years since Malli, have passed after Arhat Dharma,

177. Seven *sāgaropamas*,
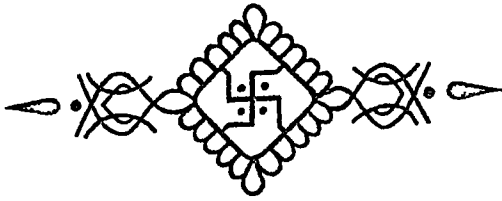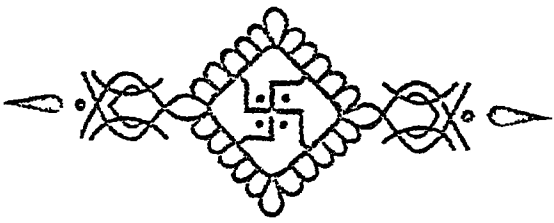
विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७६॥

अणंतस्स णं [अरहओ] जाव प्पहीणस्स सत्त सागरोवमाइं विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७७॥

विमलस्स णं [अरहओ] जाव प्पहीणस्स सोलस सागरोवमाइं विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७८॥

वासुपुज्जस्स णं [अरहओ] जाव प्पहीणस्स छायालीसं सागरोवमाइं विइक्कंताइं, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१७९॥

सेज्जंसस्स णं [अरहओ] जाव प्पहीणस्स एगे सागरोवमसए विइक्कंते पन्नट्ठिं च, सेसं जहा मल्लिस्स ॥१८०॥

सीयलस्स णं [अरहओ] जाव प्पहीणस्स एगा सागरोवमकोडी
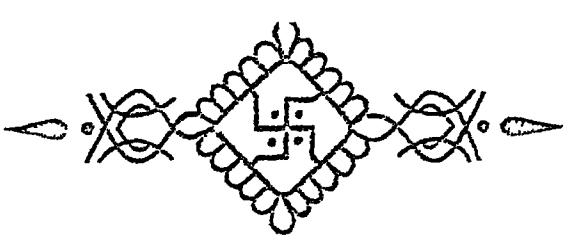
तीन सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। उसके बाद पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए, इत्यादि शेष कथन अर्हत् मल्लि के समान समझना चाहिए।

१७७. अर्हत् अनन्त को यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए सात सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हुए, इत्यादि शेष कथन अर्हत् मल्लि के समान समझना चाहिए।

१७८. अर्हत् विमल को यावत् सम्पूर्ण दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए सोलह सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर, इत्यादि शेष वर्णन अर्हत् मल्लि के समान समझना चाहिए।

१७९. अर्हत् वासुपूज्य को यावत् सम्पूर्ण दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए छ्यालीस सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। उसके पश्चात् पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर, इत्यादि शेष वृत्त अर्हत् मल्लि के सम्बन्ध में जैसा कहा है वैसा ही यहां जानना चाहिए।

१८०. अर्हत् श्रेयांस को यावत् सर्व दुःख-मुक्त हुए एक सौ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। उसके बाद पैंसठ लाख वर्ष व्यतीत हो जाने पर, इत्यादि शेष वर्णन जैसा अर्हत् मल्लि के सम्बन्ध में कहा है वैसा ही यहां जानना चाहिए।

१८१. अर्हत् शीतल को यावत् समस्त दुःखों से रहित

plus the number of years since Malli, have passed after Arhat Ananta.

178. Sixteen *sāgaropamas*, added to the years since Malli, have passed after Arhat Vimala.

179. Forty-six *sāgaropamas*, in conjunction with the number of years since Malli, have passed after Arhat Vāsupūjya.

180. A hundred *sāgaropamas*, plus the years since Malli, have passed after Arhat Śreyāṁsa.

181. Ten million *sāgaropamas*, minus forty two thousand and three years eight-and-half months,
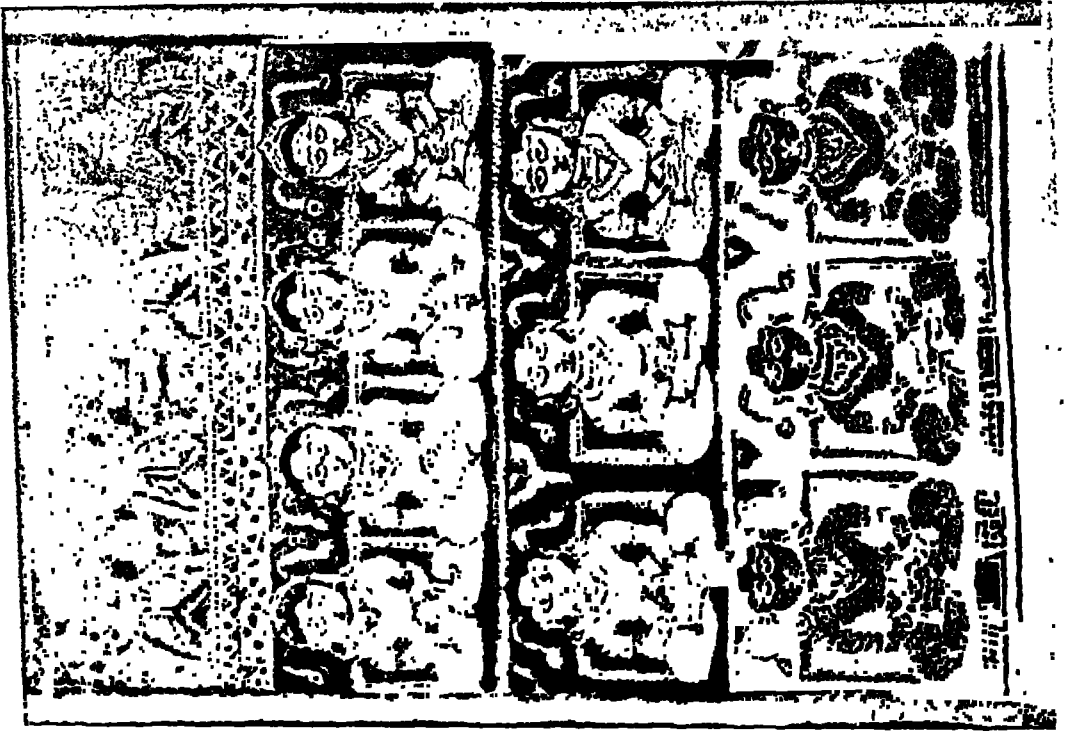
तिवासअद्धनवमासाहियबाया-
लीसवाससहस्सेहिं ऊणिया
विइक्कंता, एयम्मि समए महा-
वीरे निव्वुए, तओ वि य णं
परं नव वाससयाइं विइक्कं-
ताइं, दसमस्स य वाससयस्स
अयं असीइमे संवच्छरे काले
गच्छइ ॥१८१॥

सुविहिस्स णं अरहओ
पुप्फदंतस्स जाव प्पहीणस्स
दस सागरोवमकोडीओ विइ-

हुए बयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने कम एक करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर श्रमण भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। उसके उपरान्त (महावीर निर्वाणोपरान्त) नौ सौ वर्ष व्यतीत हुए और उसके बाद दशवीं शताब्दी का अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है।
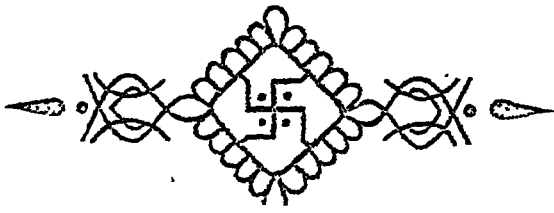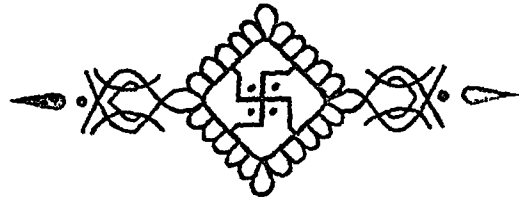
intervened between Arhat Śītala and the time when Mahāvīra attained *nirvāṇa*. After this event nine centuries have passed and the current year is the eightieth of the tenth century.

१८२. अर्हत् सुविधि – पुष्पदन्त को यावत् सर्व दुःखहीन हुए दस करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया।

182. A hundred million *sāgaropamas* passed between Arhat Suvihita and Śītala.
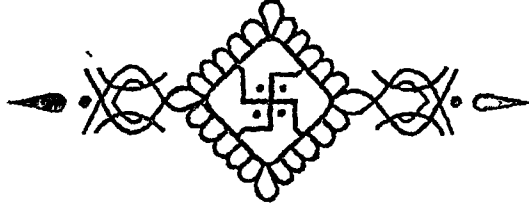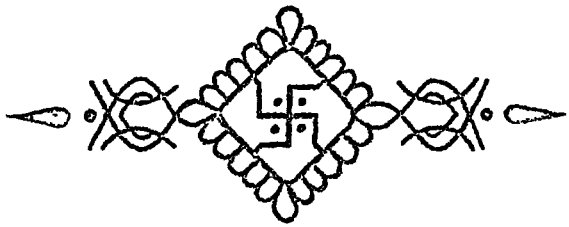
क्कंताओ, सेसं जहा सीयलस्स, तं चेमं—तिवासअद्धनवमासाहियबाया-लीससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंतातो इच्चाइ ॥१८२॥

चंदप्पहस्स णं जाव प्पहीणस्स एगं सागरोवमकोडिसयं विइक्कंतं, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीससहस्सेहिं ऊणगमिच्चाइ ॥१८३॥

सुपासस्स णं जाव प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडिसहस्से विइंक्कते, सेसं जहा सीयलस्स, तं च इमं—तिवासअद्धनवमासाहियबायालीस-सहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता इच्चाइ ॥१८४॥

पउमप्पहस्स णं जाव प्पहीणस्स दस सागरोवमकोडीसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीस-सहस्सेहिं इच्चाइयं ॥१८५॥
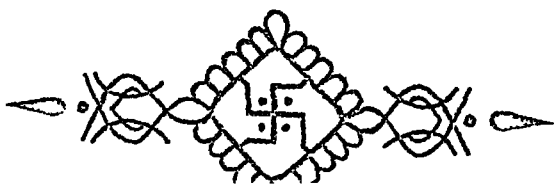
शेप वर्णन जैसा अर्हत् शीतल के सम्बन्ध में कहा है वैसा ही यहां जानना चाहिए। वह इस प्रकार है :- वयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ मास न्यून दश करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत होने पर श्रमण भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। उसके उपरान्त नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गए और उसके बाद दशवीं शताब्दी का अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है।

१८३. अर्हत् चन्द्रप्रभु को यावत् सर्व दुःखों से पूर्णरूपेण मुक्त हुए एक सौ करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेप जैसा अर्हत् शीतल के प्रसंग में कहा है उसी प्रकार यहां समझना चाहिए। वह इस प्रकार है :- वयालीस हजार तीन वर्ष और साढ़े आठ माह कम एक सौ करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर, इत्यादि पूर्ववत जानना चाहिए।

183. A thousand million *sāgaropamas* passed between Arhat Candraprabha and Arhat Śītala.

१८४. अर्हत् सुपार्श्व को यावत् सर्व दुःख-मुक्त हुए एक हजार करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेप वृत्त जैसा अर्हत् शीतल के प्रसंग में कहा है उसी प्रकार यहां जानना चाहिए।

184. Ten thousand million *sāgaropamas* intervened between Supārśva and Śītala.

१८५. अर्हत् पद्मप्रभ को यावत् समस्त दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए दश हजार करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेप वर्णन अर्हत् शीतल के समान समझना चाहिए।

185. A hundred thousand million *sāgaropamas* intervened between Arhat Padmaprabha and Arhat Śītala.
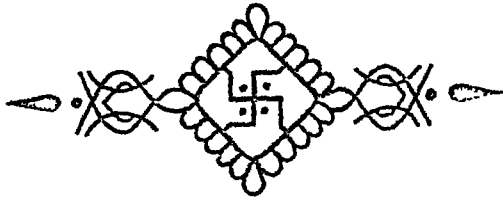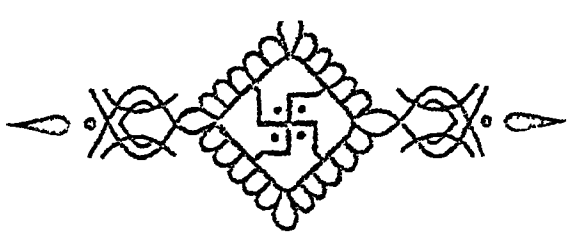
सुमइस्स णं जाव प्पहीणस्स एगे सागरोवमकोडीसयसहस्से विइक्कंते, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीस-सहस्सेहिं इच्चाइयं ॥१८६॥

अभिनंदणस्स णं जाव प्पहीणस्स दस सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीस-सहस्सेहिं इच्चाइयं ॥१८७॥

संभवस्स णं जाव प्पहीणस्स वीसं सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीस-सहस्सेहिं इच्चाइयं ॥१८८॥

अजियस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स पन्नासं सागरोवमकोडि-सयसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीयलस्स, तिवासअद्धनवमासाहिय-
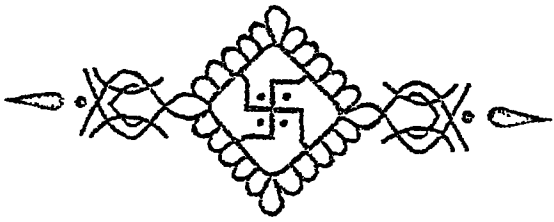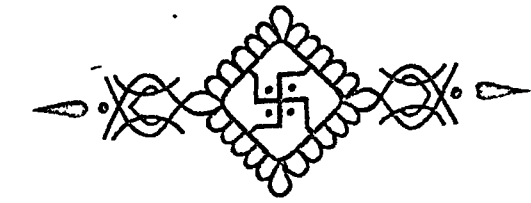
१८६. अर्हत् सुमति को यावत् सर्व दुःखहीन हुए एक लाख करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेष वृत्त अर्हत् शीतल के समान समझना चाहिए। अर्थात् बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने न्यून एक लाख करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए, इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिए।

186. A thousand thousand million *sāgaropamas* intervened between Arhat Sumati and Arhat Śītala.

१८७. अर्हत् अभिनन्दन को सर्व दुःख-मुक्त हुए दस लाख करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेष प्रसंग अर्हत् शीतल के समान जानना चाहिए। अर्थात् बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष रहने पर, दस लाख करोड़ सागरोपम व्यतीत होने पर महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए, इत्यादि पूर्ववत् समझना चाहिए।

187. Ten times this figure intervened between Arhat Abhinanda and Arhat Śītala.

१८८. अर्हत् सम्भव को यावत् सर्व दुःख-रहित हुए बीस लाख करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेष प्रसंग अर्हत् शीतल के समान जानना चाहिए। अर्थात् बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष, बीस लाख करोड़ सागरोपम व्यतीत हो जाने पर महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए, इत्यादि समझना चाहिए।

188. Twice the above, less the number of years being carried over in calculation, intervened between Arhat Sambhava and Arhat Śītala.

१८९. अर्हत् अजित को समस्त प्रकार के दुःखों से पूर्णतया मुक्त हुए पचास लाख करोड़ सागरोपम जितना समय व्यतीत हो गया। शेष वर्णन अर्हत् शीतल के

189. Fifty hundred thousand crores of *sāgaropamas* intervened between Arhat Ajita and Arhat Śītala.
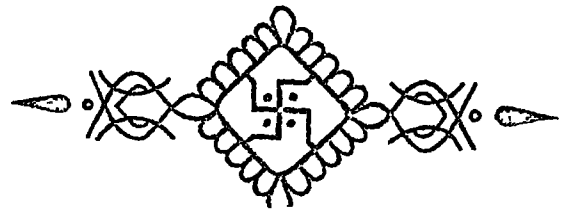
बायालीससहस्सेहिं इच्चाइयं ॥१८९॥ ॥ छ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसहे अरहा कोसलिए चउ उत्तरासाढे अभीइ पंचमे होत्था, तंजहा—उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते, जाव अभीइणा परिनिव्वुए ।१९०।

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे सत्तमे
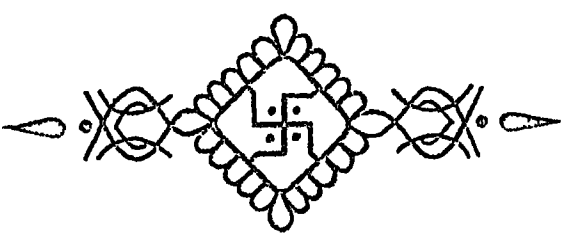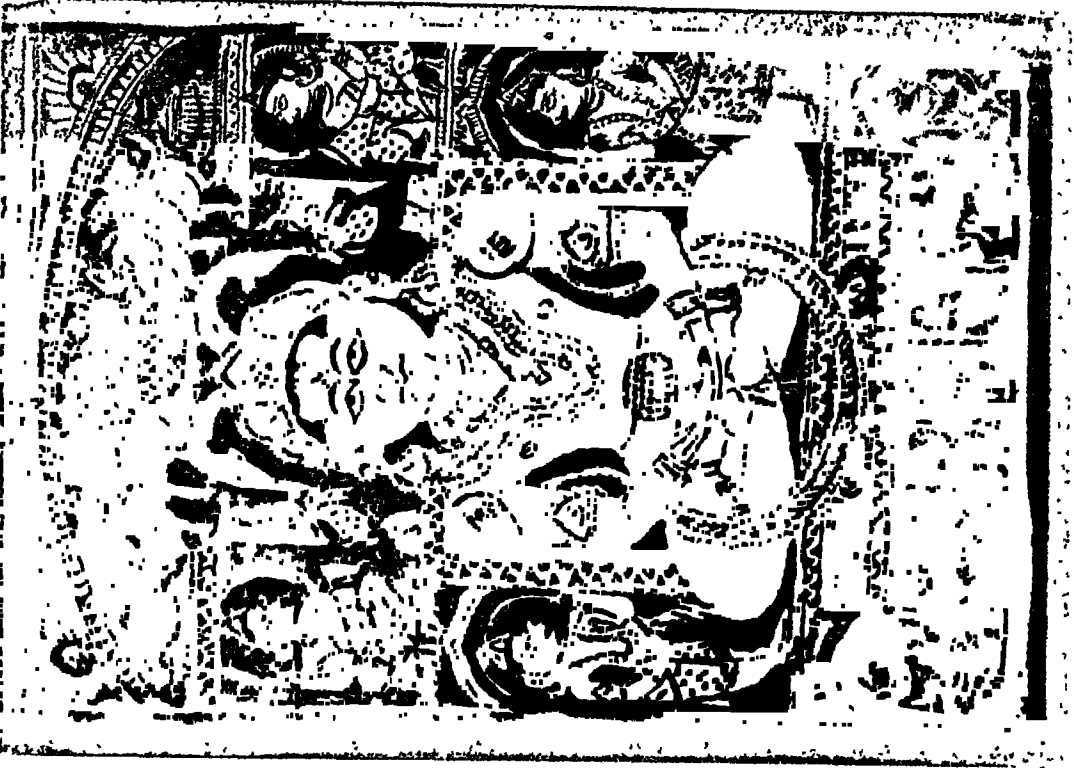
समान इस प्रकार है :– बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष, पचास लाख करोड़ सागरोपम बीत जाने के बाद श्रमण भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। उसके नौ सौ वर्ष व्यतीत हो गये और उस पर दशमीं शताब्दी का अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है।

कौशलिक अर्हत् ऋषभदेव

१९० उस काल और उस समय कौशलिक अर्हत् ऋषभ के चार (कल्याणक) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में और पांचवां अभिजित नक्षत्र में इस प्रकार हुए :– कौशलिक अर्हत् ऋषभदेव स्वर्गलोक से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भरूप में उत्पन्न हुए, यावत् अभिजित नक्षत्र में निर्वाण को प्राप्त हुए।

१९१. उस काल और उस समय कौशलिक अर्हत् ऋषभ जब ग्रीष्म ऋतु का चतुर्थ मास, सातवां

Tīrthaṅkara Ṛṣabha

190. In that epoch, in those times, four prime events in the life of Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, occurred when the moon was in conjunction with the constellation *uttarāsāḍhā*, the fifth occurred when the moon was in conjunction with the constellation *abhijit*. He descended, was conceived, took birth, became a monk and attained *kevala*-knowledge, when the moon was in conjunction with the constellation *uttarāsāḍhā*. He breathed his last and attained *parinirvāṇa*, with the moon in *abhijit*.

191. In that epoch, at that time, it was the fourth month of summer, the dark fortnight of the month of *Āṣāḍha* when on the fourth day of that fortnight, Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, descended
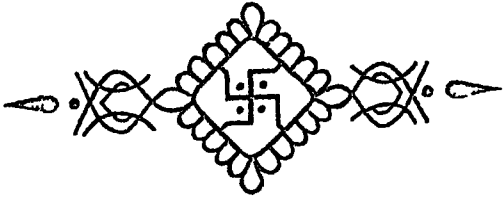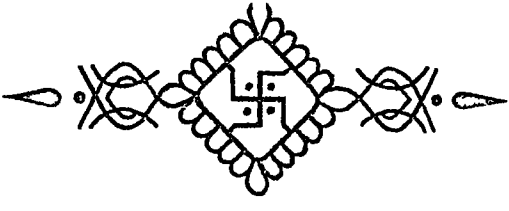
पक्खे आसाढबहुले तस्स णं आसाढबहुलस्स चउत्थीपक्खेणं सव्वट्ठ-सिद्धाओ महाविमाणाओ तेत्तीसं सागरोवमट्ठितीयाओ अणंतरं चइं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इक्खागभूमीए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि आहार-वक्कंतीए जाव गब्भत्ताए वक्कंते ॥१९१॥

उसभे अरहा कोसलिए तिन्नाणोवगए होत्था, तंजहा—चइस्सामि त्ति जाणइ, जाव सुमिणे पासइ, तंजहा—गयउसह० गाहा, सव्वं तहेव, नवरं पढमं उसहं मुहेण अइंतं पासइ, सेसाओ गयं । नाभिस्स कुलगरस्स साहइ, सुविणपाढगा नत्थि, नाभिकुलगरो सयमेव वागरेइ ॥१९२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं

पक्ष आषाढ़ कृष्ण चल रहा था तब उस आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी के दिन, तेतीस सागरोपम की आयुष्य आदि पूर्ण कर सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान से च्युत हुए और च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष के नाभि कुलकर की भार्या मरुदेवी की कुक्षि में, मध्यरात्रि के समय [मनुष्य-सम्बन्धी] आहार, भव और स्थिति प्राप्त होने पर गर्भरूप में उत्पन्न हुए।

१९२. कौशलिक अर्हत् ऋषभ तीन ज्ञान से युक्त थे। यथा – 'मैं च्युत होऊंगा' यह वे जानते थे इत्यादि। यावत् ऋषभ की माता स्वप्न देखती है, यथा – गज, वृषभ आदि, सम्पूर्ण वर्णन पूर्वोक्त महावीर चरित्र में पठित वर्णन के समान ही है। विशेष यह है कि माता मरुदेवी प्रथम स्वप्न में वृषभ को मुख में प्रवेश करती हुई देखती है और शेष अजित से पार्श्व पर्यन्त बाईस तीर्थंकरों की माताएँ प्रथम स्वप्न में गज को मुख में प्रवेश करते हुए देखती हैं। मरुदेवी स्वप्न-दर्शन का वृत्तान्त नाभि कुलकर से कहती है। उस समय स्वप्नलक्षण-पाठक नहीं थे, अतएव स्वप्नों का अर्थ नाभि कुलकर स्वयं कहते हैं।

१९३. उस काल और उस समय कौशलिक अर्हत् ऋषभ को जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष चैत्र कृष्ण चल रहा था तब उस चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन

from the celestial abode called *Sarvārthasiddha*, after having dwelt there for a period of thirty *sāgaropama* years. He descended to the land of Bhārata in the continent of Jambūdvīpa and was conceived in the womb of Marudevī, the wife of Nābhi, the great patriarch living in Ikṣvāku-bhūmi. It was midnight at the moment and the previous night was just giving place to the new. Arhat Ṛṣabha, then, entered a new existence with a new body and a new repast. The first dream that Marudevī saw was the vision of a bull entering her mouth. Mothers of all other Tīrthaṅkaras first saw an elephant.

192. Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, had, at that moment, a threefold awareness: he was aware that he will descend; he was not aware of the descent itself but was aware that he had descended. His mother saw the same dreams as did the mother of Bhagavān Mahāvīra. Other occurrences, too, were the same as in the life of Mahāvīra, but with one difference: the patriarch Nābhi did not send for dream-diviners, he divined the dreams himself.

193. In that epoch, at that time, after spending a period of nine months seven-and-a-half days in the womb, Arhat Ṛṣabha, the Kośalin,

नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं जाव आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया। तं चेव जाव देवा देवीओ य वसुहारवासं वासिंसु, सेसं तहेव चारगसोहणं माणुम्माणवड्ढणं उस्सुक्कमाईयट्ठितिपडियवज्जं सव्वं भणियव्वं ॥१९३॥

उसभे णं अरहा कोसलिए
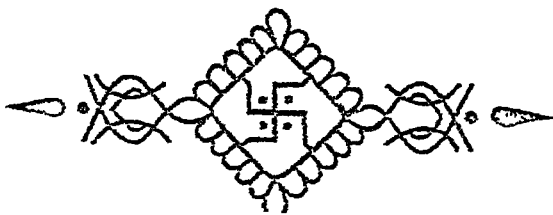
नौ मास और साढ़े सात अहोरात्र व्यतीत होने पर, यावत् उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का योग आने पर, आरोग्यवती माता मरुदेवी ने स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया।

यहां जन्म सम्बन्धी समग्र कथन, यावत् देव और देवियों को आना, धनवृष्टि करना आदि शेष पूर्व-कथित वर्णन के समान ही कहना चाहिए। किन्तु वन्दीमोचन, पदार्थों का मान-उन्मान वढ़ाना, कर छोड़ देना, कुल की मर्यादानुसार जन्मोत्सव करना आदि वर्णन जो पूर्वपाठ में आए हैं उन्हें यहां नहीं कहना चाहिए।

was born in the first month of the summer season, the month of *Caitra*. The day was the eighth day of the month's first fortnight which was a dark fortnight. The moon was in conjunction with the constellation *uttarāṣāḍhā*. Both mother and child were in excellent health.

For subsequent events in the life of Arhat Ṛṣabha, let one repeat the words with which parallel events in the life of Bhagavān Mahāvīra have been depicted. A few details should, however, be omitted. These being: 'freeing of the prisoners'; 'increasing weight measures'; 'excusing the populace from paying taxes' and 'calling a feast to celebrate the birth of a son.'
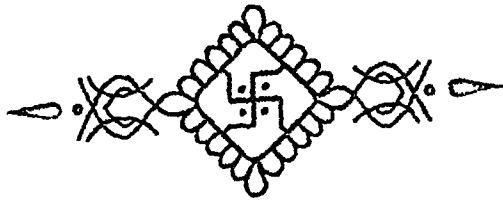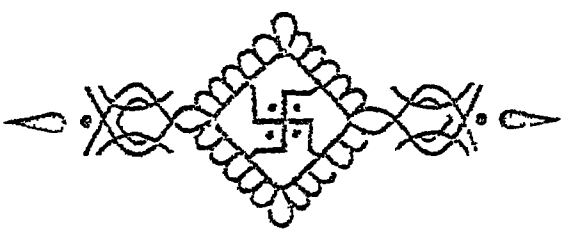
कासवगोत्ते णं, तस्स णं पंच नामधिज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा—उसभे इ वा, पढमराया इ वा, पढमभिक्खाचरे इ वा, पढमजिणे इ वा, पढमतित्थंकरे इ वा ॥१९४॥

उसभे अरहा कोसलिए दक्खे पइण्णे पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसति, वसित्ता तेवट्ठिं च पुव्वसय-

१९४. कौशलिक अर्हत् ऋषभ काश्यप गोत्र के थे। उनके पांच नाम इस प्रकार कहे जाते हैं :– १. ऋषभ, २. प्रथम राजा, ३. प्रथम भिक्षाचर, ४. प्रथम जिन और ५. प्रथम तीर्थंकर।

१९५. कौशलिक अर्हत् ऋषभ दक्ष थे, दक्ष प्रतिज्ञ थे, असाधारण रूपवान थे, स्वात्मलीन थे, सरल स्वभावी थे, विनम्र थे। वे बीस लाख पूर्व तक कुमार अवस्था में रहते हैं। रहकर, त्रेसठ लाख पूर्व तक
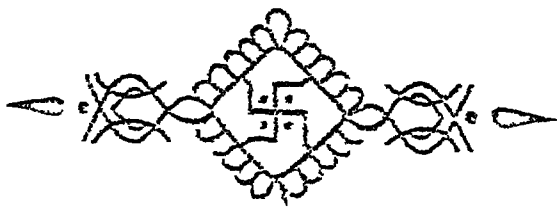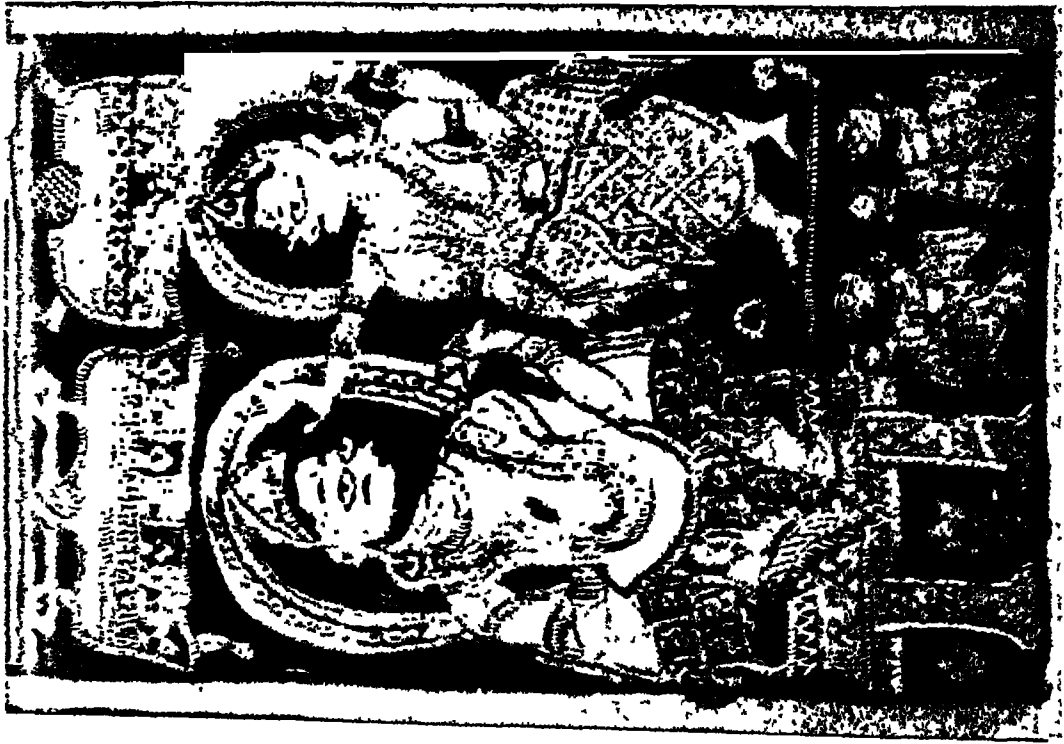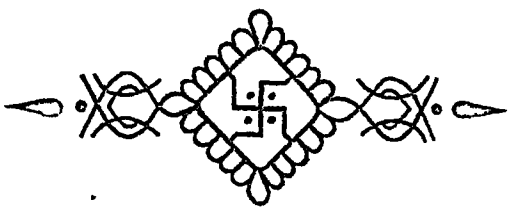
194. Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, was of the Kāśyapa *gotra*. He had five names: Ṛṣabha, Prathamarājā, Prathamabhikṣācara, Prathamajina and Prathamatīrthaṅkara.

195. Arhat Ṛṣabha was a man of skill. He was true to his vows, handsome, gentle, well-mannered and modest. In the earlier part of his life, he lived as a prince for a period of two million years. He then ruled as king for a period of six million and three hundred thousand years.

सहस्साइं महारायवासमज्झे वसति, तेवट्ठिं च पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसमाणे लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ, चोवट्ठिं महिलागुणे, सिप्पसयं च कम्माणं, तिन्नि वि पयाहिआए उवदिसति, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचति, अभिसिंचित्ता पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं [जाव] वग्गूहिं, सेसं तं चेव [सव्वं] भाणियव्वं जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता, जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले, तस्स णं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे सुदंसणाए सिबियाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे जाव विणीयं रायहाणिं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ,
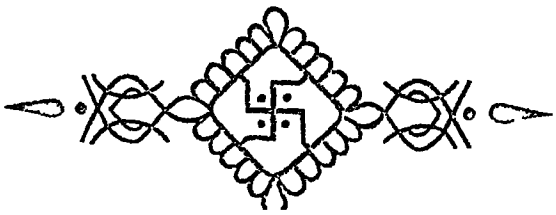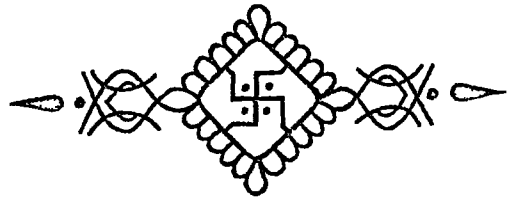
महाराजा की अवस्था में रहते हैं। त्रेसठ लाख पूर्व तक महाराजा (सम्राट्) के रूप में रहते हुए उन्होंने लेखन-कला, गणित-कला आदि से लेकर शकुनरुत कला (पक्षियों की आवाज से शुभाशुभ कथन) पर्यन्त बहत्तर कलाएं, महिलाओं के चौसठ गुण (कलाएं) और सौ प्रकार के शिल्पकर्म, ये तीनों वस्तुएं प्रजा के हित के लिये उपदेश दीं, प्रजा को सिखाईं। प्रजा को कलाओं में शिक्षित कर उन्होंने सौ राज्यों में सौ पुत्रों का राज्याभिषेक किया। सौ पुत्रों का राज्याभिषेक करने के पश्चात् जीतकल्पी लोकान्तिक देव उनके पास आते हैं और इष्ट [यावत्] हृदयाह्लादक वाणी द्वारा भगवान् से प्रार्थना करते हैं इत्यादि शेष [समग्र] कथन पूर्वकथित वर्णन के समान ही यहां कहना चाहिए, यावत् प्रार्थियों को दान देते हैं। जब ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष चैत्र कृष्ण चल रहा था तब उस चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन, पिछले पहर में, जिनके पीछे मार्ग में देव, दानव और मानवों का विशाल समुदाय चल रहा है ऐसे कौशलिक अर्हत् ऋषभ सुदर्शना नामक शिविका में बैठकर यावत् विनीता (अयोध्या) नाम की राजधानी के मध्य-मध्य में होकर निकलते हैं। निकल कर जहां सिद्धार्थवन नामक उद्यान है और जहां उत्तम अशोक का वृक्ष है वहां आते हैं।

During this period he taught his subjects the seventy two arts, of which mathematics is the chief art; the list of these arts begins with the art of writing and ends with the art of understanding bird-calls. He also taught the sixty-four womanly accomplishments, the hundred skills and the three occupations.

At last he gave up his throne to his hundred sons and gifted away all his wealth. Then, on the eighth day of the first fortnight, which was the dark half of the first summer month of *Caitra*, when the day was approaching evening, Arhat Ṛṣabha left his palace in the litter called *Sudarśanā*. He was followed on his way by gods, men and demons. He journeyed through the middle of his capital and reached the park called Siddhārthavana. Here he came to a great *aśoka* tree.
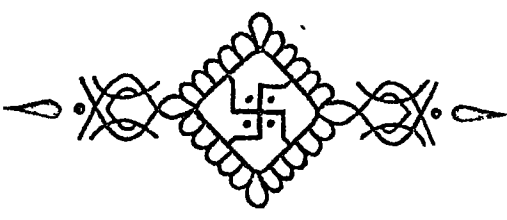
तेणेव उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे जाव सयमेव चउमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं खत्तियाणं च चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वईए ॥१९५॥

उसभे णं अरहा कोसलिए एगं वाससहस्सं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जाव अप्पाणं भावेमाणस्स एक्कं वाससहस्सं विइक्कंतं, तओ णं जे से हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुणबहुले, तस्स णं फग्गुणबहुलस्स एक्कारसीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि पुरिमतालस्स नगरस्स [बहिया] सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणं-

वहां आकर उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे यावत् स्वयमेव चार मुष्टि लुंचन करते हैं। चतुर्मुष्टि लोच कर, जल रहित छट्ठभक्त (दो उपवास) कर, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का योग आने पर, उग्रवंशीय, भोगवंशीय, राजन्यवंशीय और क्षत्रियवंशीय चार हजार पुरुषों के साथ, एक देवदूष्य को धारण कर, मुण्डित होकर, गृह त्यागकर, अनगारत्व स्वीकार करते हैं।
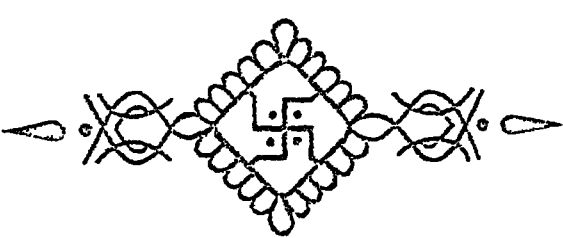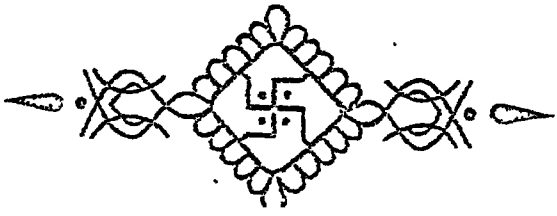
१९६. कौशलिक अर्हत् ऋषभ एक हजार वर्ष तक शरीर की ओर से सर्वदा उदासीन और अनासक्त रहे, यावत् आत्मा को भावित करते हुए उन्हें एक हजार वर्ष व्यतीत हो गए। उसके पश्चात् जब हेमन्त ऋतु का चतुर्थ मास, सातवां पक्ष फाल्गुन कृष्ण चल रहा था तब उस फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन, पूर्वाह्न काल में, पुरिमताल नगर के [बाहर] शकटमुख नामक उद्यान में, श्रेष्ठ वट वृक्ष के नीचे, जलरहित अष्टम भक्त (तीन उपवास) करते हुए, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का योग आने पर, ध्यान मुद्रा

He then alighted, shed all his finery and plucked out his hair in four handfuls. He became a homeless mendicant and put on a holy robe. He undertook a vow to partake of only one meal, without water, out of every six regular meals. With him, as his companions, were four thousand fearless and noble *kṣatriyas* and men of royal lineage.

196. Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, remained steadfast in an attitude of 'giving up the body' (*utsṛṣṭakāya*) and 'renouncing the body' (*tyakta-deha*) for a period of a thousand years. He meditated on the self and attained the ultimate and infinite *kevala*-knowledge on the eleventh of the dark fortnight of the month of *Phālguna*, that is, the seventh fortnight of the fourth month of the winter season. The event occurred during the early hour of the day, when Arhat Ṛṣabha was sitting in meditation under a great *nyagrodha* tree in the park called Śakaṭamukha in the outskirts of the town of Purimatāla. Arhat Ṛṣabha was, at that time, observing the vow of eating only one meal,
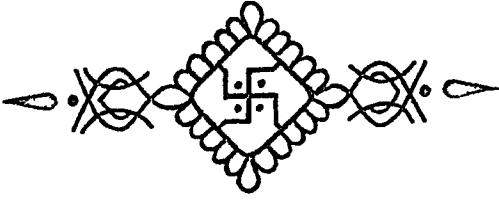
तरियाए वट्टमाणस्स अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।१९६।

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासीति गणा, चउरासीइं गणहरा होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बंभी-सुंदरिपामोक्खाणं अज्जियाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया हुत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सिज्जंसपामोक्खाणं समणोवासयाणं तिण्णि सयसाहस्सीओ पंच सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सुभद्दापामोक्खाणं समणोवासियाणं पंच सयसाहस्सीओ चउपण्णं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चत्तारि सहस्सा
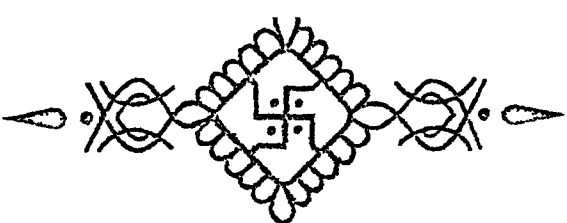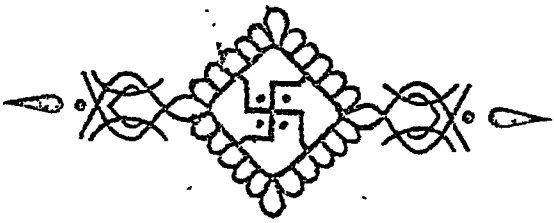
में रहे हुए कौशलिक अर्हत् ऋषभ को अनन्त यावत् श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। उससे वे समस्त लोक के भावों को जानते हुए, देखते हुए विचरते हैं।

१९७. कौशलिक अर्हत् ऋषभ के चौरासी गण और चौरासी गणधर थे।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के ऋषभसेन प्रमुख चौरासी हजार श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के ब्राह्मी, सुन्दरी प्रमुख तीन लाख आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिका सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के श्रेयांस प्रमुख तीन लाख पांच हजार श्रमणोपासकों की उत्कृष्ट श्रमणोपासक सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के सुभद्रा प्रमुख पांच लाख चौपन हजार श्रमणोपासिकाओं की उत्कृष्ट श्रमणोपासिका सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के जिन नहीं किन्तु जिन के समान ऐसे चार हजार

without water, out of eight regular meals. The moon was *in conjunction with* the constellation *uttarāṣāḍhā*.

197. Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, had under him eighty-four *gaṇas* and an equal number of *gaṇadharas*.

He had an excellent congregation of eighty four thousand monks. Ṛṣabhasena was their chief.

He had a congregation of three hundred thousand nuns. Brāhmī and Sundarī were their chief.

He had a community of three hundred and five thousand men who were his lay-followers. Śreyāṁsa was their chief.

He had a community of five hundred and fifty four thousand women lay-followers. Subhadrā was their chief.
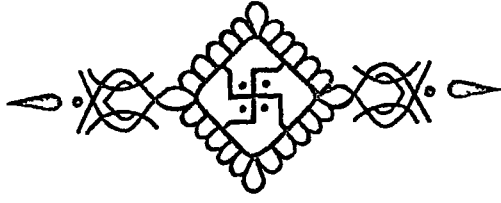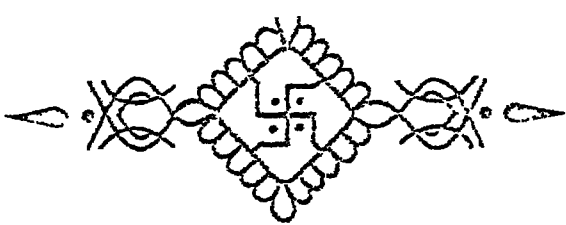
सत्त सया पण्णासा चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स नव सहस्सा ओहिनाणीणं उक्कोसिया ओहिनाणिसंपया हुत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीस सहस्सा केवलनाणीणं उक्कोसिया केवलनाणिसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीस सहस्सा छच्च सया वेउव्वियाणं उक्कोसिया वेउव्विसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बारस सहस्सा छच्च सया पण्णासा विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं [पासमाणाणं] उक्कोसिया विउलमइसंपया होत्था। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बारस सहस्सा छच्च सया पण्णासा वाईणं उक्कोसिया वाईणसंपया हुत्था। उसभस्स
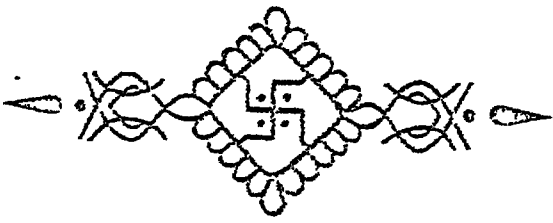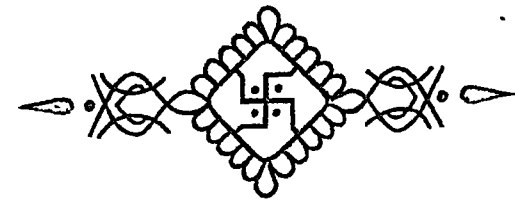
सात सौ पचास चौदह पूर्वधारियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के नौ हजार अवधिज्ञान-धारकों की उत्कृष्ट अवधिज्ञानी सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के वीस हजार केवलज्ञानधारकों की उत्कृष्ट केवलज्ञानी सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के वीस हजार छह सौ वैक्रिय-लब्धिधारकों की उत्कृष्ट वैक्रियलब्धिधारी सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में रहने वाले पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रियों के मनोगत भावों को जानने [और देखने वाले] ऐसे बारह हजार छह सौ पचास विपुलमति ज्ञान के धारकों की उत्कृष्ट विपुलमति सम्पदा थी।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के बारह हजार छह सौ पचास वादियों की उत्कृष्ट वादी सम्पदा थी।

He had a group of four thousand seven hundred and fifty sages who were versed in all the fourteen sacred *Pūrva*-treatises. Though not Tīrthaṅkaras, these sages were almost like Tīrthaṅkaras.

He had a group of nine thousand disciples who had attained *avadhi*-knowledge. He had a group of twenty thousand disciples who had attained *kevala*-knowledge. He had a group of twenty thousand and six hundred disciples who had the power of occult transformation.

He had a group of twelve thousand six hundred and fifty exceedingly wise persons. These persons could know and see the inner thoughts of all beings who are possessed of five sense-organs and who live in the oceans or in the expanse of two-and-a-half continents.

He had a group of twelve thousand six hundred and fifty logicians, a group of twenty thousand-

णं अरहओ कोसलियस्स वीसं अंतेवासिसहस्सा सिद्धा, चत्तालीसं अज्जियासहस्साओ सिद्धाओ। उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स बावीस सहस्सा नव सया अणुत्तरोववाइयाणं जाव आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था ॥१९७॥

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स दुविहा अंतगडभूमी होत्था, तंजहा—जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य। जाव असंखेज्जाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी, अंतोमुहुत्तपरियाए अंतमकासी ॥१९८॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता णं, तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसित्ता णं, तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता णं, एगं वाससहस्सं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता, [एगं पुव्वसय-

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के वीस हजार अन्तेवासी शिष्य श्रमण सिद्ध हुए और चालीस हजार अन्तेवासिनी आर्याएं सिद्ध हुईं।
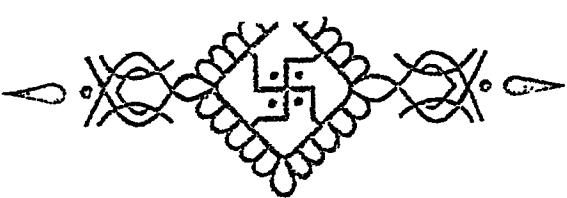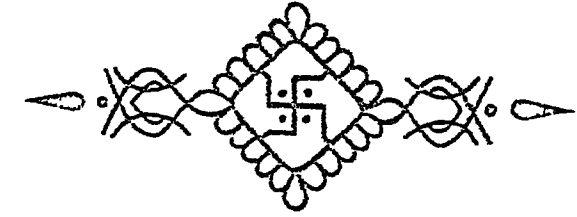
कौशलिक अर्हत् ऋषभ के बाईस हजार नौ सौ कल्याण-गति वाले यावत् भविष्य में कल्याण प्राप्त करने वाले ऐसे अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले एकावतारियों की उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक सम्पदा थी।

१६८. कौशलिक अर्हत् ऋषभ के समय में अन्तकृत् भूमि दो प्रकार की थी। यथा - युगान्तकृत् भूमि और पर्यायान्तकृत् भूमि। श्री ऋषभ के निर्वाण के बाद असंख्य युगपुरुषों तक मोक्षमार्ग चालू रहा, यह युगान्तकृत्भूमि हुई। श्री ऋषभ को कैवल्यलाभ होने के अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ हुआ, यह पर्यायान्तकृत् भूमि हुई।

१६६. उस काल और उस समय कौशलिक अर्हत् ऋषभ वीस लाख पूर्व वर्ष पर्यन्त कुमार अवस्था में रहे। वे त्रेसठ लाख पूर्व वर्षों तक महाराजा (सम्राट्) के रूप में रहे। वे तयांसी लाख पूर्व तक गृहवास में रहे। वे एक हजार वर्ष पर्यन्त छद्मस्थ श्रमण पर्याय में रहे। [वे एक हजार वर्ष न्यून

men-disciples and fourty thousand women-disciples who had attained perfection.

Among his disciples there were twelve thousand and nine hundred persons who were in their final birth.

198. Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, had instituted a two-fold time-phase for the attainment of the ultimate perfection: an epoch unit *(yugāntakṛtabhūmi)* and a serial unit *(paryāyāntakṛtabhūmi)*. The epoch unit lasted for innumerable generations after him and the serial unit began a *muhūrta* after he attained *kevala*-knowledge.

199. In that epoch, in those times, Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, lived the life of a prince for two million *pūrva* years and ruled as a king for six million and three hundred thousand *pūrva* years; he thus lived as a house-holder for a total of eight million and three hundred thousand *pūrva* years. He dwelt in a state of partial ignorance for a thousand years. He dwelt in a state of *kevala*
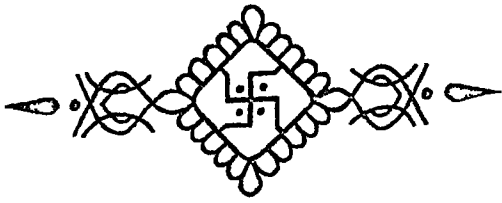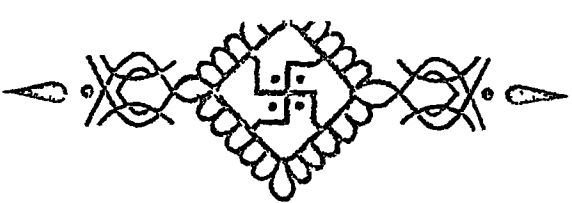
सहस्सं वाससहस्सूणं केवलिपरियायं पाउणित्ता,] संपुण्णं पुव्वसय-सहस्सं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते, इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले तस्स णं माहबहुलस्स (ग्रं. ९००) तेरसीपक्खेणं उप्पिं अट्ठावयसेलसिहरंसि दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं चउद्दसमेणं भत्तेणं अप्पाणएणं अभीइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि संपलियंकनिसण्णे कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥१९९॥

उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स कालगयस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स तिण्णि वासा अद्धनवमा य मासा विइक्कंता, तओ वि

एक लाख पूर्व तक केवली पर्याय में रहे।] वे संपूर्ण एक लाख पूर्व तक श्रमण पर्याय में रहे। कौशलिक ऋषभ चौरासी लाख पूर्व पर्यन्त पूर्णायु का पालन कर, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म के क्षीण होने पर, 'इसी अवसर्पिणी के सुषम-दुषम नामक तीसरे आरे के बहुत कुछ व्यतीत हो जाने पर और इस तीसरे आरे के मात्र तीन वर्ष साढ़े आठ महीने शेष रहने पर, जब हेमन्त ऋतु का तीसरा महीना, पांचवां पक्ष माघ कृष्ण चल रहा था तब उस माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन, अष्टापद पर्वत के शिखर पर, दश हजार श्रमणों के साथ जल रहित चतुर्दश भक्त (छह उपवास) तप करते हुए, अभिजित नक्षत्र का योग आने पर, पूर्वाह्न काल में, पल्यंकासन में बैठे हुए भगवान् कालधर्म को प्राप्त हुए। समस्त प्रकार के दुःखों से पूर्णरूपेण मुक्त हुए।

२००. कौशलिक अर्हत् ऋषभ को निर्वाण प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःख-रहित होने के बाद तीसरे आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ महीने व्यतीत हो गए और उसके बाद

knowledge for a hundred thousand *pūrva* years, minus a thousand years. He thus lived as a *śramaṇa* for a full hundred thousand years and his total span of life comprised eight million and four hundred thousand *pūrva* years.

Then, after his *karmas* arising due to name, *gotra* and a man's allotted span of life and consciousness were extinguished, he attained *parinirvāṇa* and passed away into a state beyond all pain. A major part of the *susama-duḥṣama* phase of the present *avasarpiṇī* was over; a period of only three years eight-and-a-half months of this phase remained, when on the thirteenth of the dark-half of *Māgha*, that is, the third month and the fifth fortnight of the winter season, Arhat Ṛṣabha, the Kośalin, attained *parinirvāṇa*, while sitting cross-legged in meditation on the summit of mount Aṣṭāpada. The time was forenoon. The moon was in conjunction with the constellation *abhijit*. Arhat Ṛṣabha was practising the vow of taking one meal, without water, out of fourteen regular meals. He had with him the company of ten thousand homeless mendicants.

परं एगा य सागरोवम-कोडाकोडी तिवास-अद्धनवमासाहिय-बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया विइक्कंता, एयंमि समए समणे भगवं महावीरे परिनिव्वुडे, तओ वि परं नव वाससया विइक्कंता, दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छति ॥२००॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, एक्कारस गणहरा होत्था ॥२०१॥

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ? समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे इंदभूई अणगारे गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ, मज्झिमए अग्गिभूई अणगारे गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएति, कणीयसे अणगारे वाउभूई नामेणं गोयमे गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएइ,
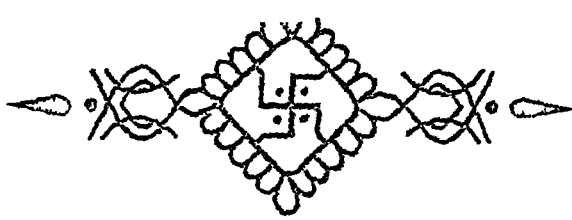
बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ महीने कम एक कोटा-कोटि सागरोपम का तीसरा आरा व्यतीत हो गया। उस समय श्रमण भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। महावीर निर्वाण के पश्चात् नौ सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और दशवीं शताब्दी का अस्सीवां वर्ष का समय चल रहा है।

स्थविरावली

२०१. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे।

२०२. हे भगवन्! यह किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे। उत्तर—श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ (शिष्य) गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार ने पांच सौ श्रमणों को वाचना दी थी। मध्यम (शिष्य) गौतम गोत्रीय अग्निभूति अनगार ने पांच सौ श्रमणों को वाचना दी थी। कनिष्ठ (शिष्य) गौतम गोत्रीय वायुभूति अनगार ने पांच सौ श्रमणों को वाचना दी थी।

200. Three years, eight-and-a-half months elapsed after Arhat Ṛṣabha attained *parinirvāṇa;* thereafter, another crore of a crore *sāgaropamas*, minus forty-two thousand and three years eight-and-a-half months also elapsed, when Bhagavān Mahāvīra attained *parinirvāṇa*, after which nine full centuries have now elapsed, and of the tenth this is the eightieth year.

Sthavirāvalī

201. In those times, in those days, Bhagavān Mahāvīra had eleven *gaṇadharas* and nine *gaṇas*.

202. And why, now, is it being said that Bhagavān Mahāvīra had eleven *gaṇadharas* and nine *gaṇas*? The eldest monk-disciple of *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra, was the mendicant Indrabhūti, of the Gotama *gotra*. A group of five hundred ascetics studied under him.

Agnibhūti, also of the Gotama *gotra*, occupied the middle position among Bhagavān Mahāvīra's *gaṇadharas*. He too, had a group of five hundred ascetics who studied under him.

Vāyubhūti was the youngest *gaṇadhara*. He, too, was of the Gotama *gotra* and he, too, had a group of five hundred ascetics whom he had taught.
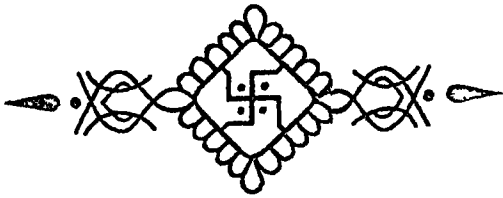
थेरे अज्जवियत्ते भारद्दाए गोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएंति, थेरे अज्जसुहम्मे अग्गिवेसायणगोत्तेणं पंच समणसयाइं वाएंति, थेरे मंडियपुत्ते वासिट्ठे गोत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएंति, थेरे मोरियपुत्ते कासवगोत्तेणं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे अकंपिए गोयमे गोत्तेणं थेरे अयलभाया हारियायणे गोत्तेणं
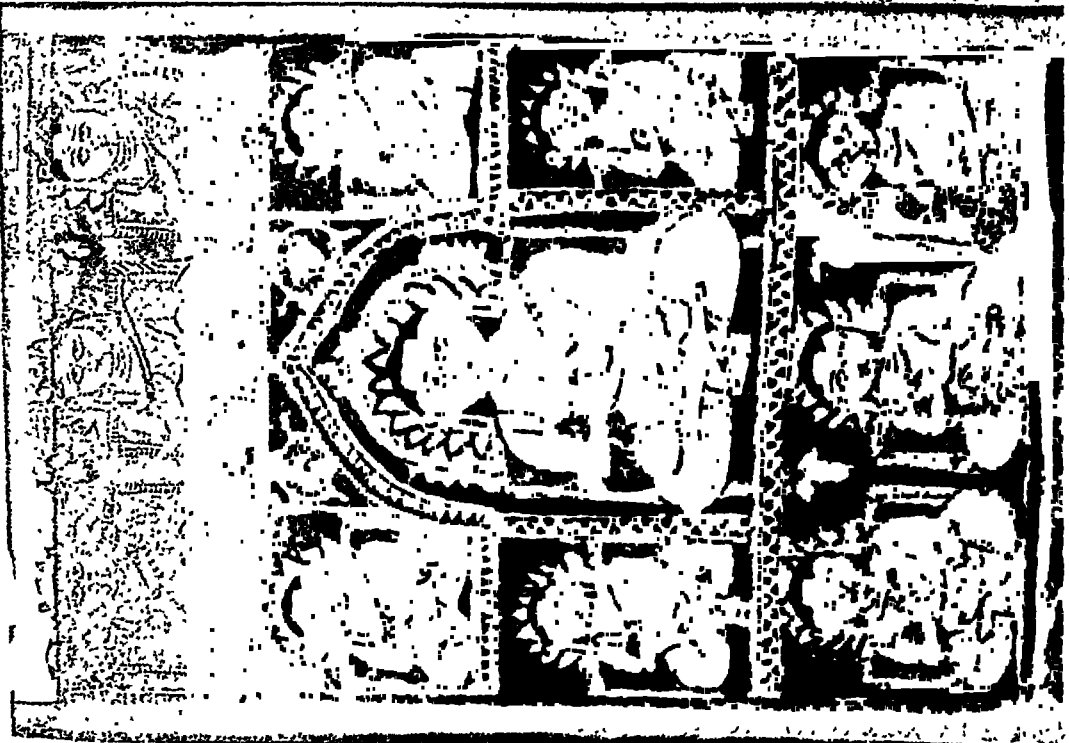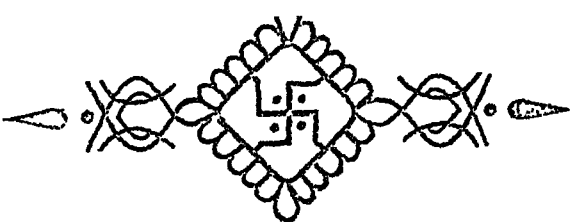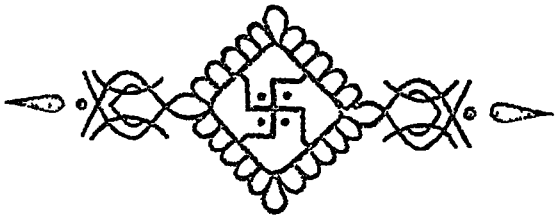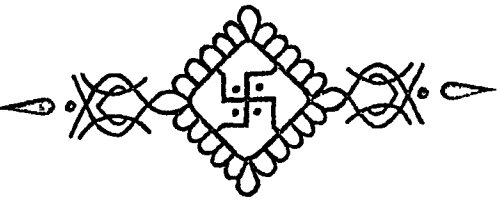
भारद्वाज गोत्रीय स्थविर आर्य व्यक्त ने पांच सौ श्रमणों को वाचना दी थी। अग्निवैशायन गोत्रीय स्थविर आर्य सुधर्म ने पांच सौ साधुओं को वाचना दी थी। वासिष्ठ गोत्रीय स्थविर मण्डितपुत्र ने साढ़े तीन सौ श्रमणों को वाचना दी थी। काश्यप गोत्रीय स्थविर मौर्यपुत्र ने साढ़े तीन सौ अनगारों को वाचना दी थी। गौतम गोत्रीय स्थविर अकम्पित ने और हारितायन गोत्रीय स्थविर अचलभ्राता–

Then there was Sthavira Ārya Vyakta, of the Bhāradvāja *gotra*, with five hundred ascetics; Sthavira Ārya Sudharma, of the Agniveśāyana *gotra*, also with five hundred ascetics; .Sthavira Maṇḍitaputra, of the Vasiṣṭha *gotra*, with three hundred and fifty ascetics, and Sthavira Maurya-putra, of the Kāśyapa *gotra*, also with three hundred and fifty ascetics. Sthavira Akampita, of the Gotama *gotra*, and Sthavira Acalabhrātā of the Hārītāyana gotra,
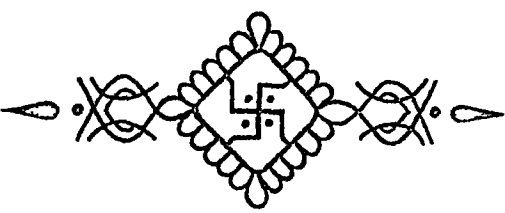
एते दोण्णि वि थेरा तिण्णि तिण्णि समणसयाइं वायंति, थेरे मेअज्जे थेरे प्पभासे एए दोण्णि वि थेरा कोडिन्ना गोत्तेणं तिण्णि तिण्णि समणसयाइं वायंति । से तेणं अट्ठेणं अज्जो ! एवं वुच्चइ—समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, एक्कारस गणहरा होत्था ॥२०२॥

सव्वे वि एते समणस्स भगवओ महावीरस्स एक्कारस वि गणहरा दुवालसंगिणो चउद्दसपुव्विणो समत्तगणिपिडगधरा रायगिहे नगरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं कालगया जाव सव्वदुक्खप्पहीणा । थेरे इंदभूई, थेरे अज्जसुहम्मे सिद्धिं गए महावीरे पच्छा दोण्णि वि थेरा परिनिव्वुया ॥२०३॥ जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति, एते णं सव्वे अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स आवच्चिज्जा, अवसेसा गणहरा निरवच्चा वोच्छिन्ना ॥२०४॥

प्रत्येक ने तीनसौ-तीनसौ श्रमणों को वाचना दी थी। कौडिन्य गोत्रीय स्थविर मेतार्य और स्थविर प्रभास प्रत्येक ने तीन सौ-तीन सौ साधुओं को वाचना दी थी। हे आर्य! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे। अर्थात् अकम्पित और अचलभ्राता की एक वाचना होने से और मेतार्य एवं प्रभास की एक वाचना होने से कुल नौ वाचनायें होती हैं। एतदर्थ नौ गण माने गये हैं।
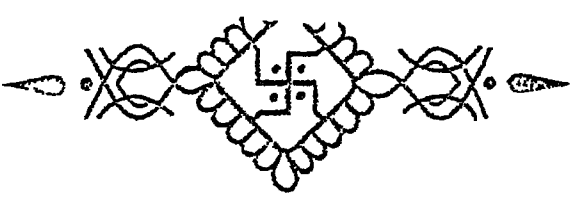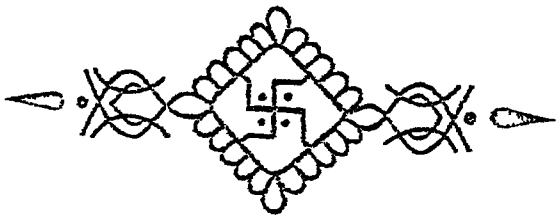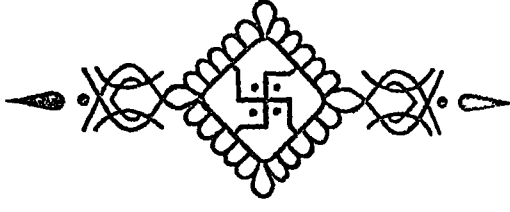
both taught a group of three hundred ascetics each. The Sthaviras Metārya and Prabhāsa were both of the Kauṇḍinya *gotra* and each taught a group of three hundred ascetics. For this reason, dear Sirs, is it being said that Bhagavān Mahāvīra had nine *gaṇas* and eleven *gaṇadharas*.

२०३. श्रमण भगवान् महावीर के ये समस्त ग्यारह गणधर द्वादशांगी और चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता थे तथा समस्त गणिपिटक के धारक थे। ये समस्त राजगृह नगर में जलरहित मासिक-भक्त तप (अनशन) करके कालधर्म (निर्वाण) को प्राप्त हुए, यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हुए। स्थविर इन्द्रभूति और स्थविर आर्य सुधर्म नामक दोनों गणधर भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद मुक्ति को गए।

203. All the eleven *gaṇadharas* and the nine *gaṇas* under Bhagavān Mahāvīra were versed in the twelve *Aṅga* and the fourteen *Pūrva* sacred-treatises; they knew the entire doctrine of the *gaṇins*. They all breathed their last in the city of Rājagṛha, after practising *the vow of taking one* meal, without water, in a whole month. They, then, attained *parinirvāṇa*, reaching a state beyond pain. Sthavira Indrabhūti and Sthavira Ārya Sudharma were liberated after the *parinirvāṇa* of Bhagavān Mahāvīra.

२०४. आज-कल ये जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरण करते हैं वे सब आर्य सुधर्म अनगार की सन्तानें हैं। शेष दसों गणधरों की अपत्य-शिष्य परम्परा पृथक् न चलने से व्युच्छेद हो गई।

204. The present *nirgrantha* monks are all spiritual descendants of the ascetic Ārya Sudharma; the other *gaṇadharas* have left no descendants.
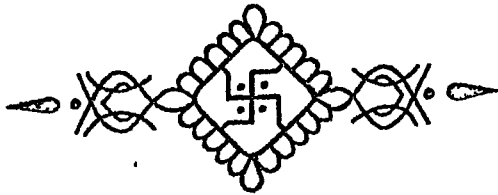
समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते णं। समणस्स भगवओ महा-वीरस्स कासवगोत्तस्स अज्जसुहम्मे थेरे अंतेवासी अग्गिवेसायणगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसुहम्मस्स अग्गिवेसायणगुत्तस्स अज्जजंबू [नामे] थेरे अंतेवासी कासवगोत्ते। थेरस्स णं अज्जजंबुणामस्स कासवगोत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जप्प-भवस्स कच्चायणसगोत्तस्स अज्जसिज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसिज्जंभवस्स मणगपिया वच्छस-गोत्तस्स अज्जजसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगियायणसगोत्ते ॥२०५॥

संखित्तवायणाए अज्जजसभद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया, तंजहा—थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगोत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा—थेरे अज्जसंभूयविजए माढरसगोत्ते, थेरे अज्जभद्दबाहू पाईण-
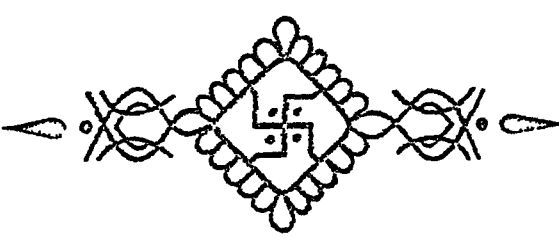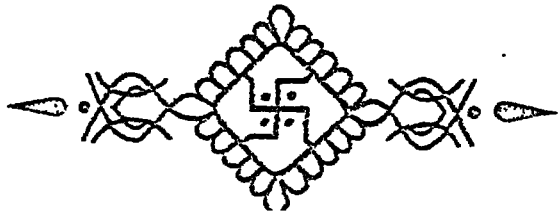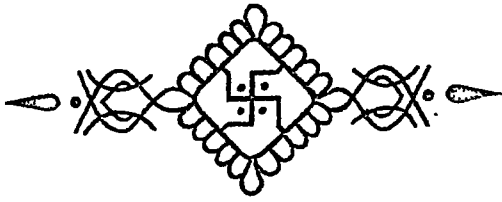
२०५. श्रमण भगवान् महावीर काश्यप गोत्रीय थे। काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी स्थविर आर्य सुधर्म अग्निवैशायन गोत्रीय थे।

अग्निवैशायन गोत्रीय स्थविर आर्य सुधर्म के अन्तेवासी आर्य जम्बू नामक स्थविर काश्यप गोत्रीय थे।

काश्यप गोत्रीय आर्य जम्बू नामक स्थविर के अन्तेवासी स्थविर आर्य प्रभव कात्यायन गोत्रीय थे।

कात्यायन गोत्रीय स्थविर आर्य प्रभव के अन्तेवासी स्थविर आर्य शय्यम्भव वत्स गोत्रीय थे। आर्य शय्यम्भव मनक के पिता थे।

मनक पिता, वत्स गोत्रीय आर्य शय्यम्भव के अन्तेवासी स्थविर आर्य यशोभद्र तुंगियायन गोत्रीय थे।

२०६. आर्य यशोभद्र के आगे की स्थविर-परम्परा संक्षिप्त वाचना के द्वारा इस प्रकार कही गई है। यथा – तुंगियायन गोत्रीय स्थविर आर्य यशोभद्र के दो स्थविर अन्तेवासी थे– १. माढर गोत्रीय स्थविर आर्य सम्भूतविजय, और २. प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु।

205. *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra was of the Kāśyapa *gotra.* His disciple Sthavira Ārya Sudharma was of the Agniveśāyana *gotra.* Ārya Jambū, the disciple of Ārya Sudharma was of the Kāśyapa *gotra.* Sthavira Ārya Prabhava, the disciple of Ārya Jambū, was of the Kātyāyana *gotra.* Ārya Śayyambhava, the disciple of Ārya Prabhava, was of the Vatsa *gotra.* Ārya Śayyambhava was the father of Manaka. Sthavira Yaśobhadra, the disciple of Ārya Śayyambhava, was of the Tuṅgiyāyana *gotra.*

206. The brief list of the *sthaviras* after Ārya Yaśobhadra is recorded as follows :

Sthavira Ārya Yaśobhadra had two disciples: Sthavira Ārya Sambhūtavijaya of the Māḍhara *gotra* and Sthavira Ārya Bhadrabāhu of the Prācīnā *gotra.*
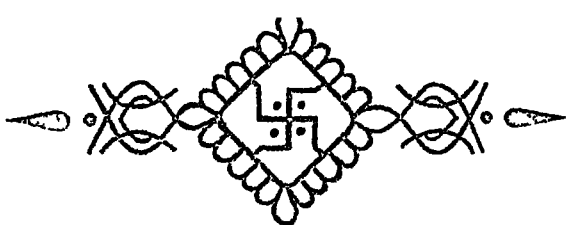
सगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसंभूय-
विजयस्स माढरसगोत्तस्स अंते-
वासी थेरे अज्जथूलभद्दे गोयम-
सगोत्ते। थेरस्स णं अज्जथूल-
भद्दस्स गोयमसगोत्तस्स अंते-
वासी दुवे थेरा—थेरे अज्ज-
महागिरी एलावच्चसगोत्ते,
थेरे अज्जसुहत्थी वासिट्ठ-
सगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसुह-
त्थिस्स वासिट्ठसगोत्तस्स अंते-
वासी दुवे थेरा सुट्ठिय-सुप्पडि-

माढर गोत्रीय स्थविर आर्य सम्भूतविजय के शिष्य स्थविर आर्य स्थूलभद्र गौतम गोत्रीय थे।

गौतम गोत्रीय आर्य स्थूलभद्र के दो स्थविर अन्तेवासी थे – १. एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि, और २. वासिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति।

वासिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति के दो स्थविर अन्तेवासी थे – १. सुस्थित, और २. सुप्रतिबुद्ध।
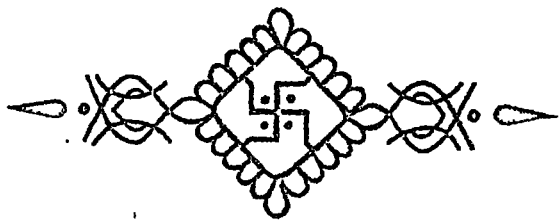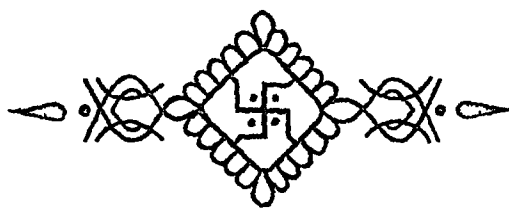
Sthavira Ārya Sthūlabhadra, of the Gotama *gotra* was the disciple of Ārya Sambhūtavijaya.

Ārya Sthūlabhadra had two disciples: Sthavira Ārya Mahāgiri of the Elāpatya *gotra* and Sthavira Ārya Suhastin of the Vasiṣṭha *gotra*.

Ārya Suhastin had two disciples : Susthita and Supratibuddha.
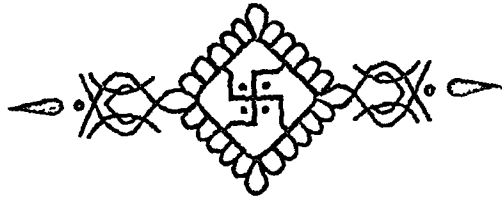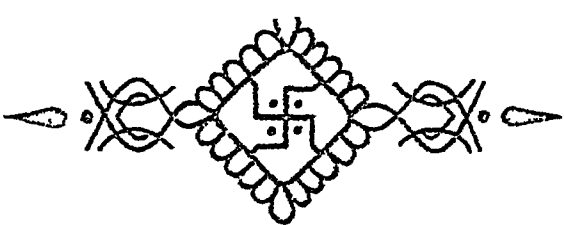
बुद्धा कोडियकाकंदगा वग्घावच्चसगोत्ता। थेराणं सुट्ठिय-सुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्जइंददिन्ने कोसियगोत्ते। थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जदिन्ने गोयमसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते। थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जातिसरस्स कोसियगोत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्ज-वइरे गोयमसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगोत्तस्स अंते-वासी चत्तारि थेरा—थेरे अज्जनाइले, थेरे अज्जपोमिले, थेरे अज्ज-जयंते, थेरे अज्जतावसे। थेराओ अज्जनाइलाओ अज्जनाइला साहा निग्गया, थेराओ अज्जपोमिलाओ अज्जपोमिला साहा निग्गया, थेराओ अज्जजयंताओ अज्जजयंती साहा निग्गया, थेराओ
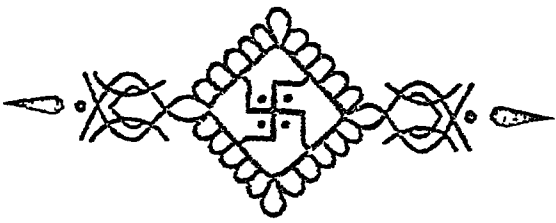
ये दोनों कोटिक-काकन्दक कहलाते थे और दोनों ही व्याघ्रापत्य गोत्र के थे।
व्याघ्रापत्य गोत्रीय कोडियकाकन्दक नाम से प्रसिद्ध स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध के अन्तेवासी स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न कौशिक गोत्रीय थे। कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न के अन्तेवासी स्थविर आर्य दिन्न गौतम गोत्रीय थे।
गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य दिन्न के अन्तेवासी स्थविर आर्य सिंहगिरि कौशिक गोत्रीय थे और इन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ था।
कौशिक गोत्रीय जातिस्मरण ज्ञानधारक स्थविर आर्य सिंहगिरि के अन्तेवासी स्थविर आर्य वज्र गौतम गोत्रीय थे।
गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य वज्र के चार स्थविर अन्तेवासी थे – १. स्थविर आर्य नागिल, २. स्थविर आर्य पोमिल (पद्मिल), ३. स्थविर आर्य जयन्त और ४. स्थविर आर्य तापस।
स्थविर आर्य नागिल से आर्य नागिला शाखा निकली
स्थविर आर्य पोमिल से आर्य पोमिला शाखा निकली।
स्थविर आर्य जयन्त से आर्य जयन्ती शाखा निकली।
स्थविर

Both were known as Koṭika. Kākandaka. They were of the Vyāghrāpatya *gotra*. Their disciple was Sthavira Indradinna of the Kauśika *gotra*. Ārya Indradinna's disciple was Sthavira Āryadinna of the Gotama *gotra*.

Āryadinna's disciple was Ārya Siṁhagiri of the Kauśika *gotra*. Arya Siṁhagiri had the power of recollecting past lives.

Ārya Siṁhagiri's disciple was Sthavira Ārya Vajra of the Gotama *gotra*.

Ārya Vajra had four disciples : Sthavira Ārya Nāgila, Sthavira Ārya Padmila, Sthavira Ārya Jayanta and Sthavira Ārya Tāpasa.

These four founded the following *śākhās* : Āryanāgilā *śākhā*, Āryapadmilā *sākhā*, Āryajayantī *sākhā* and Āryatāpasī *śākhā*.
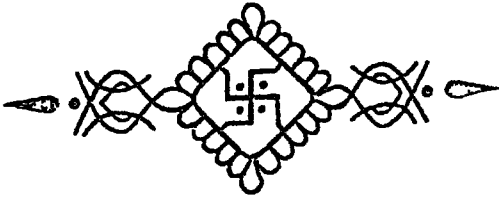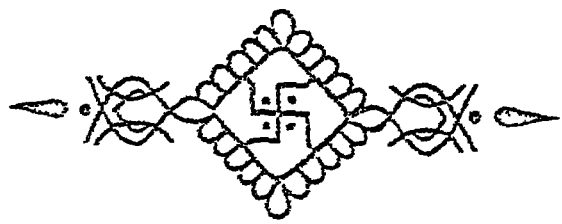
अज्जतावसाओ अज्जतावसी साहा निग्गया इति ॥२०६॥

वित्थरवायणाए पुण अज्जजसभद्दाओ परतो थेरावली एवं पलोइज्जइ, तं जहा—थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स तुंगियायणसगोत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा—थेरे अज्जभद्दबाहू पाईणसगोत्ते, थेरे अज्जसंभूयविजए माढरसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जभद्दबाहुस्स पाईणसगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा—थेरे गोदासे, थेरे अग्गिदत्ते, थेरे जण्णदत्ते, थेरे सोमदत्ते कासवगोत्तेणं। थेरेहिंतो णं गोदासेहिंतो कासवगोत्तेहिंतो एत्थ णं गोदासे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा—तामलित्तिया, कोडीवरिसिया, पोंडवद्धणिया, दासीखब्बडिया ॥२०७॥
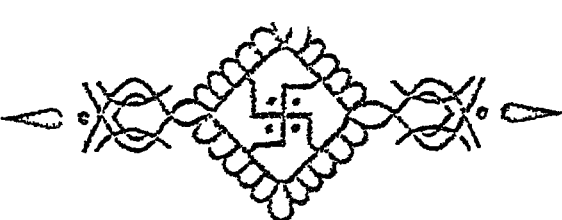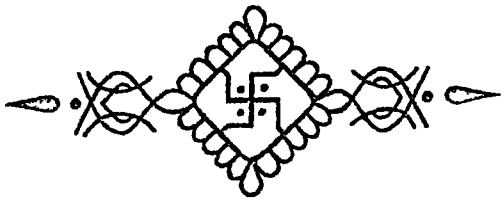
आर्य तापस से आर्य तापसी शाखा निकली।

२०७. अब पुनः विस्तृत वाचना द्वारा आर्य यशोभद्र के आगे की स्थविर-परम्परा इस प्रकार दृष्टिगोचर होती है। यथा – तुंगियायन गोत्रीय स्थविर आर्य यशोभद्र के पुत्र-समान ये दो प्रख्यात स्थविर अन्तेवासी थे, यथा – १. प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु और २. माढर गोत्रीय स्थविर आर्य सम्भूतिविजय।

प्राचीन गोत्रीय स्थविर आर्य भद्रबाहु के पुत्र समान ये चार प्रसिद्ध स्थविर अन्तेवासी हुए, यथा – १. स्थविर गोदास, २. स्थविर अग्निदत्त, ३. स्थविर यज्ञदत्त और ४. स्थविर सोमदत्त। ये चारों स्थविर काश्यप गोत्रीय थे।

काश्यप गोत्रीय स्थविर गोदास से यहां गोदासगण नामक गण निकला। इस गण की चार शाखायें इस प्रकार कही जाती हैं। यथा – १. ताम्रलिप्तिका २. कोटिवर्षीया, ३. पौण्ड्रवर्द्धनिका, और ४. दासी-कर्पटिका।

207. In the detailed list, the *sthavira*-tradition after Ārya Yaśobhadra is recorded as follows :

Ārya Yaśobhadra had two disciples who were as dear to him as his own sons. They were : Ārya Bhadrabāhu of the Prācīna *gotra* and Ārya Sambhūtavijaya of the Māḍhara *gotra.*

Ārya Bhadrabāhu had four disciples who were as dear to him as his own sons. They were : Sthavira Godāsa, Sthavira Agnidatta, Sthavira Yajñadatta and Sthavira Somadatta. All four were of the Kāśyapa *gotra.*

Sthavira Godāsa was the founder of the Godāsa *gana* which has the following four *śākhās* : Tāmraliptikā, Koṭivarṣīyā, Pāuṇḍravardhanikā and Dāsīkarpaṭikā.

थेरस्स णं अज्जसंभूइ-विजयस्स माढरसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहा-वच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा—नंदणभद्दे उवनंदे, थेरे तीसभद्द जसभद्दे। थेरे य सुमणभद्दे, मणिभद्दे पुण्णभद्दे य ॥ १ ॥ थेरे य थूलभद्दे, उज्जुमती जंबुनामधेज्जे य। थेरे य दीहभद्दे, थेरे तह पंडुभद्दे य ॥ २ ॥
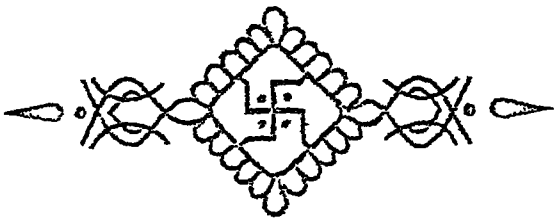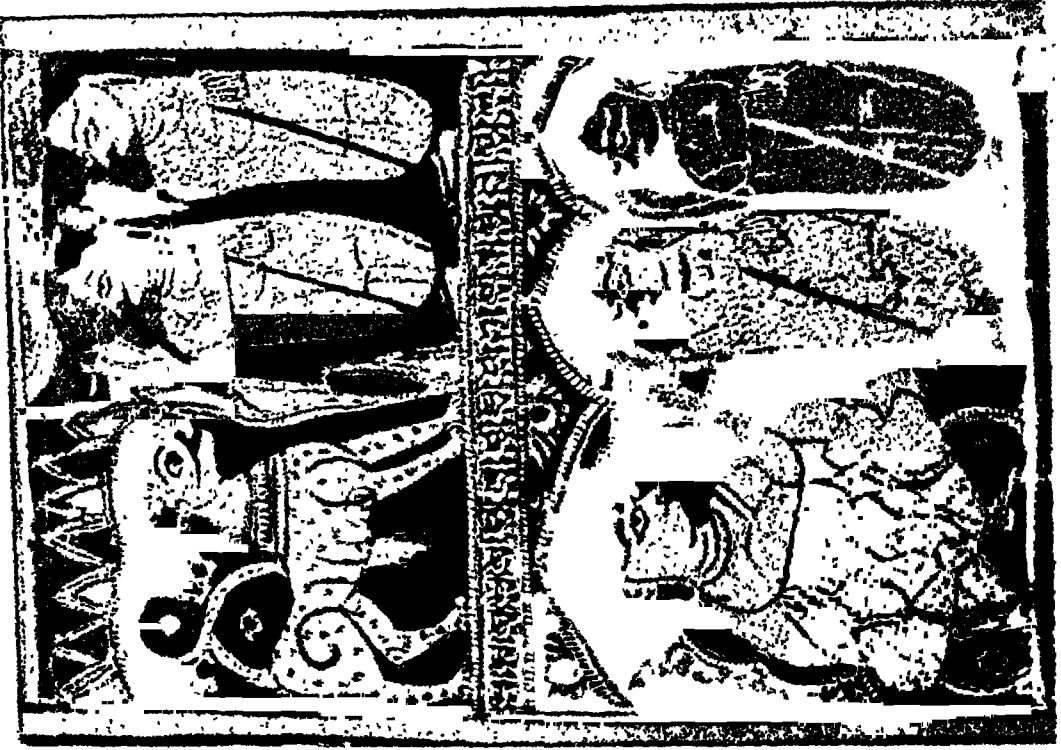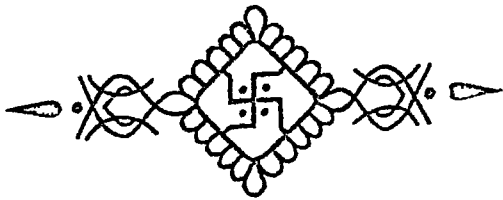
२०८. माढर गोत्रीय स्थविर आर्य सम्भूतिविजय के पुत्र-समान तथा प्रख्यात अन्तेवासी ये बारह स्थविर थे, यथा.—१. नन्दनभद्र, २. उपनन्द, ३. तिष्यभद्र, ४. यशोभद्र, ५. स्थविर सुमनोभद्र, ६. मणिभद्र, ७. पूर्णभद्र, ८. स्थविर स्थूलभद्र, ९. ऋजुमति, १०. जम्बु, ११. स्थविर दीर्घभद्र, और १२. स्थविर पाण्डुभद्र।

208. Sthavira Ārya Sambhūtivijaya, of the Māḍhara *gotra*, had twelve disciples, dear to him as sons. They were : Nandanabhadra, Upananda Tiṣyabhadra, Yaśobhadra, Sumanobhadra, Maṇibhadra, Pūrṇabhadra, Sthūlabhadra, Ṛjumati Jambū, Dīrghabhadra and Pāṇḍubhadra.
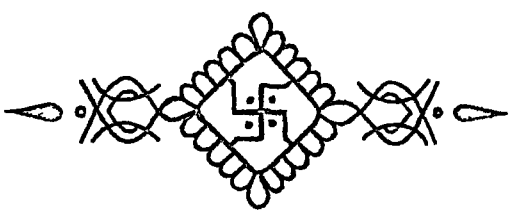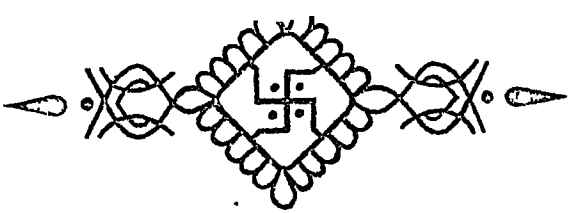
थेरस्स णं अज्जसंभूइविजयस्स माढरसगुत्तस्स इमाओ सत्त अंते-
वासिणीओ अहावच्चाओ अभिण्णायाओ होत्था, तंजहा—

जक्खा य जक्खदिण्णा, भूया तह चेव भूयदिण्णा य ।
सेणा वेणा रेणा, भगिणीओ थूलभद्दस्स ॥ १ ॥ ॥२०८॥

थेरस्स णं अज्जथूलभद्दस्स गोयमसगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा—थेरे अज्जमहागिरी एलावच्चसगोत्ते, थेरे अज्जसुहत्थी वासिट्ठसगोत्ते । थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगोत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा—थेरे उत्तरे, थेरे बलिस्सहे, थेरे धणड्ढे, थेरे सिरिड्ढे, थेरे कोडिन्ने, थेरे नागे, थेरे नागमित्ते, थेरे छलुए रोहगुत्ते कोसिए गोत्तेणं । थेरेहिंतो णं छलुएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ
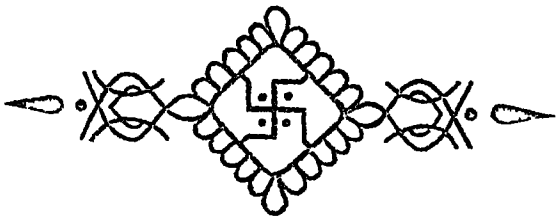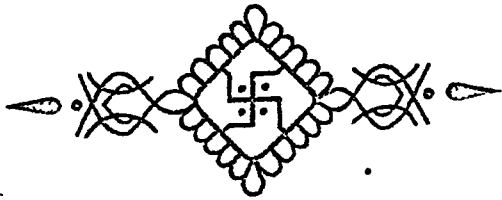
माढर गोत्रीय स्थविर आर्य सम्भूतिविजय के पुत्री-समान तथा प्रसिद्ध निम्नोक्त सात अन्तेवासिनियां थीं, यथा – १. यक्षा, २. यक्षदत्ता, ३. भूता, ४. भूतदत्ता, ५. सेणा, ६. वेणा, और ७. रेणा, ये सातों ही स्थूलभद्र की बहिनें थी।

२०९, गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य स्थूलभद्र के ये दो अन्तेवासी स्थविर पुत्र के समान तथा प्रसिद्ध थे, यथा – १. एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि और २. वासिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति।

एलापत्य गोत्रीय स्थविर आर्य महागिरि के पुत्र-समान तथा प्रख्यात ये आठ स्थविर अन्तेवासी थे, यथा – १. स्थविर उत्तर, २. स्थविर वलिस्सह, ३. स्थविर धनर्द्धि, ४. स्थविर शिरर्द्धि, ५. स्थविर कौण्डिन्य, ६. स्थविर नाग, ७. स्थविर नागमित्र, और ८. कौशिक गोत्रीय स्थविर पडुलूक रोहगुप्त।

कौशिक गोत्रीय स्थविर पडुलूक रोहगुप्त

Ārya Sambhūtavijaya had seven nun disciples, dear to him as daughters. They were: Yakṣā, Yakṣadattā, Bhutā, Bhutadattā, as well as Seṇā, Veṇā and Reṇā, who were sisters of Sthūlabhadra.

209. Sthavira Ārya Sthūlabhadra, of the Gotama *gotra*, had two disciples, dear to him as sons. They were: Sthavira Ārya Mahāgiri of the Elāpatya *gotra* and Sthavira Ārya Suhastin of the Vasiṣṭha *gotra*.

Ārya Mahāgiri had eight disciples, dear to him as sons. They were : Sthavira Uttara, Sthavira Balissaha, Sthavira Dhanarddhi, Sthavira Śirardhi, Sthavira Koḍinya, Sthavira Nāga, Sthavira Nāgamitra and Sthavira Ṣaḍulūka Rohagupta of the Kauśika *gotra*.

Rohagupta was the founder of the Trairāśikā *śākhā*.
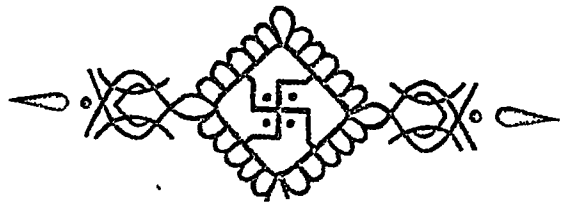
णं तेरासिया साहा निग्गया । थेरेहिंतो णं उत्तरबलिस्सहेहिंतो तत्थ णं उत्तरबलिस्सहगणे नामं गणे निग्गए । तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा—कोसंबिया, सोमित्तिया, कोडुंबिणी, चंदनागरी ॥२०९॥

थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगोत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा—थेरे अज्जरोहणे, भद्दजसे मेहगणी य कामिड्ढी । सुट्ठिय-सुप्पडिबुद्धे, रक्खिय तह रोहगुत्ते य ॥ १ ॥ इसिगुत्ते सिरिगुत्ते, गणी य बंभे गणी य तह सोमे । दस दो य गणहरा खलु, एए सीसा सुहत्थिस्स ॥ २ ॥ ॥२१०॥

थेरेहिंतो णं अज्जरोहणेहिंतो कासवगोत्तेहिंतो तत्थ णं उद्देहगणे नामं गणे निग्गए । तस्सिमातो चत्तारि साहातो निग्गयातो, छच्च
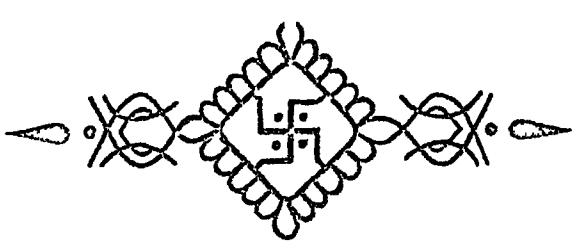
से त्रैराशिक शाखा निकली।

स्थविर उत्तर और स्थविर बलिस्सह से उत्तर बलिस्सह गण नामक गण निकला। इस उत्तरबलिस्सह गण की चार शाखायें इस प्रकार कही जाती हैं, यथा – १. कौशाम्बिका, २. सौमित्रिका, ३. कोटुम्बिनी और ४. चन्दनागरी।

Uttara and Balissaha together founded the *gaṇa* called Uttarabalissaha *gana*. This *gaṇa* has four *sākhās* : Kośāmbikā, Saumitrikā, Kauṭumbinī and Candanāgarī.

२१०. वासिष्ठ गोत्रीय स्थविर आर्य सुहस्ति के निम्नोक्त बारह स्थविर अन्तेवासी थे जो पुत्र समान और प्रसिद्ध थे, यथा – १. स्थविर आर्य रोहण २. भद्रयश, ३. मेघ गणि, ४. कामर्द्धि, ५. सुस्थित, ६. सुप्रतिबुद्ध, ७. रक्षित, ८. रोहगुप्त, ९. ऋषिगुप्त, १०. श्रीगुप्त गणि, ११. ब्रह्म गणि और १२. सोम गणि। अनुपम ज्ञानादिगुण समूह के धारक ये बारह आर्य सुहस्ति के शिष्य थे।

210. Ārya Suhastin of the Vasiṣṭha *gotra* had twelve disciples, dear to him as sons. They were : Śthavira Ārya Rohaṇa, Bhadrayaśa, Meghagaṇi, Kāmarddhi, Susthita, Supratibuddha, Rakṣita, Rohagupta, Ṛṣigupta, Śrīguptagaṇi Brahmagaṇi and Somagaṇi. Such were the twelve *gaṇadharas*, disciples of Ārya Suhastin.

२११. काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य रोहण से यहां पर उद्देहगण नामक गण निकला। उस गण से चार शाखाएं निकलीं और छह

211. Ārya Rohaṇa, who was of the Kāśyapa *gotra*, was the founder of the Uddeha *gaṇa*. This *gaṇa* has four *sākhās*, divided into six *kulas*.
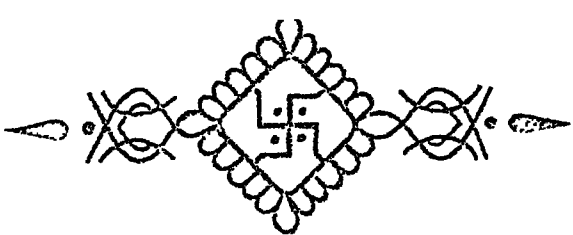
कुलाइं एवमाहिज्जंति । से किं तं साहाओ ? एवमाहिज्जंति, तंजहा–उदुंबरिज्जिया, मासपूरिया, मतिपत्तिया, सुवण्णपत्तिया, से तं साहाओ । से किं तं [कुलाइं] ? एवमाहिज्जंति, तं जहा–पढमं च नागभूअं, बीअं पुण सोमभूइअं होइ । अह उल्लगच्छ तइयं, चउत्थयं हत्थलिज्जं तु ॥१॥ पंचमगं नंदिज्जं, छट्ठं पुण पारिहासयं होइ । उद्देहगणस्सेए, छच्च कुला होंति नायव्वा ॥२॥ ॥२११॥

थेरेहिंतो णं सिरिगुत्तेहिंतो हारियसगुत्तेहिंतो एत्थ णं चारणगणे नामं गणे निग्गए । तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, सत्त य कुलाइं एवमाहिज्जंति । [से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति], तं जहा–हारियमालागारिय, संकासिया, गवेधुया, वज्जनागरी, से तं साहाओ । से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा–पढमित्थ
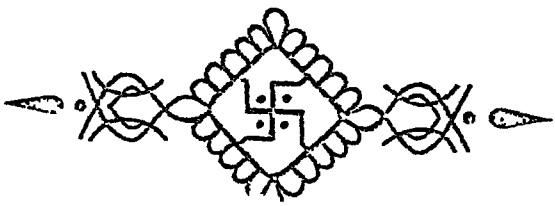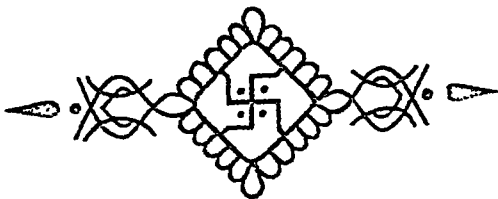
कुल निकले, ऐसा कहते हैं।

वे शाखाएं कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – वे शाखाएं इस प्रकार कही जाती हैं, यथा – १. औदुम्बरीया, २. मासपूरिका, ३. मतिपत्रिका और ४. सुवर्णपत्रिका। ये शाखायें है।

प्रश्न – वे कुल कौन-कौन से हैं?

उत्तर – वे छह कुल इस प्रकार कहे जाते हैं, यथा – १. नागभूंत, २. सोमभूतिक, ३. आर्द्रकच्छ, ४. हस्तलीय, ५. नान्दिक, और ६. पारिहासक। ये उद्देहगण के छह कुल जानना।

The *śākhās* are as follows: Udumbarīyā, Māsapūrikā, Matipatrikā and Suvarṇapatrikā.

The six *kulas* are as follows: Nāgabhūta, Somabhūtika, Ārdrakaccha, Hastalīya, Nāndika, and Pārihāsaka.

२१२. हारित गोत्रीय स्थविर श्रीगुप्त से यहां पर चारण गण नामक गण निकला। उस गण से चार शाखाएं निकली और सात कुल निकले, ऐसा कहते हैं।

प्रश्न – वे शाखाएं कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – वे शाखाएं इस प्रकार कही जाती हैं, जैसे – १. हारितमालागारिक, २. संकाशिका, ३. गवेधुका और ४. वज्रनागरी, ये शाखायें हैं।

प्रश्न – वे कुल कौन-कौन से हैं?

उत्तर – वे कुल इस प्रकार हैं, जैसे –

212. Sthavira Śrīgupta, who was of the Hārīta *gotra*, became the founder of the *gaṇa* called Cāraṇa. This *gaṇa* has four *śākhās*, divided into seven *kulas*.

The four *śākhās* are as follows: Hāritamālāgārikā, Saṅkāsikā, Gavedhukā and Vajranāgarī.
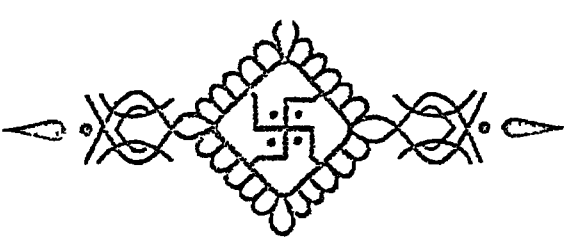
वच्छलिज्जं, बिइयं पुण पीइधम्मगं होइ । तइयं पुण हालिज्जं, चउत्थगं पूसमित्तिज्जं ॥ १ ॥ पंचमगं मालिज्जं, छट्ठं पुण अज्जचेडयं होइ । सत्तमगं कण्हसहं, सत्त कुला चारणगणस्स ॥ २ ॥ ॥२१२॥

थेरेहिंतो भद्दजसेहिंतो भारद्दायसगुत्तेहिंतो एत्थ णं उडुवाडियगणे नामं गणे निग्गए । तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ तिण्णि य कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा— चंपिज्जिया, भद्दिज्जिया, काकंदिया, मेहलिज्जिया, से तं साहाओ । से किं तं कुलाइं? एवमाहिज्जंति, तंजहा—भद्दजसियं तह भद्दगुत्तियं तइयं च जसभद्दं । एयाइं उडुवाडिय-गणस्स होंति तिण्णेव य कुलाइं ।२१३।

थेरेहिंतो णं कामिड्ढिहिंतो कुंडलिसगोत्तेहिंतो एत्थ णं वेसवाडियगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, चत्तारि
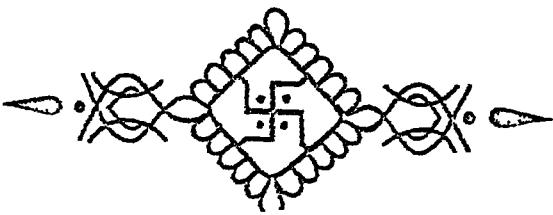
१. वत्सलीय, २. प्रीतिधर्मक, ३. हारिद्रक, ४. पुष्यमित्रक, ५. माल्यक, ६. आर्य चेटक, ७. कृष्ण-सखा, ये सात कुल चारण गण के हैं।

The seven *kulas* are as follows: Vatsalīya, Prītidharmaka, Hāridraka, Puṣyamitraka, Mālyaka, Āryaceṭaka and Kṛṣṇasakhā.

२१३. भारद्वाज गोत्रीय स्थविर भद्रयश से यहां पर उडुवाडिय गण (ऋतुवाटिक गण) निकला। उस गण से चार शाखाएं और तीन कुल निकले, ऐसा कहते हैं।

प्रश्न – वे कौन-कौनसी शाखाएं हैं ?

उत्तर – वे शाखाएँ इस प्रकार कही जाती हैं, जैसे – १. चम्पार्जिका, २. भद्रार्जिका, ३. काकन्दिका और ४. मेखलार्जिका, ये शाखाएं हैं।

प्रश्न – वे कुल कौन-कौन से हैं ?

उत्तर – वे कुल इस प्रकार हैं, जैसे – १. भद्रयशिक, २. भद्रगोप्तिक और ३. यशोभद्रीय। ये उडुवाडिय गण के तीन कुल हैं।

213. Sthavira Bhadrayaśa, who was of the Bhāradvāja *gotra*, founded the *gaṇa* called Uḍuvāḍiya. It has four *śākhās* and three *kulas*.

The *sākhās* are as follows: Campārjikā, Bhadrārjikā, Kākandikā and Mekhalārjikā. The *kulas* are as following : Bhadrayaśika, Bhadragauptika and Yaśobhadrīya.

२१४. कुण्डलि गोत्रीय स्थविर कामर्द्धि से यहां पर वेषवाटिक गण नाम से गण निकला। उस गण से चार शाखाएं और चार

214. Sthavira Kāmarddhi, who was of the Kuṇḍali *gotra*, founded the *gaṇa* named Veṣavāṭika. It has four *śākhās* and four *kulas*.
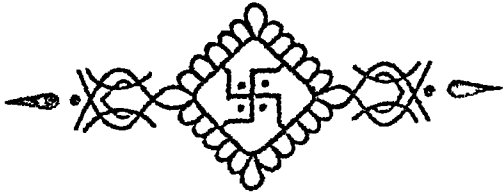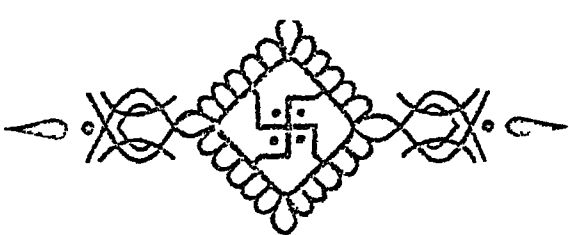
कुलाइं एवमाहिज्जंति । से किं तं साहाओ ? एवमाहिज्जंति, तं जहा—सावत्थिया, रज्जपालिया, अंतरिज्जिया, खेमलिज्जिया, से तं साहाओ। से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—गणियं मेहिय कामड्ढिअं च तह होइ इंदपुरगं च । एयाइं वेसवाडिय-गणस्स होंति चत्तारि उ कुलाइं ॥ १ ॥ ॥२१४॥

थेरेहिंतो णं इसिगुत्तेहिंतो णं काकंदएहिंतो वासिट्ठसगोत्तेहिंतो एत्थ णं माणवगणे नामं गणे निग्गए । तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, तिण्णि य कुलाइं एवमाहिज्जंति । से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति—कासवज्जिया, गोयमज्जिया, वासिट्ठिया, सोरट्ठिया, से तं साहाओ । से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—इसिगोत्तियत्थ पढमं, बिइयं इसिदत्तियं मुणेयव्वं । तइयं च
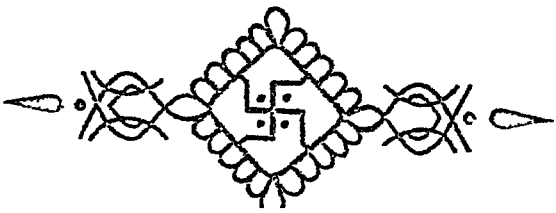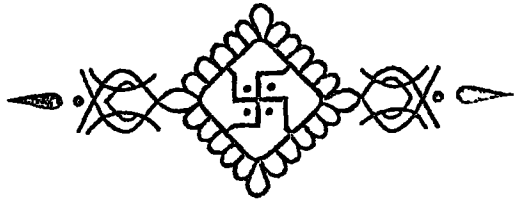
कुल निकले, ऐसा कहते हैं।

प्रश्न – वे शाखाएं कौन-कौनसी हैं ?

उत्तर – वे शाखाएं इस प्रकार कही जाती हैं, जैसे – १. श्रावस्तिका, २. राजपालिका, ३. अन्तरञ्जिका, और ४. क्षेमलीया, ये शाखाएं हैं।

प्रश्न – वे कौन-कौन से कुल हैं ?

उत्तर – वे कुल इस प्रकार हैं, जैसे – १. गणिक, २. मेघिक, ३. कामर्द्धिक और ४. इन्द्रपुरक। ये वेपवाडिय गण के चार कुल हैं।

२१५. वासिष्ठ गोत्रीय और काकन्दक ऐसे स्थविर ऋषिगुप्त से यहां मानव गण नामक गण निकला। उस गण से चार शाखाएं और तीन कुल निकले, ऐसा कहते हैं।

प्रश्न – वे शाखाएं कौन-कौन सी हैं ?

उत्तर – वे शाखाएं इस प्रकार हैं, जैसे – १. काश्यवर्जिका, २. गौतमीया (गोमार्जिका), ३. वाशिष्ठीया, और ४. सौराष्ट्रिका, ये शाखायें हैं।

प्रश्न – वे कुल कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर – वे कुल इस प्रकार हैं, जैसे – १. ऋषिगोत्रक, २. ऋषिदत्तिक,

The *śākhās* are as follows: Srāvastikā, Rājapālikā, Antarañjikā, and Kṣemalīyā.

The *kulas* are as follows: Gaṇika, Maighika. Kāmarddhika and Indrapuraka.

215. Sthavira Ṛṣigupta Kākandaka of the Vasiṣṭha *gotra* was the founder of the Mānavaka *gaṇa*. It has four *śākāhs* and three *kulas.*

The *śākhās* are as follows : Kāśyapīyā (Kāśyavarjjikā), Gautamīyā (Gomārjjikā), Vāsiṣṭhīyā and Saurāṣṭrikā.

अभिजयंतं, तिण्णि कुला माणवगणस्स ॥१॥ ॥२१५॥

थेरेहिंतो सुट्ठिय-सुप्पडिबुद्धेहिंतो कोडिय-काकंदएहिंतो वग्घा-वच्चसगोत्तेहिंतो एत्थ णं कोडियगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, चत्तारि कुलाइं एवमाहिज्जंति। से किं तं साहाओ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—उच्चानागरि विज्जाहरी य वइरी य मज्झिमिल्ला य। कोडियगणस्स एया, हवंति चत्तारि साहाओ ॥१॥ से किं तं कुलाइं? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तं जहा—पढमित्थ बंभलिज्जं, बिइयं नामेण वच्छलिज्जं तु। तइयं पुण वाणिज्जं, चउत्थयं पण्हवाहणयं ॥१॥ ॥२१६॥

थेराणं सुट्ठिय-सुप्पडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चसगोत्ताणं इमे पंच थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा—थेरे

३. अभिजयन्त, ये तीन कुल मानवगण के हैं ।

The *kulas* are as as follows: Ṛṣigotraka, Ṛṣidattika and Abhijayanta.
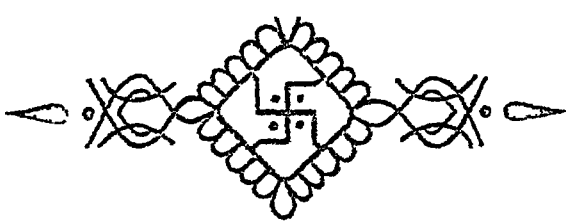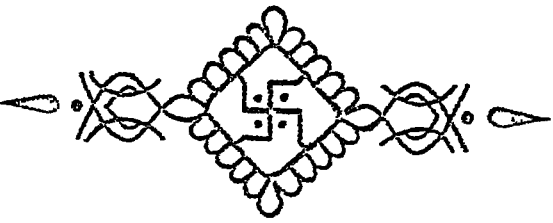
२१६. कोटिक-काकन्दिक नाम से प्रसिद्ध, व्याघ्रापत्य गोत्रीय स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध से कोटिकगण नामक गण निकला । उस गण से चार शाखाएं और चार कुल निकले, ऐसा कहते हैं ।

प्रश्न – वे शाखाएं कौन-कौन सी हैं ?

उत्तर – वे शाखाएं इस प्रकार हैं, जैसे – १. उच्चनागरिका, २. विद्याधरी, ३. वज्री और ४. मध्यमिका । ये कोटिक गण की चार शाखाएं हैं ।

प्रश्न – वे कौन-कौन से कुल हैं ?

उत्तर – वे कुल इस प्रकार हैं, जैसे – १. ब्रह्मलिप्तक, २. वत्सलिप्तक, ३. वाणिज्य और ४. प्रश्नवाहनक ।

216. Sthavira Susthita and Supratibuddha were both known as Koṭika Kākandika, and were both of the Vyāghrāpatya *gotra*. They were the founders of the Koṭika *gaṇa*. It has four *śākhās* and four *kulas*.

The *śākhās* are as follows : Uccānāgarika, Vidyādharī, Vajrī and Madhyamikā.

The *kulas* are as follows: Brahmaliptaka, Vatsaliptaka, Vāṇijya and Praśnavāhanaka.

२१७. कोटिक-काकन्दिक नाम से प्रसिद्ध, व्याघ्रापत्य गोत्रीय स्थविर सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध के ये पांच अन्तेवासी स्थविर उन्हें पुत्र के समान प्रिय तथा प्रख्यात थे ।यथा – १. स्थविर

217. Sthaviras Susthita and Supratibuddha, both known as Koṭika Kākandika, had the following five disciples, dear to them as sons.
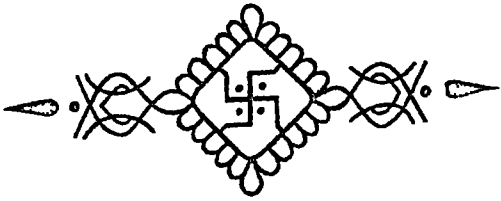
अज्जइंददिन्ने, थेरे पियगंथे, थेरे विज्जाहरगोवाले कासवगोत्ते णं, थेरे इसिदत्ते, थेरे अरिहदत्ते। थेरेहिंतो णं पियगंथेहिंतो एत्थ णं मज्झिमा साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं विज्जाहरगोवालेहिंतो तत्थ णं विज्जाहरी साहा निग्गया ॥२१७॥

थेरस्स णं अज्जइंददिन्नस्स कासवगोत्तस्स अज्जदिन्ने थेरे अंतेवासी गोयमसगोत्ते। थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमसगोत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तं जहा—थेरे अज्जसंतिसेणिए माढरसगोत्ते, थेरे अज्जसीहगिरी जाइस्सरे कोसियगोत्ते। थेरेहिंतो णं अज्जसंतिसेणिएहिंतो णं माढरसगोत्तेहिंतो एत्थ णं उच्चानागरी साहा निग्गया ॥२१८॥

थेरस्स णं अज्जसंतिसेणियस्स माढरसगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा
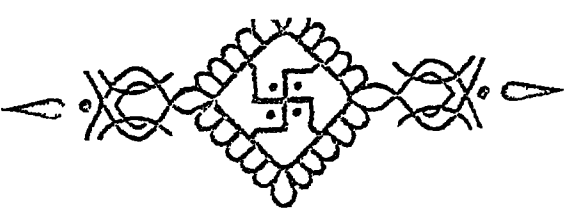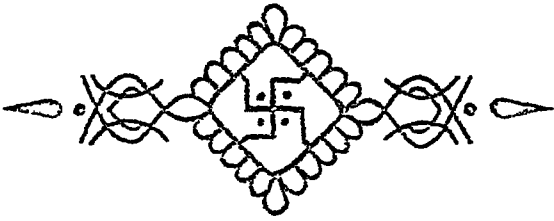
आर्य इन्द्रदिन्न, २. स्थविर प्रियग्रन्थ, ३. काश्यप गोत्रीय स्थविर विद्याधर गोपाल, ४. स्थविर ऋषिदत्त, और ५. स्थविर अर्हद्दत्त ।

स्थविर प्रियग्रन्थ से यहां मध्यमिका शाखा निकली ।

स्थविर विद्याधर गोपाल से यहाँ विद्याधरी शाखा निकली ।

२१८. काश्यप गोत्रीय स्थविर आर्य इन्द्रदिन्न के अन्तेवासी आर्यदिन्न गौतम गोत्रीय थे ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्यदिन्न के ये दो अन्तेवासी स्थविर पुत्र के समान तथा प्रख्यात थे । यथा – १. माढर गोत्रीय स्थविर आर्य शान्तिसेन, और २. जातिस्मरण-प्राप्त कौशिक गोत्रीय आर्य सिंहगिरि ।

माढर गोत्रीय स्थविर आर्य शान्तिसेन से यहां उच्चानागरी शाखा निकली ।

२१९. माढर गोत्रीय स्थविर आर्य शान्तिसेन के ये चार अन्तेवासी स्थविर

These were : Sthavira Ārya Indradinna, Sthavira Priyagrantha, Sthavira Vidyādharagopāla of the Kāśyapa *gotra*, Sthavira Ṛṣidatta and Sthavira Arahadatta.

Sthavira Priyagrantha was the founder of the Madhyamikā *śākhā*.

Sthavira Vidyādharagopāla, was the founder of the Vidyādharī *śākhā*.

218. Sthavira Āryadinna of the Gotama *gotra*, was the disciple of Sthavira Ārya Indradinna. Sthavira Āryadinna had two disciples dear to him as sons, namely, Sthavira Ārya Śāntisena of the Māḍhara *gotra* and Sthavira Ārya Siṁhagiri of the Kauśika *gotra*. Ārya Siṁhagiri possessed the power to recollect past lives.

Sthavira Ārya Śāntisena was the founder of the Uccānāgarī *śākhā*.

219. Ārya Śāntisena had four disciples, dear to him as sons: namely, Sthavira Ārya Śreṇika,
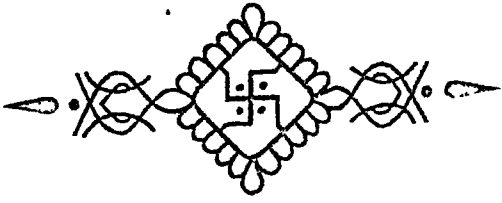
अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, [तंजहा-] (ग्रं०१०००) थेरे अज्जसेणिए, अज्जतावसे, अज्जकुबेरे, थेरे अज्जइसिपालिए। थेरेहिंतो णं अज्जसेणिएहिंतो एत्थ णं अज्जसेणिया साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्जतावसेहिंतो एत्थ णं अज्जतावसी साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्जकुबेरेहिंतो एत्थ णं अज्जकुबेरा साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्जइसिपालिएहिंतो एत्थ णं अज्जइसिपालिया साहा निग्गया ॥२१९॥

थेरस्स णं अज्जसीहगिरिस्स जाईसरस्स कोसियगोत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा—थेरे धणगिरी, थेरे अज्जवइरे, थेरे अज्जसमिए, थेरे अरहदिन्ने। थेरेहिंतो णं अज्जसमिएहिंतो गोयमसगोत्तेहिंतो एत्थ णं बंभद्दीविया साहा
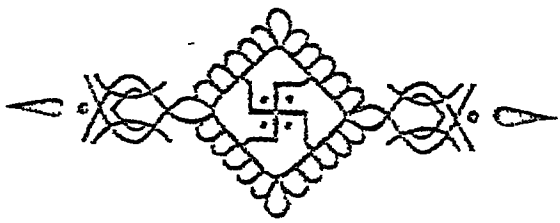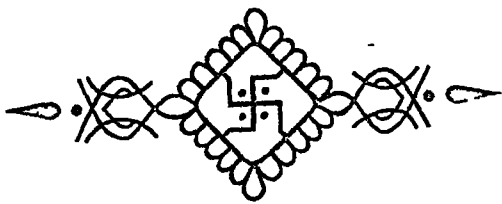
पुत्र-समान तथा प्रख्यात थे। यथा – १. स्थविर आर्य श्रेणिक, २. स्थविर आर्य तापस, ३. स्थविर आर्य कुबेर, और ४. स्थविर आर्य ऋषिपालित।

स्थविर आर्य श्रेणिक से यहां आर्य-श्रेणिका नाम की शाखा निकली।

स्थविर आर्य तापस से यहां आर्य-तापसी शाखा का प्रादुर्भाव हुआ।

स्थविर आर्य कुबेर से यहां आर्य-कुबेरा शाखा उत्पन्न हुई।

स्थविर आर्य ऋषिपालित से यहां आर्य-ऋषिपालिता शाखा का प्रादुर्भाव हुआ।

२२०. जाति-स्मरण-प्राप्त, कौशिकगोत्रीय स्थविर आर्य सिंहगिरि के ये चार अन्तेवासी स्थविर उन्हें पुत्र-समान प्रिय तथा विख्यात थे, जैसे – १. स्थविर धनगिरि, २. स्थविर आर्य वज्र, ३. स्थविर आर्य शमित, और ४. स्थविर आर्य अर्हदिन्न। गौतम गोत्रीय आर्य शमित से यहां ब्रह्मदीपिका नामक शाखा का

Sthavira Ārya Tāpasa, Sthavira Ārya Kubera and Sthavira Ārya Ṛṣipālita.

Sthavira Ārya Śreṇika was the founder of the Śreṇikā *śākhā*, Ārya Tāpasa of the Āryatāpasī *śākhā*, Ārya Kubera of the Āryakuberā *śākhā* and Ārya Ṛṣipālita of the Āryarṣipālitā *śākhā*.

220. Sthavira Ārya Siṁhagiri had four disciples, dear to him as sons: namely, Sthavira Dhanagiri, Sthavira Ārya Vajra, Sthavira Ārya Śamita and Sthavira Arahaddinna. Ārya Śamita was the founder of the Brahmadīpikā *śākhā*.

निग्गया । थेरेहिंतो णं अज्जवइरेहिंतो [गोयमसगोत्तेहिंतो] एत्थ णं अज्जवइरा साहा निग्गया ॥२२०॥

थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमसगोत्तस्स इमे तिण्णि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था, तंजहा—थेरे अज्जवइरसेणिए, थेरे अज्जपउमे, थेरे अज्जरहे । थेरेहिंतो णं अज्जवइरसेणिएहिंतो एत्थ णं अज्जनाइली साहा निग्गया । थेरेहिंतो णं अज्जपउमेहिंतो एत्थ णं अज्जपउमा साहा निग्गया । थेरेहिंतो णं अज्जरहेहिंतो एत्थ णं अज्जजयंती साहा निग्गया ॥२२१॥

थेरस्स णं अज्जरहस्स वच्छसगोत्तस्स अज्जपूसगिरी थेरे अंते-वासी कोसियगोत्ते । थेरस्स णं अज्जपूसगिरिस्स कोसियगोत्तस्स अज्जफग्गुमित्ते थेरे अंतेवासी गोयमसगोत्ते ।
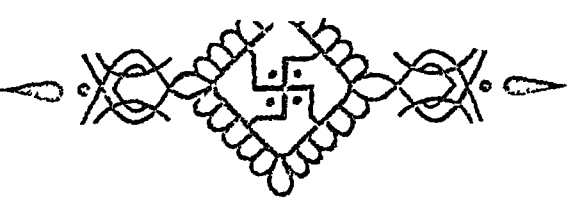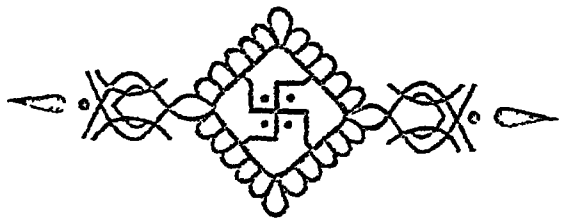
प्रादुर्भाव हुआ।

गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य वज्र से यहाँ आर्य-वज्रा नामक शाखा प्रारम्भ हुई।

२२१. गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य वज्र के ये तीन अन्तेवासी स्थविर वत्स-सदृश तथा प्रख्यात थे, जैसे – १. स्थविर आर्य वज्रसेन, २. स्थविर आर्य पद्म और ३. स्थविर आर्य रथ।

स्थविर आर्य वज्रसेन से यहां आर्य-नाईली (नागिला) शाखा निकली।

स्थविर आर्य पद्म से यहां आर्य-पद्म शाखा प्रारम्भ हुई।

स्थविर आर्य रथ से यहां आर्य-जयन्ती शाखा प्रारम्भ हुई।

२२२. वत्स गोत्रीय स्थविर आर्य रथ के अन्तेवासी स्थविर आर्य पुष्यगिरि कौशिक गोत्रीय थे।

कौशिक गोत्रीय स्थविर आर्य पुष्यगिरि के अन्तेवासी स्थविर आर्य फलगुमित्र गौतम गोत्रीय थे।

Ārya Vajra, who was of the Gotama *gotra*, was the founder of the Āryavajrā *śākhā*.

221. Sthavira Ārya Vajra had three disciples, dear to him as sons, namely, Sthavira Ārya Vajrasena, Sthavira Ārya Padma and Sthavira Ārya Ratha.

Ārya Vajrasena was the founder of the Āryanāgilā *śākhā*, Ārya Padma of the Āryapadmā *śākhā* and Ārya Ratha of the Āryajayantī *śākhā*.

222. Ārya Puṣyagiri, of the Kauśika *gotra*, was the disciple of Ārya Ratha, who was of the Vatsa *gotra*. The disciple of Ārya Puṣyagiri was Ārya Phalgumitra of the Gotama *gotra*.

वंदामि फग्गुमित्तं च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं। कोच्छं सिवभूइं पि य, कोसिय दोज्जंतकण्टे य ॥१॥ तं वंदिऊण सिरसा, चित्तं वंदामि कासवं गोत्तं। नक्खं कासवगोत्तं, रक्खं पि य कासवं वंदे ॥२॥ वंदामि अज्जनागं च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं। विण्हुं माढरगोत्तं, कालगमवि गोयमं वंदे ॥३॥ गोयमगोत्तकुमारं, सप्पलयं तह य भद्दयं वंदे। थेरं च अज्जवुड्ढं, गोयमगुत्तं नमंसामि ॥४॥ तं वंदिऊण सिरसा, थिरचित्त-चरित्तनाणसंपन्नं। थेरं च संघवालिय-कासवगोत्तं पणिवयामि ॥५॥ वंदामि अज्जहत्थिं च कासवं खंतिसागरं धीरं। गिम्हाण पढममासे, कालगयं चेव सुद्धस्स ॥६॥ वंदामि अज्जधम्मं च सुव्वयं सीललद्धिसंपन्नं। जस्स निक्खमणे देवो, छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥७॥ हत्थं कासवगोत्तं, धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि।
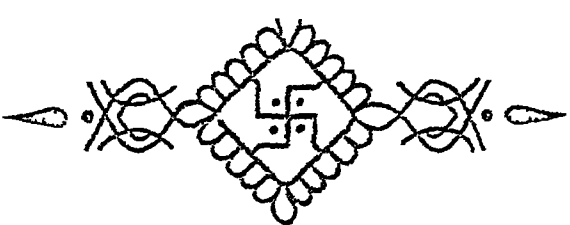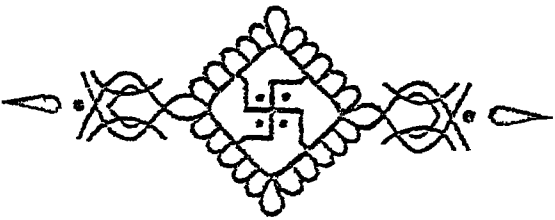
२२३. गौतम गोत्रीय फल्गुमित्र, वासिष्ठ गोत्रीय धनगिरि, कोत्स गोत्रीय शिवभूति तथा कौशिक गोत्रीय दौष्यन्तकृष्ण (दोज्जंतकण्ट) की वन्दना करता हूँ। १।

उन सभी को शिर झुकाकर, वन्दन कर, काश्यप गोत्रीय चित्त का वन्दन करता हूँ। काश्यप गोत्रीय नक्ष और काश्यप गोत्रीय रक्ष का भी वन्दन करता हूँ। २।

गौतम गोत्रीय आर्य नाग और वाशिष्ठ गोत्रीय जेहिल को नमस्कार करता हूँ। माढर गोत्रीय विष्णु और गौतम गोत्रीय कालक का भी वन्दन करता हूँ। ३।

गौतम गोत्रीय कुमार, सप्पलय (सम्पलित) तथा भद्रक को नमस्कार करता हूँ। गौतम गोत्रीय स्थविर आर्य वृद्ध को भी नमस्कर करता हूँ। ४।

उन सभी को शिर झुकाकर, वन्दन कर, स्थिर चित्त वाले, चारित्र और ज्ञानसम्पन्न, काश्यप गोत्रीय स्थविर संघपालित को प्रणाम करता हूँ। ५।

काश्यपगोत्रीय, क्षमा के सागर, धीर आय हस्ति का वन्दन करता हूँ। आर्य हस्ति ग्रीष्म ऋतु का प्रथम मास और शुद्ध पक्ष अर्थात् चैत्रशुक्ल में कालधर्म को प्राप्त हुए थे। ६। जिनके दीक्षा ग्रहण के समय देवों ने उत्तम छत्र को धारण किया था, ऐसे सुव्रती और शील-लब्धि-सम्पन्न आर्य धर्म का वन्दन करता हूँ। ७।

काश्यप गोत्रीय हस्त और शिवसाधक धर्म को प्रणाम करता हूँ।

223. I bow to Phalgumitra, the Gotama; Dhanagiri the Vāsiṣṭha; Śivabhūti, the Kautsya and Dauṣyantakṛṣṇa the Kāśyapa. I bow my head to them and to Citta of the Kāśyapa *gotra*. I bow to Nakṣa, the Kāśyapa as well as Rakṣa, the Kāśyapa. I bow to Ārya Nāga, the Gotama; Jehila the Vāsiṣṭha; Viṣṇu, of the Māḍhara *gotra*; Kālaka, the Gotama; Kumāra, Sampalita and Bhadraka as well as Sthavira Ārya Vṛddha of the Gotama *gotra*. I bow my head to them all and offer my veneration to Sthavira Saṅghapālita, tranquil of heart and possessed of true knowledge and virtue.

I bow to Ārya Hastin, the abode of peace and endurance (*kṣānti*), the steadfast one who passed away in the first month of summer, on the fourth day of the bright fortnight of *Caitra*.

I bow to Ārya Dharma, who was persevering in his vows and steadfast in moral discipline. When he left his home, the gods attended him with parasoles.

I bow to Hasta, of the Kāśyapa *gotra*, and to Dharma, who was steadfast in his pursuit of
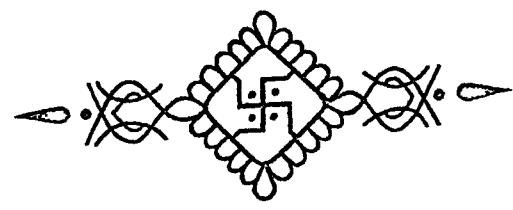
सीहं कासवगोत्तं, धम्मं पि य कासवं वंदे ॥ ८ ॥ सुत्तत्थरयणभरिए, खमदममद्दवगुणेहिं संपन्ने । देवड्ढिखमासमणे, कासवगोत्ते पणिव-यामि ॥ ९ ॥ २२३॥ ॥ छ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीस-इराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥२२४॥

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ? जओ णं पाएणं अगारीणं अगाराइं कडियाइं उक्कंपियाइं छण्णाइं लित्ताइं गुत्ताइं घट्ठाइं मट्ठाइं संपधूमियाइं खाओदगाइं खायनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए
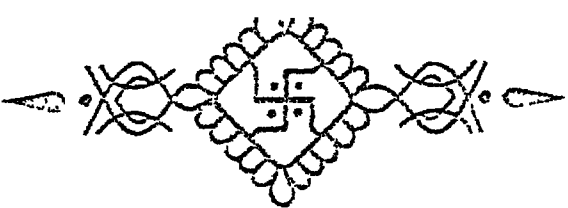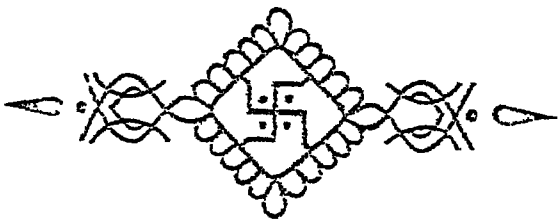
काश्यप गोत्रीय सिंह और काश्यप गोत्रीय धर्म का भी वन्दन करता हूँ। ८।

सूत्र-रूप और उसके अर्थ-रूप रत्नों से भरे हुए, क्षमा, दम और मार्दवादि गुणों से सम्पन्न, काश्यप गोत्रीय देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को प्रणाम करता हूँ। ९।

साधु-समाचारी

२२४. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर वर्षाकाल के बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर अर्थात् आषाढ़ी चातुर्मासी से पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे।

२२५. हे भगवन्! यह किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर वर्षा-ऋतु के बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे? उत्तर – कारण यह है कि उस समय प्रायः करके गृहस्थों के घर चारों ओर से चटाइयों आदि से आच्छादित होते हैं, सफेदी किये हुए होते हैं, ढके हुए होते हैं, लेपन किये हुए होते हैं, चार दीवारी से सुरक्षित होते हैं, घस करके समान किये हुए होते हैं, शुद्ध किए हुए होते हैं अथवा मुलायम किये हुए होते हैं। धूपों से सुगन्धित किये हुए होते हैं, खुदे हुए जलाशय से युक्त होते हैं, खुदी हुई नालियों से युक्त होते हैं, स्वयं के लिये

spiritual welfare. I also bow to Siṁha of the Kāśyapa *gotra* as well as Dharma the Kāśyapa.

I bow to Devarddhi Kṣamāśramaṇa, of the Kāśyapa *gotra*, who was an abode of kindness, self-restraint and gentleness, and was possessed of the gems of canonic *sūtras* along with their true meaning.

Sādhu Samācarī

(Being rules for sādhus during their rain-resort)

224. In those times, in those days, *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra had commenced his *paryuṣaṇa* (rain resort) after a month and twenty days of the rainy season had passed.

225. And why, now, is it being said that Bhagavān Mahāvīra commenced his *paryuṣaṇa* (rain resort) after a month and twenty days of the rainy season had passed?

By this time most house-holders have spread their houses with mats, whitewashed them, covered them, plastered, polished and levelled them, cleansed them, fenced them and purified them with incense-smoke. They have also dug gutters and constructed drains. And they have made
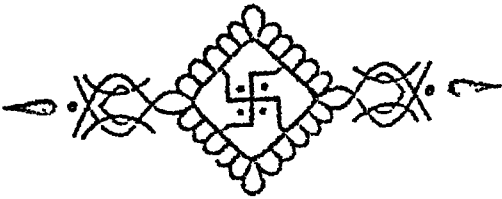
कडाइं परिभुत्ताइं परिणामियाइं भवंति। से तेणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥२२५॥

जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ, तहा णं गणहरा वि वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥२२६॥ जहा णं गणहरा वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं गणहरसीसा वि वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥२२७॥

जहा णं गणहरसीसा वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं थेरा वि वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥२२८॥

जहा णं थेरा वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति, एए वि णं वासाणं सवीसइराए
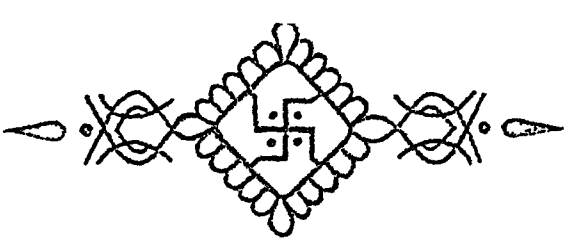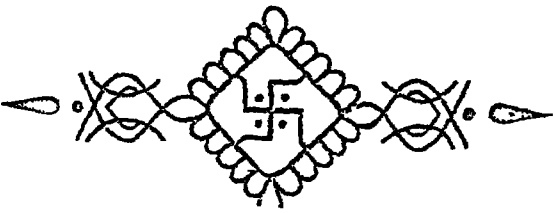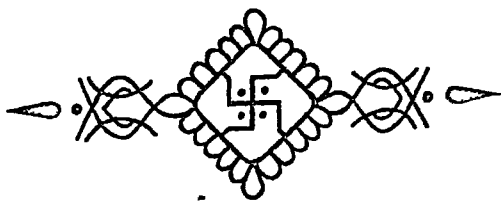
ठीक किये हुए होते हैं, स्वयं के निवास किये हुए होते हैं, जीव-जन्तु रहित स्वच्छ किये हुए होते हैं। इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि श्रमण भगवान् महावीर वर्षा-ऋतु के बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे।

२२६. जैसे श्रमण भगवान् महावीर वर्षा-ऋतु के बीस रात्रि सहित एक मास व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं, वैसे ही गणधर भी वर्षा-ऋतु के पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं।

२२७. जैसे गणधर वर्षा-ऋतु के पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं, वैसे ही गणधरों के शिष्य भी वर्षा-ऋतु के पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं।

२२८. जैसे गणधर-शिष्य वर्षा-ऋतु के पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं, वैसे ही स्थविर भी वर्षाऋतु के पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं।

२२९. जैसे स्थविर आषाढ़ी चातुर्मासी से पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं, वैसे ही आज-कल जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते हैं, विद्यमान हैं, वे भी आषाढ़ी

their houses comfortable for themselves and suitable for the season *(pariṇamitāni)*.

This is why it is being related that Bhagavān Mahāvīra commenced his *paryuṣaṇa* (rain-resort) only after a month and twenty days of the rainy season had passed.

226—231 The *gaṇadharas* followed the example set by Bhagavān Mahāvīra. The disciples of *gaṇadharas* followed the *gaṇadharas*. Other *sthaviras* followed the foot-steps of these disciples. Present *śramaṇas-nirgranthas* do as these *sthaviras* had done. Our teachers and *ācāryas* do the same. We, too, follow in their wake. We commence our *paryuṣaṇa* after a month and twenty days of the rainy season is over.
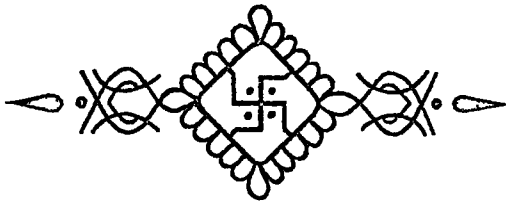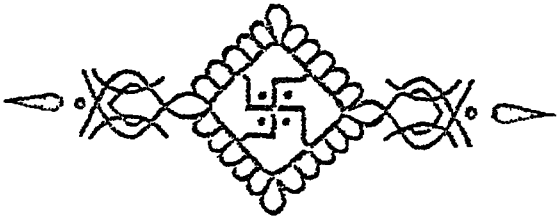
मासे विइक्कंते जाव पज्जोसविंति ॥२२९॥

जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति, तहा णं अम्हंपि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥२३०॥

जहा णं अम्हं आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं अम्हेवि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो । अंतरा वि य से कप्पइ पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणावित्तए ॥२३१॥

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सकोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ता णं चिट्ठिउं अहालंदमवि उग्गहे ॥२३२॥
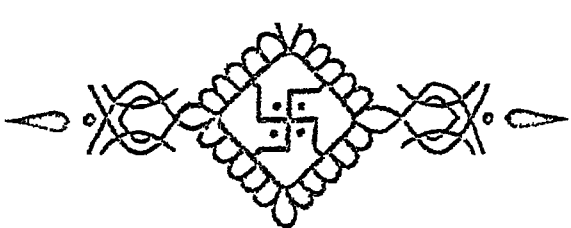
चातुर्मासी से पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहते हैं।

२३०. जैसे जो आज-कल श्रमण निर्ग्रन्थ आषाढ़ी चातुर्मासी से पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहे हैं वैसे ही हमारे आचार्य, उपाध्याय भी वर्षा-ऋतु के पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहते हैं।

२३१. जैसे हमारे आचार्य, उपाध्याय वर्षा-ऋतु के पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहते हैं वैसे ही हम भी आषाढ़ी चातुर्मासी से पचास दिन व्यतीत होने पर वर्षावास रहते हैं। इस समय से पूर्व भी वर्षावास रहना कल्पता है (उचित है, शास्त्रोक्त है), किन्तु उस रात्रि का उल्लंघन करना नहीं कल्पता है, उचित नहीं है। अर्थात् वर्षाऋतु–आषाढ़ी चातुर्मासी से पचासवीं रात्रि का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, पचासवीं रात्रि से पूर्व ही वर्षावास कर लेना चाहिए।

The *paryuṣana* may be commenced earlier than the fiftieth night of the season, but not later.

२३२. वर्षावास में रहे हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को चारों ओर पांच कोस (१६ किलोमीटर) तक अवग्रह को धारण कर रहना कल्पता है। पानी से गीला हुआ हाथ जब तक न सूख जाय तब तक भी अवग्रह में रहना कल्पता है और बहुत समय तक भी रहना कल्पता है, परन्तु अवग्रह के बाहर रहना नहीं कल्पता है।

232. Monks and nuns who have arrived at a rain-resort for the season, should limit their area of movement to an extent of five *kośas* (approximately sixteen kilometres) all around. They can dwell for a short or a long period anywhere within this limit but it is not proper to go beyond it.
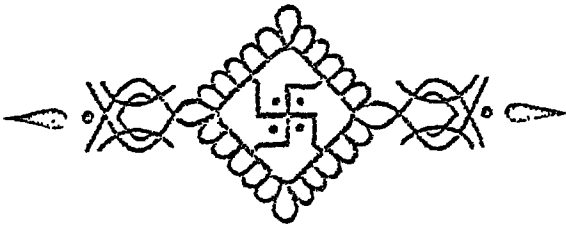
वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पति [निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा] सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए। जत्थ णं नई निच्चोयगा निच्चसंदणा नो से कप्पइ सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए। एरवती कुणालाए जत्थ चक्किया सिया एगं पादं जले किच्चा एगं पादं थले किच्चा एवं चक्किया, एवं णं कप्पइ सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए। एवं नो चक्किया, एवं णं नो कप्पइ सव्वओ समंता सकोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए ॥२३३॥

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगईयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—'दावे भंते !' एवं से कप्पइ दावित्तए, नो से कप्पइ पडिगाहित्तए ॥२३४॥

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगईयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवति—'पडि-
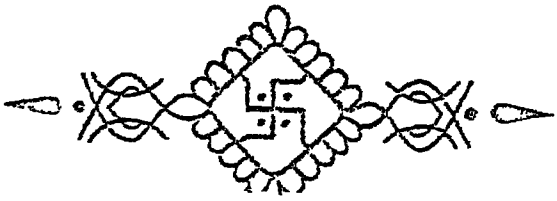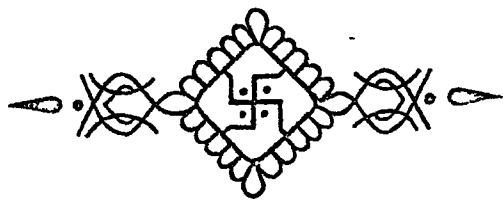
२३३. वर्षावास में रहे हुए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को चारों ओर पांच कोस तक भिक्षाचर्या (गोचरी) के लिये जाना और वापिस आना कल्पता है। जहां नदी सर्वदा पानी से भरी हुई और सर्वदा प्रवाहमान हो वहां सभी तरफ पांच कोस तक भिक्षाचरी (गोचरी) के लिये जाना और वापिस आना नहीं कल्पता है। ऐरावती नदी कुणाला नगरी में है। जहां एक पैर पानी में रखकर चला जा सकता है और एक पैर पानी से बाहर रखकर चला जा सकता है वहां ऐसे स्थल पर चारों ओर पांच कोस तक भिक्षाचरी को जाना और वापिस आना कल्पता है। किन्तु ऐसा शक्य नहीं है तो चारों ओर पांच कोस तक भिक्षाचरी के लिये जाना और आना नहीं कल्पता है।

२३४. वर्षावास में रहे हुए कितने ही श्रमणों को पूर्व में ही इस प्रकार कहा हुआ होता है कि, "हे भदन्त! तुम देना" तो उन्हें इस प्रकार देना कल्पता है किन्तु स्वयं के लिये स्वीकार करना नहीं कल्पता।

२३५. वर्षावास में रहे हुए कितने ही श्रमणों को प्रारम्भ में ही इस प्रकार कहा हुआ होता है कि, 'भदन्त! तुम लेना' तो उन्हें इस प्रकार लेना कल्पता है किन्तु दूसरों को देना नहीं कल्पता है।

233. During *paryuṣaṇa*, monks and nuns may move to and fro for a distance of five *kośas* all around in order to collect alms. But in case there is a perennial and deep river intervening within this bound, it is not proper to move for the whole distance of five *kośas*. However, if the river be like Erāvatī, which flows near the town of Kuṇāla, a river which can be crossed by keeping one leg in the water and one leg out it, then it is quite proper for monks and nuns to move for a distance of five *kośas* all around; but not otherwise.

234—236. During *paryuṣaṇa*, a monk may be instructed "Give Sir". He is then permitted to give as instructed, but it is not proper for him to accept for himself. Or, his instructions may be: "Accept Sir" in which case it would be proper for him to accept. But if his inrtructions are "Accept Sir,
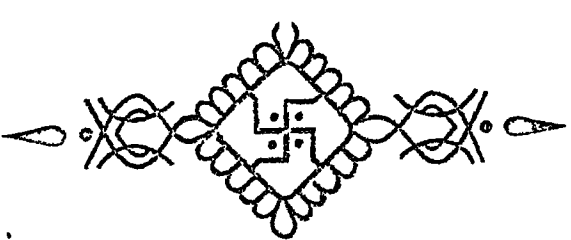
गाहे भंते!' एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ दावित्तए।२३५।

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ—'दावे भंते! पडिगाहे भंते!' एवं से कप्पइ दावित्तए वि पडिगाहित्तए वि।२३६।

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हट्ठाणं आरोग्गाणं बलियसरीराणं इमाओ नव रसविगईओ अभिक्खणं २ आहारित्तए, तंजहा—खीरं, दहिं, नवणीयं, सप्पिं, तिल्लं, गुडं, महुं, मज्जं, मंसं ॥२३७॥

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगईयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवति, 'अट्ठो भंते! गिलाणस्स?' से य वएज्जा 'अट्ठो'। से य पुच्छियव्वे—'केवतितेणं अट्ठो?' से य वइज्जा—'एवइएणं अट्ठो गिलाणस्स'। जं से
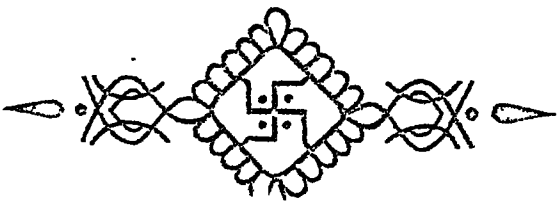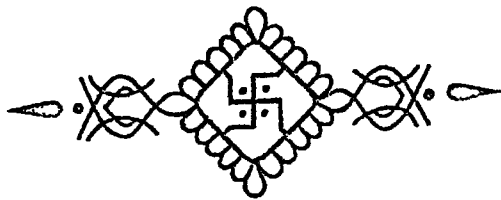
२३६. वर्षावास में रहे हुए कितने ही निर्ग्रन्थों को प्रारम्भ में ही इस प्रकार कहा हुआ होता है कि, 'हे भदन्त ! तुम देना, हे भदन्त ! तुम ग्रहण करना' तो उन्हें इस प्रकार से दूसरों को देना और स्वयं को ग्रहण करना कल्पता है।

Give Sir", then he can either accept for himself or give as he pleases.

२३७. वर्षावास में रहे हुए श्रमणों और श्रमणियों को जो हृष्ट-पुष्ट हों, निरोग हों, वलिष्ठ शरीर वाले हों उन्हें इन नौ रस-विकृतियों को पुन: पुन: खाना नहीं कल्पता है। जैसे – १. क्षीर-दूध, २. दही, ३. नवनीत-मक्खन, ४. घी, ५. तेल, ६. गुड़, ७. मधु, ८. मद्य और ९. मांस।*

237. For monks and nuns of a strong physique, who are in good health and are free of disease, it is not proper to partake regularly of the following nine savoury stuffs which are contaminated by nature *(rasa-vikṛtayaḥ)* : milk, butter, ghee, oil, jaggery, honey, liquor and meat.

२३८. वर्षावास में रहे हुए कितने ही साधुओं को प्रारम्भ में ही इस प्रकार कहा हुआ होता है कि, 'हे भगवन् ! ग्लान (अस्वस्थ, वीमार) के लिये आवश्यकता है ? यदि वह कहे कि प्रयोजन है, तो उसके पश्चात् उस ग्लान-वीमार से पूछना चाहिए कि 'कितनी मात्रा में आवश्यकता है? उससे पूछकर उत्तर दे कि 'अस्वस्थ व्यक्ति को इतने प्रमाण में (दूध, दही आदि की) आवश्यकता है।' वह अस्वस्थ व्यक्ति जितने प्रमाण की आवश्यकता वतलावे

238. During, *paryusaṇa* many monks and nuns are asked : "Is it (i.e. any of the above) required for the sick ?" If the sick monk were to say "Yes, it is required". Then he should be asked "How much is required? In reply it would be said : "So much is needed for the sick". One should, then, accept, as alms, just the quantity that is needed. One should request for just the need-

*शास्त्रकार ने यहाँ सामान्य पाठ के रूप में विकृतिकारक नौ पदार्थों की गणना देते हुए मधु, मद्य और मांस का उल्लेख किया हो ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि, विशेष पाठ के रूप मे शास्त्रों– निशीथ० उद्दे० ३. सूत्र २८; निशीथ भाष्य गा० १५९५, ३१६९; उत्तराध्ययन सूत्र अध्य. ९ गाथा ७०-७१ आदि–में मधु, मद्य और मांस को अप्रशस्त एव महाविकृतिकारक मानते हुए इनके ग्रहण/भक्षण का पूर्णरूपेण निषेध किया गया है जो जैन-परम्परा सम्मत है।
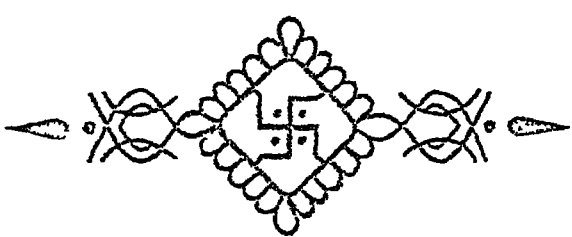
पमाणं वदति से य पमाणओ घेत्तव्वे। से य विन्नवेज्जा, से य विन्न-
वेमाणे लभेज्जा, से य पमाणपत्ते 'होउ, अलाहि' इति वत्तव्वं सिया।
से किमाहु भंते ! एवईएणं अट्ठो गिलाणस्स। सिया णं एवं वयंतं परो
वइज्जा—'पडिग्गाहेहि अज्जो !' तुमं पच्छा भोक्खसि वा पाहिसि वा
एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिग्गा-
हित्तए ॥२३८॥

वासावासं पज्जो० अत्थि णं थेराणं तहप्पगाराइं कुलाइं कडाइं
पत्तियाइं थेज्जाइं वेसासियाइं सम्मयाइं बहुमयाइं अणुमयाइं भवंति,
जत्थ से नो कप्पति अदट्ठु वइत्तए 'अत्थि ते आउसो ! इमं वा २?'।
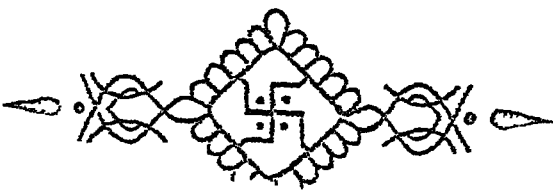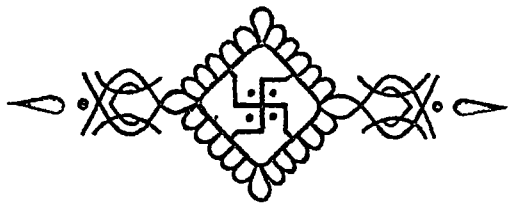
उतने ही प्रमाण में उन वस्तुओं को ग्रहण करना चाहिए। लाने के लिये जाने वाला प्रार्थना करे और प्रार्थना करता हुआ (दुग्धादि पदार्थ) प्राप्त करे। जब इच्छित पदार्थ प्रमाण में प्राप्त हो जाय तो 'बस, पर्याप्त है' इस प्रकार उसे कहना चाहिए। उसके पश्चात् पदार्थ देने वाला दाता यदि कहे कि, 'हे भगवन्! बस, पर्याप्त है' ऐसा आप क्यों कहते हैं? तो, उत्तर में ग्रहण करने वाला श्रमण कहे कि, 'रुग्ण के लिये इतनी ही आवश्यकता है।' ऐसा कहने पर भी कदाचित् पदार्थ-दाता गृहस्थ यह कहे कि 'हे आर्य! आप ग्रहण करें, आप बाद में खा लेना अथवा पी लेना' इस प्रकार का संलाप हुआ हो तो आवश्यकतानुसार अधिक मात्रा में पदार्थ लेना कल्पता है। परन्तु रुग्ण व्यक्ति के नाम से या बहाने से अधिक ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

amount and accept it if the request be granted. Having received the required amount one should say "No more, this is enough." If the donor were to ask, "Why do you say so Sir?" then one should answer, "This is the quantity needed for the sick". If the donor were then to say, "Take more, Sir, you can eat the rest yourself or give it to another," then in such a case it would be proper to accept the extra gift; but to accept it in the name of the sick person would not be proper.

२३९. वर्षावास में रहे हुए स्थविरों के तथाप्रकार के कुलादि किये हुए होते हैं, जो प्रीतिपात्र होते हैं, स्थिरता वाले होते हैं, विश्वासपात्र होते हैं, सम्मत होते हैं, बहुमत होते हैं, अनुमति वाले होते हैं, उन कुलों में जाकर, इच्छित पदार्थों को न देखकर उन स्थविरों को इस प्रकार कहना नहीं कल्पता – "हे आयुष्मन्! यह वस्तु या वह पदार्थ आपके यहां पर है?"

239. During *paryuṣaṇa*, many monks develop relations of friendliness or of constancy or favour or liking or cordiality towards particular families. But it is not proper for monks, when visiting such families, to demand, "Sir, do you have such and such a thing?" Why, now, is this being said?
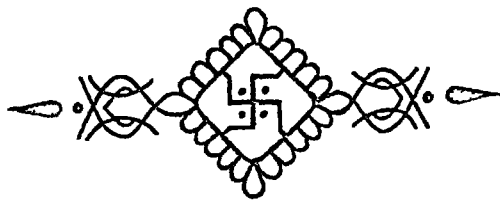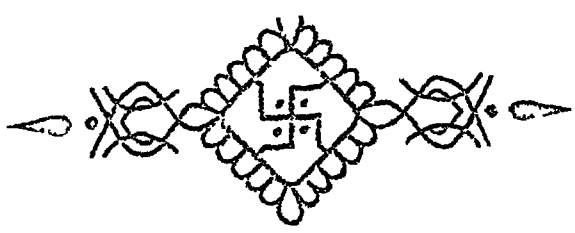
से किमाहु भंते! सड्ढी गिही गिह्णइ वा, तेणियं पि कुज्जा ॥२३९॥

वासावासं पज्जोसवियस्स निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पति एगं गोयरकालं गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नन्नत्थ आयरियवेयावच्चेण वा उवज्झायवेयावच्चेण वा तवस्सिवेयावच्चेण वा गिलाणवेयावच्चेण वा खुड्डु-खुड्डियाए वा अवंजणजाएण वा ॥२४०॥

वासावासं पज्जोसवियस्स चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स अयं एवइए विसेसे—जं से पाओ निक्खम्म पुव्वामेव वियडगं भुच्चा पिच्चा पडिग्गहगं संलिहिय संपमज्जिय, से य संथरेज्जा, कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए, से य नो संथरेज्जा, एवं से कप्पइ
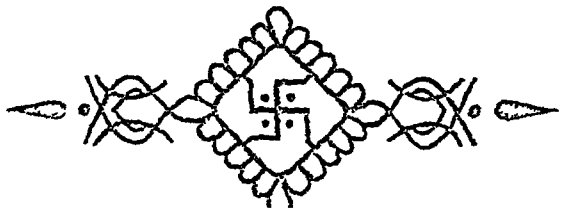
प्रश्न – हे भगवन् ! उन स्थविरों को ऐसा कहना नहीं कल्पता इसका क्या कारण है ? उत्तर – इस प्रकार कहने से श्रद्धावान् गृहस्थ वह वस्तु नवीन ग्रहण करे, खरीदकर लाए अथवा चोरी करके भी ले आए। अतएव ऐसा नहीं कहना चाहिए।

२४०. वर्षावास में रहे हुए नित्यभोजी श्रमण को गोचरी के समय भोजन अथवा पानी के लिये गृहस्थ के कुल की तरफ एक बार निकलना और एक बार प्रवेश करना कल्पता है। किन्तु आचार्य की वैयावृत्य का कारण हो, उपाध्याय की सेवा का कारण हो, तपस्वी की सेवा का कारण हो, अस्वस्थ की सेवा का कारण हो, जिनके दाढ़ी-मूंछ के बाल न आये हों, ऐसे नन्हें-नन्हें साधु-साध्वियों की वैयावृत्य का कारण हो तो एक से अधिक बार भी उस कुल की तरफ जाना-आना कल्पता है।

२४१. वर्षावास में रहे हुए चतुर्थभक्त करने वाले श्रमण के लिए यह विशेषता है कि उपवास के पश्चात् (पारणक के दिन) प्रात: गोचरी के लिये निकल कर पहले विकटक (निर्दोष) भोज्य पदार्थ ग्रहण करे और निर्दोष पानी पीए। उसके पश्चात् पात्र धोकर, पोंछकर, साफ कर, उतने ही भोजन-पानी से उस दिवस वह निर्वाह करे।

Because a house-holder, who is of a staunch faith, might then be tempted to purchase the thing requested for, or even steal.

240. It is proper, during *paryuṣaṇa,* for a monk, who is eating one daily meal, to visit the homes of house-holders only once during the day with the purpose of accepting food as alms. But when he is serving an *ācārya,* or a teacher, or one who is practising asceticism, or a sick brother or a young novice of an unripe age, then he may make more than a single round of the house-holders' homes.

241. There are special instructions for those monks who take only one meal out of four regular meals during *paryuṣaṇa.* Such a monk should go out in the morning for alms-begging only on the day he intends to break his fast. He should partake of uncontaminated food and should drink uncontaminated water. He should then rinse and rub his almsbowl clean. The food he has partaken of should suffice him for the day. If not, he may go
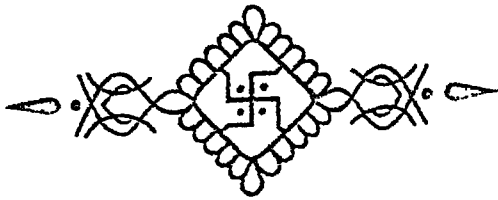
दोच्चं पि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२४१॥

वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति दो गोयरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२४२॥

वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ गोयरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा जाव पविसित्तए वा ॥२४३॥

वासावासं पज्जोसवियस्स विकिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वे वि गोयरकाला गाहावइकुलं भत्ताए वा जाव पविसित्तए वा ।२४४।

वासावासं पज्जोसवियस्स निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वाइं पाणगाइं पडिगाहित्तए ॥२४५॥
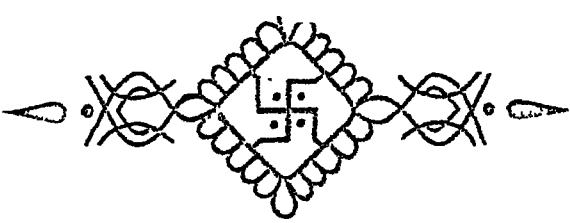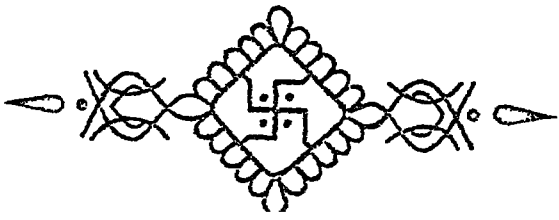
यदि उतने ही भोजन और पानी से उसका निर्वाह नहीं हो सकता है तो दूसरी वार भी गृहस्थ कुल की ओर भोजन-पानी ग्रहण करने के लिये उसे जाना-आना कल्पता है।

२४२. वर्षावास में रहे हुए छट्ठभक्त करने वाले भिक्षु को गोचरी के समय भोजन लेने के लिये अथवा पानी लेने के लिये गृहस्थ कुल की ओर दो वार जाना-आना कल्पता है।

२४३. वर्षावास में रहे हुए अष्टमभक्त करने वाले श्रमण को गोचरी के समय भोज्य-पदार्थ लेने के लिये अथवा पानी लेने के लिये गृहस्थ कुल की ओर तीन वार जाना-आना कल्पता है।

२४४. वर्षावास में रहे हुए विकृष्ट भक्त (अष्टमभक्त–तीन उपवास से अधिक तप) करने वाले श्रमण को आहार अथवा पानी के लिये प्रत्येक समय अर्थात् जिस समय इच्छा हो, उसी समय गृहस्थ कुल की ओर जाना और आना कल्पता है।

२४५. वर्षावास में रहे हुए नित्यभोजी साधु को सभी प्रकार का पानी लेना कल्पता है।

once again towards the homes of house-holders and ask for more.

242. A monk, who is taking one out of six regular meals, may, on the day he intends to break his fast, make two rounds of house-holders' homes asking for alms.

243. A monk who is taking one out of eight regular meals, may, on the day he breaks his fast, make three rounds of house-holders' homes asking for alms.

244. A monk who may be fasting for a still longer period, may, on the day he intends to break his fast, go whenever he pleases to make a round of the house-holders' homes.

245. Monks, who eat a meal a day during *paryuṣaṇa*, are allowed to take all permitted drinks.
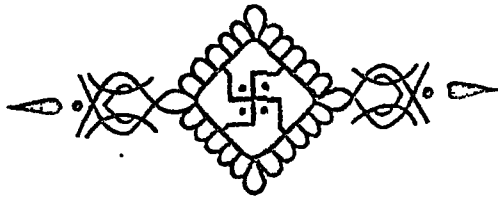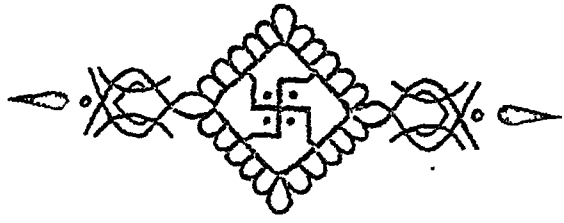
वासावासं पज्जोसवियस्स चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तंजहा—उस्सेइमं, संसेइमं, चाउलोदगं ।२४६।

वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तंजहा—तिलोदगं तुसोदगं जवोदगं ।।२४७।।

वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तंजहा—आयामं, सोवीरं, सुद्धवियडं वा ।२४८।

वासावासं पज्जोसवियस्स विकिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पति एगे उसिणवियडे पडिगाहित्तए, से वि य णं असित्थे नो वि य णं ससित्थे ।।२४९।।

वासावासं पज्जोसवियस्स भत्तपडियाइक्खियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगे उसिणोदए पडिगाहित्तए, से वि य णं असित्थे नो चेव णं ससित्थे,
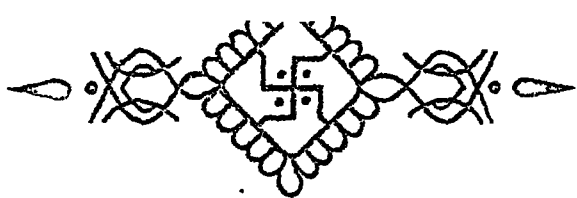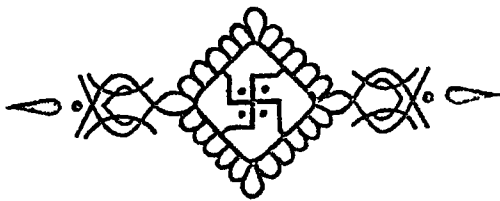
२४६. वर्षावास में रहे हुए चतुर्थभक्त करने वाले भिक्षुक को तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है। यथा–१. उत्स्वेदिम (आटा मिश्रित पानी) २. संस्वेदिम (उवाली हुई भाजी जिसे ठंडे जल से धोया जाय वह पानी), और ३. चाउलोदक (चावल का पानी)।

२४७. वर्षावास में रहे हुए षष्ठभक्त करने वाले श्रमण को तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है, यथा–१. तिलोदक, २. तुषोदक और ३. जवोदक।

२४८. वर्षावास में रहे हुए अष्टमभक्त करने वाले निर्ग्रन्थ को तीन प्रकार का पानी लेना कल्पता है, यथा–१. आयाम (अवस्रावण), २. सौवीर (कांजी) और ३ शुद्धविकट (उष्णजल)।

२४९. वर्षावास में रहे हुए विकृष्टभक्त (अष्टमभक्त से अधिक तप) करने वाले भिक्षु को एकमात्र उष्ण विकट (शुद्ध उष्ण जल) ग्रहण करना कल्पता है। वह भी अन्नकण रहित कल्पता है, अन्नकण सहित नहीं।

२५०. वर्षावास में रहे हुए भक्त-प्रत्याख्यानी (अनशन करने वाले) श्रमण को एकमात्र उष्णोदक (गर्म जल) ग्रहण करना कल्पता है। वह भी अन्न-कण रहित, अन्न-कण सहित नहीं। वह भी कपड़े से छाना हुआ, विना छाना हुआ नहीं।

246. Those who are partaking of one meal out of four regular meals, should take only three kinds of drinks : water mixed with flour, clear vegetable soup (*saṁsvedima*) or water boiled in rice (*taṇḍu-lodaka*).

247. Those partaking of one meal out of six regular meals should take only these drinks : sesamum-water, chaff-water or barley-water.

248. Those partaking of one out of eight regular meals should take only the following three drinks : *avaṣrāvana*, sour gruel (*sauvira* i.e. *kāñjī*) or hot water.

249. Those who break their fast after still longer periods may take only hot-water unmixed with any grain.

250. Those abstaining from food altogether should also take only warm water, unmixed with grain. The water should be filtered and pure and should be taken in limited quantities.
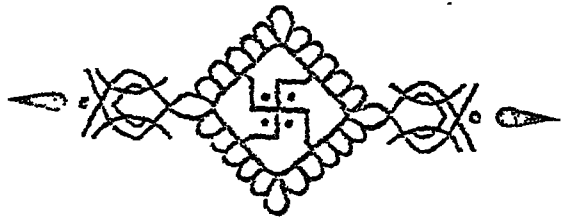
से वि य णं परिपूए नो चेव णं अपरिपूए, से वि य णं परिमिए नो चेव णं अपरिमिए, [से वि य णं बहुसंपण्णे नो चेव णं अबहुसंपण्णे] ।२५०।

वासावासं पज्जोसवियस्स संखादत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहित्तए पंच पाणगस्स, अहवा चत्तारि भोयणस्स पंच पाणगस्स, अहवा पंच भोयणस्स चत्तारि पाणगस्स। तत्थ णं एगा दत्ती लोणासायणमित्तमवि पडिग्गाहिया सिया, कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ दोच्चं पि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२५१॥

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा जाव उवस्सयाओ सत्तघरंतरं संखडिं सन्नियट्टचारिस्स इत्तए। एगे
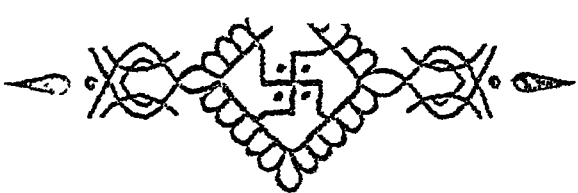
वह भी परिमित, अपरिमित नहीं। [वह भी जितना चाहिए उतना ही, अधिक या कम नहीं]।

२५१. वर्षावास में रहे हुए, निश्चित संख्यावाली दत्ति-प्रमाण आहार लेने वाले श्रमण को पांच दत्ति भोजन की और पांच दत्ति पानी की ग्रहण करना कल्पता है। अथवा चार दत्ति भोजन की पांच दत्ति जल की लेना कल्पता है। अथवा पांच दत्ति भोजन की और चार दत्ति जल की ग्रहण करना कल्पता है। वहां नमक के कण जितना भी जिसका आस्वाद लिया गया हो, वह भी एक दत्ति गिनी जाती है। ऐसी दत्ति स्वीकार करने के पश्चात् उस श्रमण को उस दिन उस भोजन से ही निर्वाह करना कल्पता है। उस भिक्षु को दूसरी वार पुनः गृहस्थ कुल की ओर भोजन अथवा पानी के लिये निकलना और प्रवेश करना नहीं कल्पता है।

२५२. वर्षावास में रहे हुए, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को उपाश्रय शय्यातर (निषिद्ध) घर से सात घरों तक जहां संखडि (जीमनवार) होता हो, वहां गोचरी के लिये जाना नहीं कल्पता। कितने ही ऐसा कहते हैं कि शय्यातर-गृह के अतिरिक्त सात घर तक जहां जीमनवार

251. During *paryuṣaṇa*, a monk who vows to accept a fixed number of gifts should take only five gifts of food and five of drinks; or he may accept four gifts of food and five of drinks; alternatively, he may accept five gifts of food and four of drinks. The little salt that he partakes of, should be counted as one whole gift. The day he accepts such a gift of food, he should be content with this gift for the whole day and accept no more. He should not go out towards house-holders' homes seeking for alms again.

252. During *paryuṣaṇa*, it is not proper for those monks or nuns, who are observing a rule of visiting only certain homes, to go to a house where a festive meal *(saṁkhaḍi)* is being cooked, if the house lies within a range of seven houses from the house in which they are lodged. Some say that they should not go to a festive meal in a house, if the house be within a range of seven houses *counting* the house in which they are lodged.
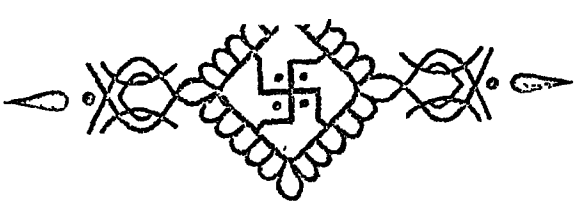
पुण एवमाहंसु—नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परेण सत्तघरंतरं संखडिं सन्नियट्टचारिस्स इत्तए। एगे पुण एवमाहंसु—नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परंपरेण संखडिं सन्नियट्टचारिस्स इत्तए ॥२५२॥

वासावासं पज्जोसवियस्स नो कप्पइ पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स कणगफुसियमित्तमवि वुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि पज्जोसवित्तए ॥२५३॥ वासावासं पज्जोसवियस्स पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ अगिहंसि पिंडवायं पडिग्गाहित्ता पज्जोसवित्तए, पज्जोसवेमाणस्स सहसा वुट्ठिकाए निवएज्जा, देसं भुच्चा देसमादाय पाणिणा पाणिं परिपिहित्ता उरंसि वा णं निलिज्जिज्जा, कक्खंसि वा णं समाहडिज्जा, अहाछन्नाणि वा लेणाणि वा उवागच्छिज्जा, रुक्खमूलाणि वा उवागच्छिज्जा, जहा से पाणिंसि दए वा दगरए वा
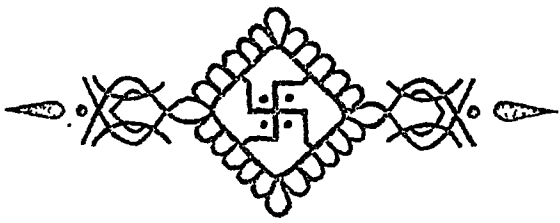
होता हो वहां श्रमणों और श्रमणियों को जाना नहीं कल्पता। कतिपय का यह मन्तव्य है कि उपाश्रय-शय्यातर गृह से लगाकर परम्परा से आते हुए घरों में जहां संखडी हो वहां जाना नहीं कल्पता।

२५३. वर्षावास में रहे हुए करपात्री श्रमण को कणमात्र भी स्पर्श हो इस प्रकार का वृष्टिकाय गिरता हो (वर्षा की फुहारें पड़ती हों),ऐसी दशा में (आहारादि के लिए) जाना नहीं कल्पता है।

२५४. वर्षावास में रहे हुए करपात्री श्रमण को पिण्डपात्र-गोचरी लेकर जहां घर न हो अर्थात् खुले आकाश में भोजन (गोचरी) करना नहीं कल्पता है। आच्छादन रहित खुले स्थान में वैठकर भोजन करते समय अचानक वृष्टिकाय गिरे (वर्षा हो जावे) तो जितने भाग को खा लिया है उसे खाकर और वचे हुए शेप खाद्य पदार्थों को लेकर, हाथ से ढक कर, उस हाथ को सीने से चिपकाकर रखे अथवा कांख (वगल) में छिपाकर रखे। ऐसा करके वह श्रमण जहां गृहस्थों के सम्यक् प्रकार से आच्छादित घर हों, उस तरफ जाय। अथवा वृक्ष के नीचे की ओर जाय। जिस हाथ में भोजन है उस हाथ से पानी की वूंदों – फुहारों आदि

Others do not include the house of lodging within the count.

253. During *paryuṣaṇa*, monks and nuns who use only their palms for their begging bowls, should not seek alms when it is raining, even if the rain be nothing more than a fine spray.

254. It is also not proper during such a rain for these monks and nuns to eat their food in an uncovered spot. These monks and nuns, having accepted food as alms, should not partake of it in an open place devoid of houses. If they happen to be eating in an open place and a sudden shower of rain were to fall, then they should cover the remaining food with their palm and hide it under the chest or the arm-pit. They should then move towards well-covered houses or trees : they should do their best to shelter the food from rain-drops and sprays of falling water.
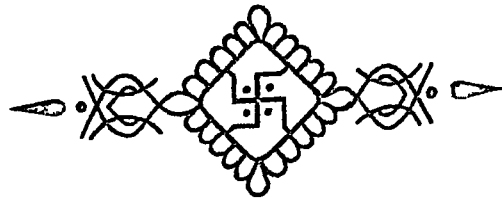
दगफुसिया वा नो परियावज्जइ ॥२५४॥

वासावासं पज्जोसवियस्स पाणिपडिग्गहियस्स भिक्खुस्स जं किंचि कणगफुसियमित्तं पि निवडइ, नो से कप्पइ भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२५५॥ वासावासं पज्जोसवियस्स पडिग्गहधारिस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ वग्घारियवुट्ठिकायंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, कप्पइ से अप्पवुट्ठिकायंसि संतरुत्तरंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२५६॥ (ग्रं. ११००)

वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स य गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अहे वियडगिहंसि वा अहे
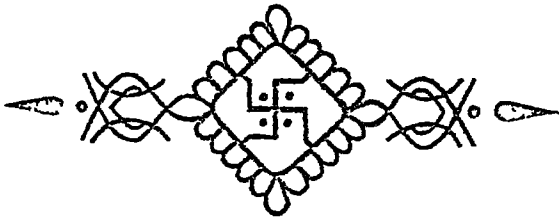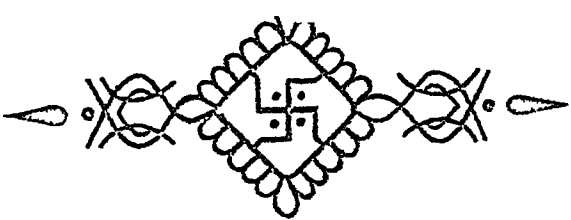
की विराधना न हो इस प्रकार वह श्रमण व्यवहार करे।

२५५. वर्षावास में रहे हुए पाणि-प्रतिग्राही – करपात्री भिक्षु को कणमात्र भी स्पर्श हो, इस प्रकार की बारीक फुहारें पड़ती हों, तब भोजन अथवा पानी के लिये गृहस्थ कुलों की तरफ निकलना और प्रवेश करना नहीं कल्पता।

255. Monks and nuns, who have just their palms as their begging bowls, should not start on their round of alms towards house-holders' houses, seeking food stuffs or drinks, if it be raining and if the falling drops be large enough to be felt on the body.

२५६. वर्षावास में रहे हुए पात्रधारी श्रमण को अविच्छिन्न धारा से वर्षा बरस रही हो, तब भोजन अथवा पानी के लिये गृहस्थकुलों की ओर निकलना और प्रवेश करना नहीं कल्पता। यदि अल्प वर्षा हो रही हो तब अन्दर सूती वस्त्र और उस पर ऊनी वस्त्र ओढ़कर, तथा पात्र एवं रजोहरण को अच्छी तरह आच्छादित कर भोजन अथवा पानी के लिये गृहस्थों के घरों की तरफ जाना और आना कल्पता है।

256. Monks and nuns who carry bowls, should not go seeking alms towards house-holders' homes when it is raining hard. They may go out if the rain be slight, provided they take care to cover themselves with an under-garment and an over-garment.

२५७. वर्षावास में रहे हुए और गोचरी के लिये गृहस्थों के घरों की ओर गये हुए पात्रधारी श्रमण और श्रमणियों को जब रुक-रुक कर वर्षा बरस रही हो, तब बगीचे में झाड़ के नीचे, अथवा उपाश्रय के नीचे, अथवा विकट गृह (खुले घर) में, अथवा वृक्ष के नीचे जाना कल्पता है।

257. During *paryuṣaṇa*, bowl-carrying monks or nuns, who have proceeded towards the homes of house-holders in order to seek alms, may take shelter under a grove, or in a house, or an open hall without walls *(vikaṭa-gṛha)* or a tree,
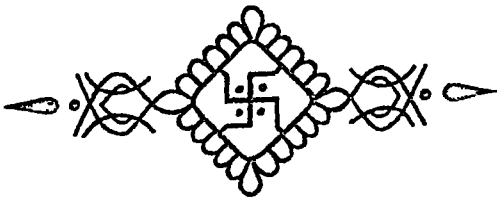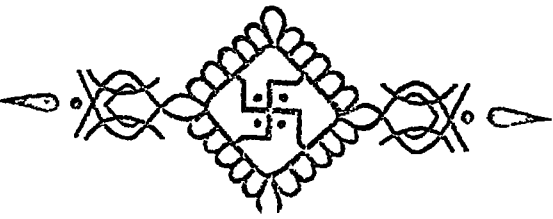
रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए, तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउ-लोदणे पच्छाउत्ते भिलिंगसूवे कप्पति से चाउलोदणे पडिग्गाहित्तए, नो से कप्पइ भिलिंगसूवे पडिग्गाहित्तए। तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंगसूवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे, कप्पइ से भिलिंगसूवे पडिग्गा-हित्तए, नो से कप्पइ चाउलोदणे पडिग्गाहित्तए। तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पुव्वाउत्ताइं कप्पंति से दो वि पडिग्गाहित्तए। तत्थ से पुव्वा-गमणेणं दो वि पच्छाउत्ताइं, नो से कप्पंति दो वि पडिग्गाहित्तए, जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते से कप्पइ पडिग्गाहित्तए, जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते, से नो कप्पइ पडिग्गाहित्तए ॥२५७॥

वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवायपडि-याए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे
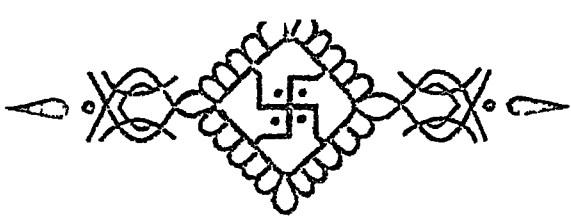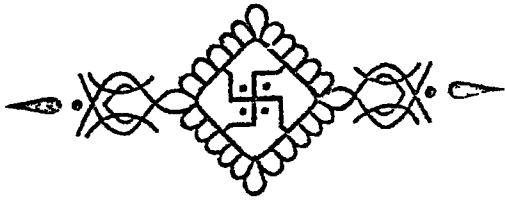
उपरोक्त स्थानों में जाने के बाद, वहां उस स्थान पर श्रमण अथवा श्रमणी के पहुंचने के पूर्व ही यदि तैयार किया हुआ चावल-ओदन मिलता है और पहुंचने के पश्चात् पीछे से तैयार किया हुआ "भिलिंगसूप" (दाल आदि) प्राप्त होता है, तब श्रमण अथवा श्रमणी को चावल-ओदन ग्रहण करना कल्पता है किन्तु भिलिंग सूप ग्रहण करना नहीं कल्पता है। वहां पहुंचने से पूर्व ही तैयार किया हुआ भिलिंगसूप (दाल आदि) मिलता है और पहुंचने के पश्चात् तैयार किया हुआ चावल ओदन मिलता है, तब उन्हें भिलिंग सूप ग्रहण करना कल्पता है, किन्तु चावल-ओदन ग्रहण करना नहीं कल्पता है। उक्त स्थान पर पहुंचने से पूर्व ही यदि दोनों वस्तुएं तैयार की हुई प्राप्त होती हैं तब उन्हें दोनों ही वस्तुएं ग्रहण करनी कल्पती हैं। उक्त स्थान पर पहुंचने के पश्चात् यदि दोनों वस्तुएं बनाई जाती हैं तो उन्हें दोनों ही वस्तुओं को स्वीकार करना नहीं कल्पता है। उक्त स्थान पर पहुंचने के पूर्व जो भी वस्तु तैयार हो, उसे ग्रहण करना कल्पता है और जो भी पदार्थ उनके वहां पहुंचने के पश्चात् बनाया गया हो, वह ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

२५८. वर्षावास में रहे हुए और भिक्षा के लिये गृहस्थ-कुलों की ओर गये हुए पात्रधारी निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थि-नियों को जब रह-रहकर वर्षा हो रही हो, तब

if it starts raining interminittently. And when tarrying in such places, if they are offered either a dish of rice which had been cooked before their arrival or pulse-soup which was cooked after their arrival, then they may accept the rice but not the soup. If both soup and rice were cooked *before* their arrival, then they may accept both. If both rice and soup were cooked *after* their arrival, then they should accept neither of the two. They may accept whatever has been cooked earlier but nothing that has been cooked after their arrival.

258. During *paryuṣaṇa*, bowl-carrying monks may take any of the above-mentioned shelters in case of intermittent showers.
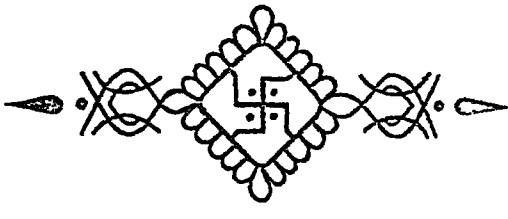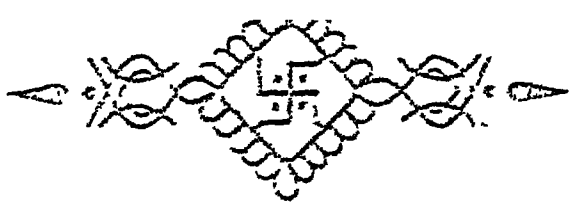
आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अहे वियडगिहंसि वा अहे रुक्ख-मूलंसि वा उवागच्छित्तए, नो से कप्पइ पुव्वगहिएणं भत्तपाणेणं वेलं उवायणावित्तए, कप्पइ से पुव्वामेव वियडगं भुच्चा पच्छा पडिग्गहगं संलिहिय २ संपमज्जिय २ एगाययं भंडगं कट्टु [जाव सेसे सूरिए] जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए, नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥२५८॥

वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा जाव उवागच्छित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए य निग्गंथीए एगयओ चिट्ठित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स दुण्हं य निग्गंथीणं एगयओ चिट्ठित्तए,
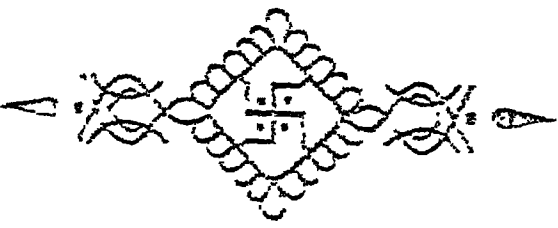
उद्यान की दीवार की छाया में अथवा उपाश्रय के नीचे, अथवा विकटगृह के नीचे, अथवा वृक्ष के नीचे चला जाना कल्पता है। वहां जाने के बाद पूर्वगृहीत भोजन पानी को रखकर समय नष्ट करना नहीं कल्पता है। उक्त स्थान पर पहुंचते ही विकटक – निर्दोप भोजन-पानी को खा-पीकर, पात्र अच्छी तरह साफकर, धोकर, एक साथ अच्छी तरह से बांधकर, सूर्य शेप रहे, उस समय तक उन्हें उपाश्रय की ओर जाना कल्पता है। किन्तु उक्त स्थान पर उस रात्रि को व्यतीत करना नहीं कल्पता है।

२५६. वर्पावास में रहे हुए और गोचरी के लिये गृहस्थों के घरों की ओर गये हुए पात्रधारी निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को, जब रह-रह कर वर्षा हो रही हो उस समय, उद्यान के नीचे, अथवा उपाश्रय के नीचे, यावत् चला जाना कल्पता है। १. वहां पर अकेले श्रमण को अकेली श्रमणी के साथ एक स्थान पर रहना नहीं कल्पता है, २. वहाँ अकेले श्रमण को दो श्रमणियों के साथ एक स्थान पर रहना नहीं कल्पता है।

But they should not put aside the alms they may have collected and idly while away their time in such places. They should rather partake of their uncontaminated food and drink as soon as they reach a shelter. They should, then, rinse their bowls properly, rub and scrub them clean, secure them together and proceed towards the house they are lodged in, before the sun sets. It is not proper for them to spend the night in that place.

259. During *paryuṣaṇa*, monks and nuns may take shelter as noted above, but it is not proper for a lone monk to be in the company of a lone nun in such a place.
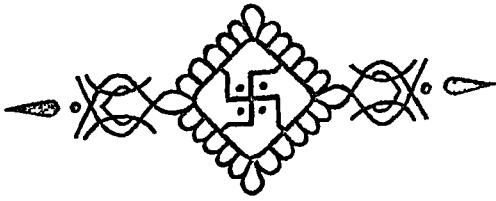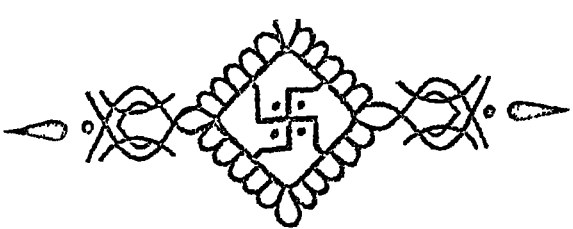
तत्थ नो कप्पइ दुण्ह य निग्गंथाणं एगाए य निग्गंथीए एगयओ चिट्ठित्तए, तत्थ नो कप्पइ दुण्ह य निग्गंथाणं दुण्ह य निग्गंथीणं एगयओ चिट्ठित्तए। अत्थि या इत्थ केति पंचमे खुड्ड-खुड्डियाए वा अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे एवण्हं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए।२५९।

वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा उवागच्छित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए य अगारीए एगयओ चिट्ठित्तए, एवं चउभंगो। अत्थि या इत्थ केति पंचमए थेरा वा थेरिया वा अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे एवं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए ॥२६०॥
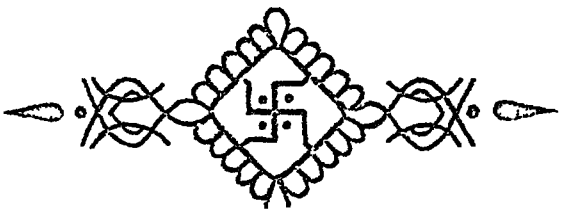
३. वहां दो साधुओं को अकेली साध्वी के साथ एक स्थान पर रहना नहीं कल्पता है। ४. वहां दो साधुओं को दो साध्वियों के साथ एक स्थान पर रहना नहीं कल्पता है। किन्तु यदि उस स्थान पर कोई पांचवां व्यक्ति विद्यमान हो, चाहे वह क्षुल्लक हो या क्षुल्लिका हो, अथवा अन्य दूसरे लोग उन्हें देख सकते हों, अथवा घर के चारों तरफ के द्वार खुले हुए हों तो उन्हें एकत्र रहना कल्पता है।

२६०. वर्षावास में रहे हुए और भिक्षा के लिये गृहस्थ कुलों की ओर गये हुए पात्रधारी श्रमण को जब रह-रह कर वर्षा वरस रही हो, तब उसे वगीचे के नीचे, अथवा उपाश्रय के नीचे चला जाना कल्पता है। वहां पर अकेले निर्ग्रन्थ को अकेली श्राविका के साथ एकत्र रहना नहीं कल्पता है। यहां पर भी एकत्र न रहने के संबन्ध में पूर्व-सूत्र के समान ही चार अंग समझ लेने चाहिए। किन्तु यदि उस स्थान पर पांचवां कोई व्यक्ति विद्यमान हो, चाहे वह स्थविर हो या स्थविरा हो, अथवा अन्य लोगों की दृष्टि उन पर पड़ सकती हो, अथवा घर के चारों ओर के द्वार खुले हुए हों, तव उन्हें एकत्र रहना कल्पता है।

Nor is it proper for a lone monk to be in the company of two nuns, or for a lone nun to be in the company of two monks, or for two monks to be in the company of two nuns. But if a fifth person is present, even if he or she be a novice monk or a novice nun, or if the place can be observed by others or if all doors are open, then it is proper for them to be together. The same rule applies in case of nuns and lay-men.
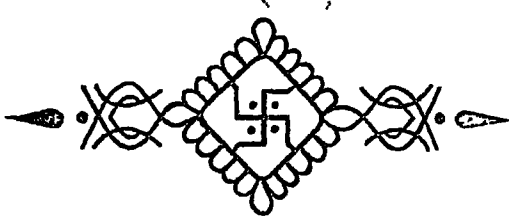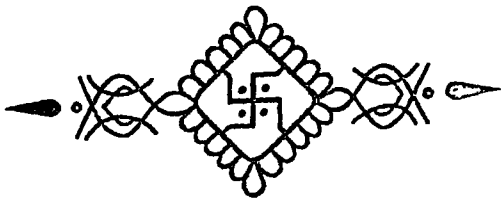
[एवं चेव निग्गंथीए अगारस्स य भाणियव्वं ॥२६१॥]

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अपरिण्णएणं अपरिण्णयस्स अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिग्गाहित्तए। से किमाहु भंते ? इच्छा परो अपडिण्णए भुंजिज्जा, इच्छा परो न भुंजिज्जा ॥२६२॥

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा उदउल्लेण वा ससिणिद्धेण वा काएणं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए ॥२६३॥

से किमाहु भंते ? सत्त सिणेहाययणा, तंजहा—पाणी, पाणिलेहा, नहा, नहसिहा, भमुहा, अहरोट्ठा, उत्तरोट्ठा। अह पुण एवं जाणिज्जा—
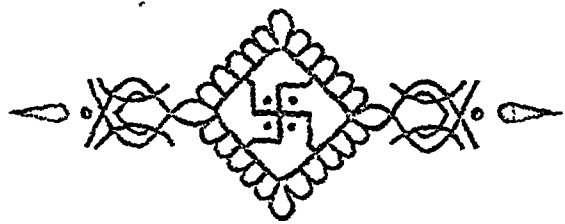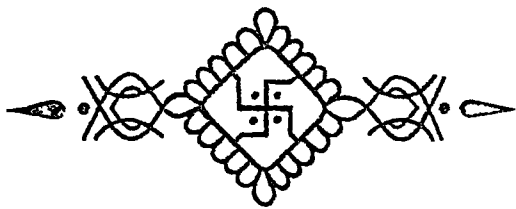
२६१. इसी प्रकार साध्वी और श्रावक के एकत्र रहने के सम्बन्ध में पूर्व-सूत्र के अनुसार चार अंग कहने चाहिए।

२६२. वर्षावास में रहे हुए श्रमण और श्रमणी को दूसरे किसी के कहे विना अथवा दूसरे को सूचना दिये विना उनके निमित्त अशन, पान, खादिम और स्वाद्य पदार्थों को ग्रहण करना नहीं कल्पता है। प्रश्न – हे भगवन्! ऐसा क्यों कहते हैं? उत्तर – दूसरे किसी के कहे विना या दूसरे को पूछे विना लाये हुए अशनादि आहार को उसकी इच्छा होगी तो वह भक्षण करेगा, इच्छा नहीं होगी तो वह नहीं खायेगा।

२६३. वर्षावास में रहे हुए निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थिनियों को यदि उनके शरीर पर से पानी टपकता हो या उनका शरीर गीला (आर्द्र) हो तो उन्हें अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थों का भक्षण करना नहीं कल्पता है।

२६४. हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं? उत्तर – शरीर के सात भाग स्नेहायतन बताये गये हैं। अर्थात् शरीर में सात भाग ऐसे हैं, जहां पानी टिक सकता है। वे सात स्नेहायतन इस प्रकार हैं :– १. दोनों हाथ, २. दोनों हाथों की रेखायें, ३. नाखून, ४. नाखून का अग्रभाग, ५. भौंहें, ६. दाढ़ी और ७. मूंछ। जब निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी को ऐसी प्रतीति हो जाय कि

262. It is not proper during *paryuṣaṇa* to seek alms in the form of food-stuffs, drinks, savoury meals or delicacies for the sake of another person unless he has been asked to do so or unless the person for whom the food-stuff is intended has been apprised of this. Why is this being said? Because a person, for whom another brings something without his asking for it or without his being aware of it, may or may not partake of it, doing as he pleases.

263. During *paryuṣaṇa*, monks and nuns should not partake of any food-stuff if their body is wet or moist.

264. Why is this being said? Because there are seven parts of the human body which retain moisture : namely, the two hands, the lines on the hands, the nails, the nail-tips, the brows, the lower lip and the upper lip. When a monk is certain that there is no moisture on his body, then he may partake of his meal.
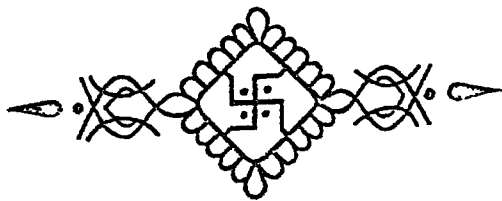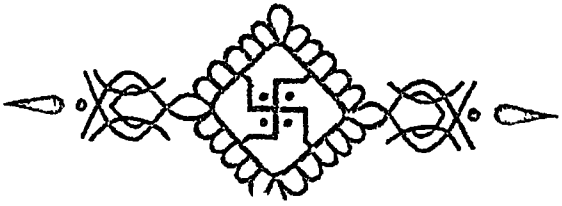
विगओदए से काए छिन्नसिणेहे, एवं से कप्पइ असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए ॥२६४॥

वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं अट्ठ सुहुमाइं, जाइं छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वाइं पासियव्वाइं पडिलेहियव्वाइं भवंति, तं जहा—पाणसुहुमं, पणगसुहुमं, बीयसुहुमं, हरियसुहुमं, पुप्फसुहुमं, अंडसुहुमं, लेणसुहुमं, सिणेहसुहुमं ॥२६५॥

से किं तं पाणसुहुमे ? पाणसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा—किण्हे, नीले, लोहिए, हालिद्दे, सुक्किल्ले। अत्थि कुंथू अणुद्धरी नामं, जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं नो चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जा अट्ठिया चलमाणा छउमत्थाणं
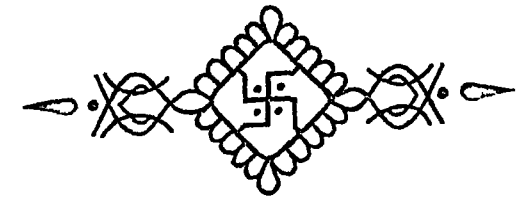
उनका शरीर जल रहित हो गया है, आर्द्रता रहित हो गया है, तब उन्हें अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थों का भक्षण करना कल्पता है।

२६५. यहां वर्षावास में रहे हुए श्रमण और श्रमणी को ये आठ सूक्ष्म अवश्य जानने चाहिए। प्रत्येक छद्मस्थ साधु और साध्वी को ये आठ सूक्ष्म पुनः पुनः जानने चाहिए, देखने चाहिए और पुनः पुनः प्रतिलेखना करनी चाहिये। ये आठ सूक्ष्म इस प्रकार हैं :— १. प्राण सूक्ष्म, २. पनक सूक्ष्म, ३. बीज सूक्ष्म, ४. हरित सूक्ष्म, ५. पुष्प सूक्ष्म, ६. अण्ड सूक्ष्म, ७. लयन सूक्ष्म और ८. स्नेह सूक्ष्म।

265. During *paryuṣaṇa*, monks and nuns should be intently aware of the following eight kinds of minute beings and remain constantly alert in detecting them. These beings are : living beings, fungi, seeds, sprouts, flowers, eggs, habitats and moisture particles.

२६६. प्रश्न – वह प्राणसूक्ष्म क्या है ?
उत्तर – प्राणसूक्ष्म (अत्यन्त बारीक जो साधारण नेत्रों से न देखा जाए) पांच प्रकार का कहा गया है। यथा – १. कृष्ण रंग के सूक्ष्म प्राण, २. नीले रंग के सूक्ष्म प्राण, ३. लाल रंग के सूक्ष्म प्राण, ४. पीले रंग के सूक्ष्म प्राण और ५. श्वेत रंग के सूक्ष्म प्राण। अनुद्धरी (क्षुद्रजन्तु) कुन्थुआ नामक सूक्ष्म प्राणी है। वह कुन्थुआ यदि स्थिर रहता है, गमनादि क्रिया नहीं करता है, तो छद्मस्थ साधु और साध्वी की दृष्टि में सहसा नहीं आता है। यदि वह अस्थिर और चलायमान हो तो छदमस्थ

266. What are minute living beings ?

They are said to be of five varieties : black, blue, red, yellow and white. There is an extremely minute being called Anuddharī which, when it remains still and unmoving, cannot be readily perceived by a monk or a nun who is still in a state of relative ignorance.
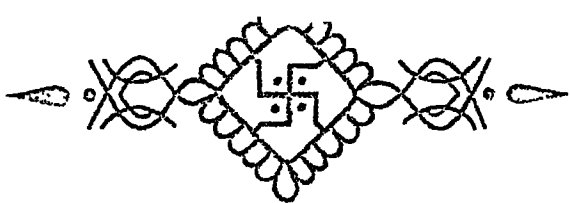
चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, जा छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वा पासियव्वा पडिलेहियव्वा भवइ, से तं पाणसुहुमे ॥ १ ॥ ॥२६६॥

से किं तं पणगसुहुमे ? पणगसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–किण्हे नीले, लोहिए, हालिद्दे, सुक्किल्ले । अत्थि पणगसुहुमे तद्दव्वसमाणवण्णए नामं पण्णत्ते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहियव्वे भवति । से तं पणगसुहुमे ॥ २ ॥ ॥२६७॥

से किं तं बीयसुहुमे ? बीयसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा–किण्हे जाव सुक्किल्ले । अत्थि बीयसुहुमे कण्णियासमाणवण्णए नामं पन्नत्ते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहियव्वे भवति । से तं बीयसुहुमे ॥ ३ ॥ ॥२६८॥
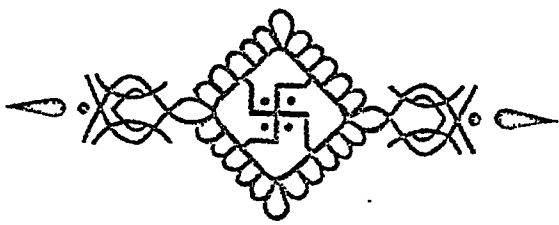
श्रमण और श्रमणी के दृष्टिपथ में शीघ्र ही आ जाता है। अतएव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी को पुनः पुनः उसे जानना चाहिए, देखना चाहिए और प्रतिलेखना करनी चाहिए। यह प्राणसूक्ष्म हुआ।

२६७. प्रश्न – वह पनकसूक्ष्म क्या है ?
उत्तर – पनकसूक्ष्म (लीलन-फूलन) पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे – १. कृष्ण रंग की पनक, २. नीले रंग की पनक, ३. लाल रंग की पनक, ४. पीले रंग की पनक और ५. सफेद रंग की पनक। पनक अर्थात् लीलन-फूलन, फुग्गी या सेवाल जो अत्यन्त बारीक होती है। वह द्रव्य (वस्तु) के साथ मिल जाने के कारण एक-समान वर्ण रंग वाली होती है, ऐसा कहा गया है। इसलिये छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी को उसे अच्छी तरह से जानना चाहिए, यावत् प्रतिलेखना करनी चाहिए। इसे पनक सूक्ष्म कहते हैं।

२६८. प्रश्न – बीजसूक्ष्म किसे कहते हैं ?
उत्तर – बीजसूक्ष्म पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे – कृष्ण बीज सूक्ष्म, यावत् श्वेत बीज सूक्ष्म। छोटे से छोटे कण के समान वर्ण-रंग वाला बीजसूक्ष्म कहलाता है। अतः छद्मस्थ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी को उनकी पुनः-पुनः यावत् प्रतिलेखना करनी चाहिए। इसे बीजसूक्ष्म कहते हैं।

But it can be easily perceived when it moves. Monks and nuns should be constantly alert in order to detect this being and should remain intently aware of it.

267. What are minute fungi ?
They are said to be of five varieties : black, blue, red, yellow and white. There are some fungi which are of the same colour as the substance on which they grow. Monks and nuns should remain constantly alert in order to detect them.

268. What are minute seeds ?
They are of five varieties : black, blue, red, yellow and white. There are some minute seeds which are like minute particles of sand and have the same colour. Monks and nuns should be constantly alert in order to detect them.
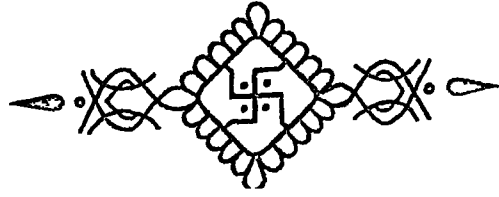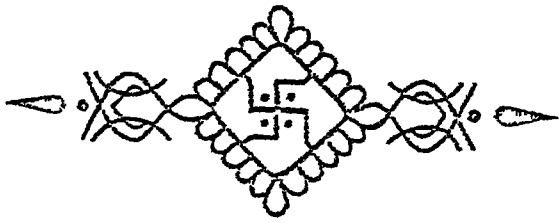
से किं तं हरियसुहुमे ? हरियसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा— किण्हे जाव सुक्किल्ले । अत्थि हरियसुहुमे पुढवीसमाणवण्णए जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवति । से तं हरियसुहुमे ॥ ४ ॥ ॥२६९॥

से किं तं पुप्फसुहुमे ? पुप्फसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—किण्हे जाव सुक्किल्ले । अत्थि पुप्फसुहुमे रुक्खसमाणवण्णए नामं पण्णत्ते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वे जाव पडिलेहियव्वे भवति । से तं पुप्फसुहुमे ॥ ५ ॥ ॥२७०॥

से किं तं अंडसुहुमे ? अंडसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—उद्दंसंडे, उक्कलियंडे, पिपीलियंडे, हलियंडे, हल्लोहलियंडे, जे छउमत्थेणं
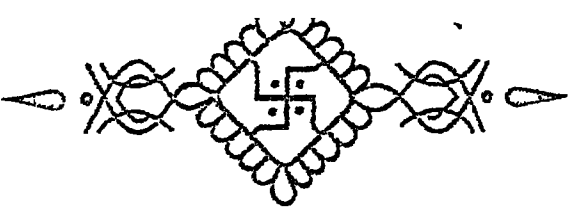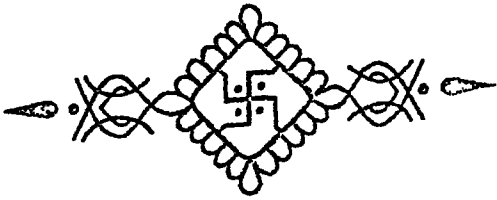
२६९. प्रश्न – हरित सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – हरित सूक्ष्म पांच प्रकार का कहा गया है। यथा – श्याम हरित सूक्ष्म, यावत् श्वेत हरित सूक्ष्म। पृथ्वी के रंग के समान हरित सूक्ष्म (वनस्पति) का रंग होता है। अतः छद्मस्थ श्रमण और श्रमणी को वारंवार जानना चाहिए, देखना चाहिए और प्रतिलेखना करनी चाहिए। इसे हरित सूक्ष्म कहते हैं।

२७०. प्रश्न – वह पुष्पसूक्ष्म क्या है ?

उत्तर – पुष्पसूक्ष्म पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे – कृष्ण पुष्प सूक्ष्म, यावत् श्वेत पुष्प सूक्ष्म। वृक्ष के वर्ण के समान पुष्प सूक्ष्म का वर्ण कहा गया है। इसे छद्मस्थ साधु और साध्वी को निरन्तर जानना चाहिए, यावत् प्रतिलेखना करनी चाहिए। यह पुष्प सूक्ष्म हुआ।

२७१. प्रश्न – वह अण्ड सूक्ष्म क्या है ?

उत्तर – अण्ड सूक्ष्म पांच प्रकार का कहा गया है। यथा – १ डंक देने वाली मधुमक्षिका, खटमल आदि के अण्डे, २. मकड़ी के अण्डे, ३. चींटियों के अण्डे, ४. छिपकली के अण्डे और ५. कानड़ा (गिरगिट) के अण्डे। छद्मस्थ

269. What are minute sprouts ?

They are of five varieties and of the same five colours as above. There are some sprouts which have the same colour as the earth. Monks and nuns should be constantly alert in order to detect and protect them.

270. What are minute flowers ?

They are also of the same five varieties and the same colours as above. There are some minute flowers which are of the same colour as the tree on which they grow. Monks and nuns should be constantly alert in order to detect them.

271. What are minute eggs ?

They, too, are of five varieties : eggs of insects that sting, of spiders, ants, lizards and chameleons.

निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहियव्वे भवति। से तं अंडसुहुमे ॥ ६ ॥ ॥२७१॥

से किं तं लेणसुहुमे ? लेणसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—उत्तिंगलेणे, भिंगुलेणे, उज्जुए, तालमूलए संबुक्कावट्टे नामं पंचमे, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वे जाव पडिलेहियव्वे भवति। से तं लेणसुहुमे ॥ ७ ॥ ॥२७२॥

से किं तं सिणेहसुहुमे ? सिणेहसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—उस्सा, हिमए, महिया, करए, हरतणुए, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाव पडिलेहियव्वे भवति। से तं सिणेहसुहुमे ॥ ८ ॥ ॥२७३॥
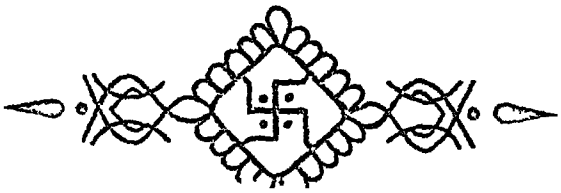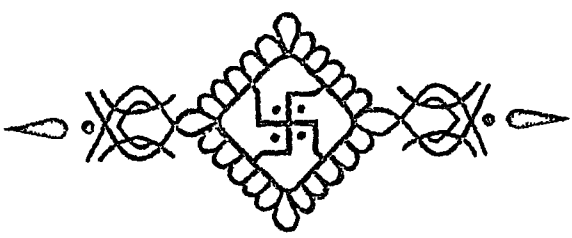
साधु और साध्वियों को इन सूक्ष्म अण्डों की निरन्तर, यावत् प्रतिलेखना करनी चाहिए। यह अण्ड सूक्ष्म हुआ।

२७२. प्रश्न – लयन सूक्ष्म क्या है ?

उत्तर – लयन अर्थात् बिल जो अत्यन्त बारीक होने से साधारण नेत्रों से न देखा जा सके, वह लयन सूक्ष्म है। वह लयन सूक्ष्म पांच प्रकार का कहा गया है। यथा – १. उत्तिगलयन-गधैया अथवा चींटी आदि जीवों के रहने के बिल, २. भिगुलेण अर्थात् पानी सूखने के पश्चात् जहां दरारें पड़ गई हों, उन दरारों में बनाये गये बिल, ३. उज्जुए अर्थात् सामान्य बिल, ४. ताल-मूलक अर्थात् ताड़ वृक्ष के समान ऊपर से संकुचित और भीतर से विस्तृत बिल, और ५. शम्बूकावर्त अर्थात् शंख की आकृति वाले भ्रमर आदि के बिल। छद्मस्थ भिक्षु और भिक्षुणी को ये बिल निरन्तर जानने, यावत् प्रतिलेखना करने योग्य हैं। यह लयन सूक्ष्म हुआ।

२७३. प्रश्न – वह स्नेह सूक्ष्म क्या है ?

उत्तर – स्नेह अर्थात् गीलापन। स्नेह सूक्ष्म पांच प्रकार का कहा गया है। यथा – १. ओस, २. हिम, ३. कुहरा, ४. ओले और ५. हरतनु अर्थात् भूमि का भेदन कर निकली हुई जल की बूंद। छद्मस्थ श्रमण और श्रमणी को इन पांच स्नेहों को बारंबार जानना चाहिए यावत् प्रतिलेखन करना चाहिए। यह स्नेह सूक्ष्म हुआ।

Monks and nuns should be constantly alert in order to detect and protect them.

272. What are minute habitats ?

They are of five kinds : ant-holes and the like, furrows, holes, cavities which widen on the inside like the base of a palm-tree and wasps' nests which are shaped and grooved like conches. Monks and nuns should remain constantly alert in order to detect them.

273. What are minute moisture particles ?

They are of five varieties : dew, frost, fog, hail-stones and small water-particles that stick to the tips of grasses. Monks and nuns should remain constantly alert in order to detect them.

वासावासं पज्जोसविए भिक्खु इच्छिज्जा गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा उवज्झायं वा थेरं वा पवत्ति वा गणिं वा गणहरं वा गणावच्छेययं वा जं वा पुरओ काउं विहरति, कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव जं वा पुरओ काउं विहरइ—"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा" ते य से वियरिज्जा एवं से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा जाव पविसित्तए वा, ते य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा जाव पविसित्तए वा। से किमाहु भंते!? आयरिया पच्चवायं जाणंति ।२७४।
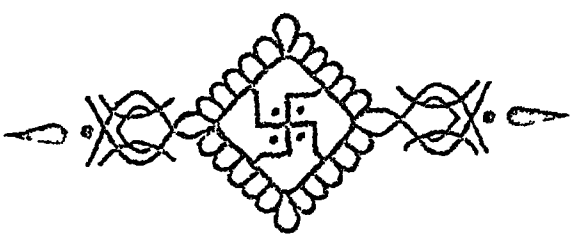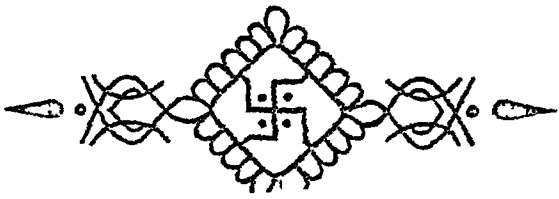
२७४. वर्षावास में रहे हुए भिक्षु को आहार अथवा पानी के लिये गृहस्थकुलों की तरफ जाने और आने की इच्छा हो तो, आचार्य से, अथवा उपाध्याय से, अथवा स्थविर से, अथवा प्रवर्त्तक से, अथवा गणि से अथवा गणमुख्य से अथवा गणावच्छेदक से, अथवा जिस किसी की आज्ञा में विचरण कर रहा हो, उससे अनुमति लिये विना जाना नहीं कल्पता है। किन्तु आचार्य से यावत् जिसकी आज्ञा में विचर रहा है, उससे पूछकर, अनुमति लेकर जाना-आना कल्पता है। भिक्षु उन्हें इस प्रकार पूछता है – "हे भगवन्! आपकी अनुमति प्राप्त होने पर मैं आहार अथवा पानी के लिये गृहस्थों के घरों की ओर जाने और आने की इच्छा रखता हूं।" इस पर यदि वे अनुमति प्रदान करें तो उस श्रमण को गृहस्थकुलों की ओर भोजन और पानी के लिये निकलना तथा प्रवेश करना कल्पता है। यदि वे आज्ञा प्रदान नहीं करें तो उस भिक्षु को गृहस्थ-घरों की तरफ भोजन और पानी के लिये जाना-आना नहीं कल्पता है।

प्रश्न – हे भगवन्! आप ऐसा क्यों कहते हैं?

उत्तर – आज्ञा देने अथवा न देने में आचार्यगण प्रत्यवाय-विघ्नों के जानकार होते हैं।

274. During *paryuṣaṇa*, monks and nuns desirous of making a round of house-holders' homes for seeking alms, should not set out without the permission of either the *ācārya*, or the *upādhyāya*, or the *sthavira*, or the master (*pravartaka*), or the *gaṇin*, or the head of the *gaṇa*, or the founder of the *gaṇa*, or whoever be the superior. They may go only if they have permission to go. A monk should so address his superior, "Sir, with your permission I want to set out towards householders' homes in order to seek alms". He may go if permission is granted; but not otherwise. Why is this being laid down? Because *ācāryas* know of good or bad consequences (*pratyavāya*).
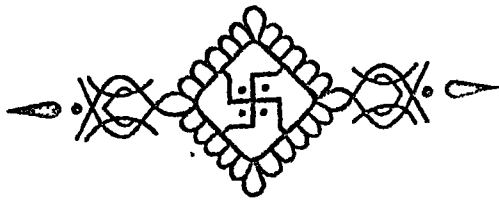
एवं विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा अन्नं वा जं किंचि पओयणं, एवं गामाणुगामं दूइज्जित्तए ॥२७५॥

वासावासं पज्जोसविए भिक्खु इच्छिज्जा अण्णयरिं विगइं आहारित्तए, नो से कप्पइ से अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेययं वा जं वा पुरओ कट्टु विहरइ, कप्पइ से आपुच्छित्ता णं तं चेव–इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अन्नयरिं विगइं आहारित्तए, तं एवइयं वा एवतिक्खुत्तो वा, ते य से वियरेज्जा एवं से कप्पइ अण्णयरिं विगइं आहारित्तए, ते य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पति अण्णयरिं विगइं आहारित्तए। से किमाहु भंते ! ? आयरिया पच्चवायं जाणंति ॥२७६॥
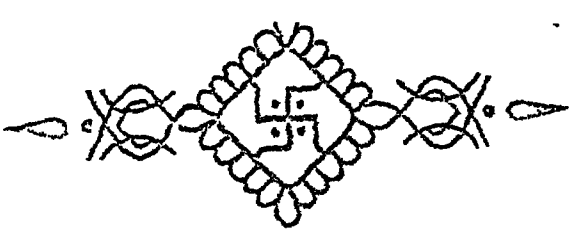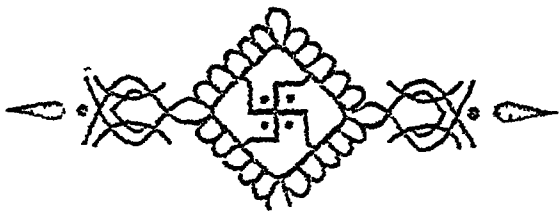
२७५. इस प्रकार विहारभूमि, अथवा विचारभूमि, अथवा अन्य किसी प्रयोजन के लिये, वा एक ग्राम से दूसरे गांव जाना आदि समस्त प्रवृत्तियों के लिये पूर्वोक्त प्रकार से अनुमति प्राप्त करनी चाहिए।

२७६. इसी प्रकार वर्षावास में रहा हुआ श्रमण यदि किसी भी प्रकार की एक विगय लेना चाहे तो, आचार्य से, अथवा यावत् गणावच्छेदक से, अथवा जिसकी अनुज्ञा में विचरण कर रहा हो, उससे पूछे विना उसे वैसा करना नहीं कल्पता है। आचार्यादि से पूछकर उसे इस प्रकार करना कल्पता है। साधु उनसे इस प्रकार पूछे – "हे भगवन्! आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं कोई भी एक विगय को इतने प्रमाण में और इतनी वार खाना चाहता हूं।" ऐसा पूछने पर वे यदि स्वीकृति प्रदान करें तो उस भिक्षुक को कोई एक विगय खाना कल्पता है। यदि वे अनुमति प्रदान नहीं करें तो उस साधु को कोई भी विगय ग्रहण करना – खाना, नहीं कल्पता है। प्रश्न – हे भगवन्! आप ऐसा किसलिये कहते हैं? उत्तर – आचार्य हानि-लाभ को जानते हैं।

The same rule applies for monks and nuns who wish to set out for their place of study (*vihāra-bhūmi*), or for easing nature or for any other purpose including movement from one village to another.

276. Similarly, if a monk wishes to partake of any contaminated (*vikṛta*) food stuff or drink during *paryuṣana*, he should not do so without the permission of his superiors. He may do so only if permitted. A monk should so address his superior : "Sir, with your permission, I wish to take such and such a contaminated substance in such and such and a quantity and so many times". If permitted, he may partake of the said substance but not otherwise. Why is this rule being laid down ? Because the *ācāryas* know of good and bad consequences.
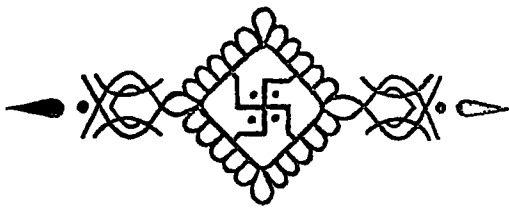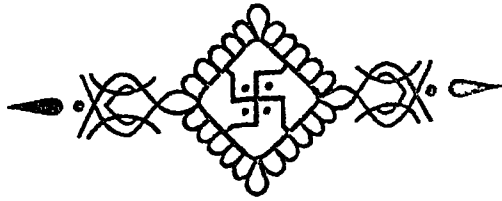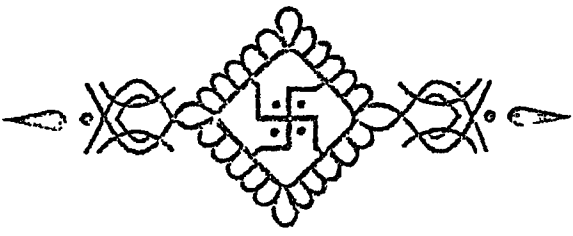
वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरिं तेइच्छिअं आउट्टित्तए, तं चेव सव्वं ॥२७७॥

वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरं ओरालं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता, तं चेव सव्वं ॥२७८॥

वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अपच्छिममारणंतिय-संलेहणाजूसणाजुसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरित्तए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए वा, उच्चार-पासवणं वा

२७७. वर्षावास में वहां रहा हुआ साधु किसी भी प्रकार की चिकित्सा करवाने की इच्छा रखता हो तो इस सम्बन्ध में सारा कथन पूर्वसूत्र के समान ही समझना चाहिए।

२७८. वर्षावास में स्थित श्रमण कोई एक प्रकार का श्रेष्ठतम तप-कर्म—तपश्चर्या स्वीकार कर विचरण करने की इच्छा करे तो आचार्यादि की अनुमति के बिना करना नहीं कल्पता है। इस सम्बन्ध में भी सारा कथन पूर्व-सूत्र के समान ही समझना चाहिये।

२७९. वर्षावास में स्थित भिक्षु सब से अन्तिम मारणान्तिक संलेखना (अनशन) का आश्रय लेकर उस अनशन द्वारा शरीर को नष्ट करने की इच्छा से आहार और पानी का त्याग कर, पादपोपगत-वृक्ष की तरह निश्चल होकर, मृत्यु की आकांक्षा नहीं रखता हुआ विचरण करने की अभिलाषा रखे और इस दृष्टि से कहीं जाना और आना चाहे, अथवा (अनशन करने के पूर्व) अशन, पान, खादिम और स्वाद्य पदार्थों को भक्षण करने की इच्छा करे, अथवा मल-मूत्रादि त्याग

277-279. The same procedure should be followed if a monk desires a medical cure or wants to make a great ascetic endeavour; also if he wishes to undertake a fast till he breathes his last by giving up all food and drink and by becoming motionless like the trunk of a tree, awaiting death without wanting it; and with this aim in mind he wants to go to or come to some place or to partake of certain food-stuffs, or to go out for easing nature, or to undertake canonic studies or to keep religious vigils. He should not do any of these without permission.

परिट्ठावित्तए, सज्झायं वा करित्तए, धम्मजागरियं वा जागरित्तए। नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता, तं चेव ॥२७९॥

वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा अण्णयरिं वा उवहिं आयावित्तए वा पयावित्तए वा। नो से कप्पइ [एगं वा अणेगं वा अपडिण्णवित्ता] गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए, बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा सज्झायं वा करित्तए, काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए। अत्थि या इत्थ केइ अहासण्णिहिए एगे वा अणेगे वा कप्पइ से एवं वदित्तए–'इमं ता अज्जो! [तुमं] मुहुत्तगं वियाणाहि जाव ताव अहं गाहावइकुलं जाव काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए'
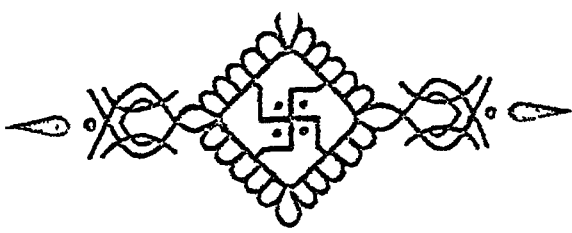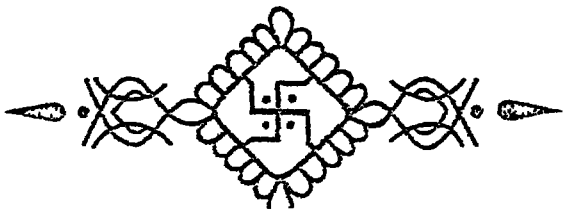
करने की इच्छा करे, अथवा स्वाध्याय करने की इच्छा करे, अथवा धर्मजागरिका के साथ जागृत रहने की इच्छा करे, तो उसे ये सभी प्रवृत्तियां आचार्यादि की अनुमति के विना करनी नहीं कल्पती हैं। इन समग्र प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी पूर्व-सूत्र के अनुसार ही कहना चाहिए।

२८०. वर्षावास में रहा हुआ श्रमण वस्त्र, अथवा पात्र, अथवा कम्बल, अथवा पादप्रोंछनक, अथवा अन्य कोई उपधि को धूप में तपाने की इच्छा रखे, अथवा धूप में वारंवार तपाने की इच्छा रखे, तो तत्सम्बन्धी एक या अनेक व्यक्तियों को सूचना दिये विना उसे गृहस्थों के घरों की ओर भोजन अथवा पानी के लिये जाना और आना नहीं कल्पता है, अथवा अशन, पान, खादिम और स्वादिम का भक्षण करना नहीं कल्पता है, विहार-भूमि या विचारभूमि की तरफ जाना नहीं कल्पता है, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग करना नहीं कल्पता है तथा ध्यानादि के लिये खड़ा रहना नहीं कल्पता है।

जहां एक अथवा अनेक साधु विद्यमान हों तब उनसे उस श्रमण को इस प्रकार कहना चाहिए – 'हे आर्यो! आप कुछ समय तक इस तरफ ध्यान रख, जब तक कि मैं गृहस्थ-कुलों की ओर जाकर आता हूं, यावत् कायोत्सर्ग करता हूं अथवा ध्यानमुद्रा में खड़ा रहता हूं।'

280. If, during *paryuṣaṇa*, a monk wishes to put such articles as his robe, or bowl, or blanket, or the towel used for wiping the feet, or any of his other belongings in the heat of the sun, then he should inform one or more persons of this fact before setting out for seeking alms with a view to partake of his meals or before setting out for easing nature or visiting the temple *(vihāra-bhūmi)* or before going out for canonic lessons or for practising the posture of 'giving up the body' *(kāyōtsarga)* by standing or by lying down. If there are one or more monks nearby, they should be so addressed "Sir, please keep an eye on this for a moment, while I may be away for such and such a purpose".
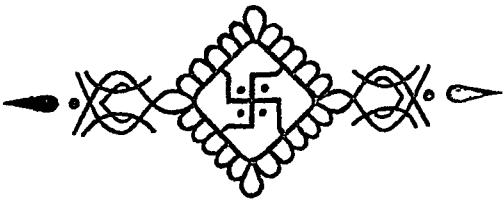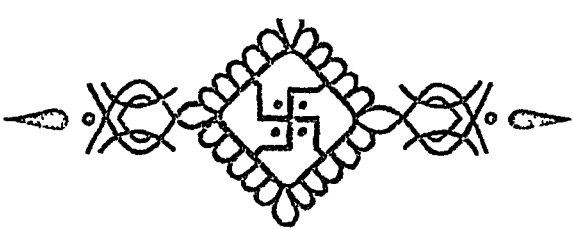
[से य से पडिसुणिज्जा, एवं से कप्पइ गाहावइकुलं तं चेव। से य से नो पडिसुणिज्जा, एवं से नो कप्पइ गाहावइकुलं जाव काउस्सग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए] ॥२८०॥

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अणभिग्गहियसेज्जासणिएण होत्तए, आयाणमेयं, अणभिग्गहियसिज्जासणियस्स अणुच्चाकुइयस्स अणट्ठाबंधिस्स अमियासणियस्स अणातावियस्स असमियस्स अभिक्खणं २ अप्पडिलेहणासीलस्स अप्पमज्जणासीलस्स तहा तहा णं संजमे दुराराहए भवइ। अणायाणमेयं, अभिग्गहियसेज्जासणियस्स उच्चाकुवियस्स अट्ठाबंधिस्स मियासणियस्स
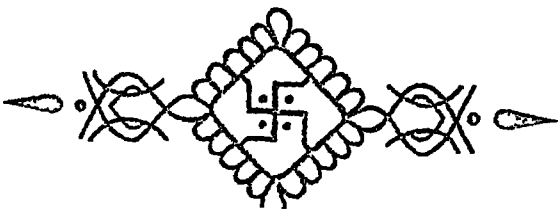
वे यदि भिक्षु के इस कथन को स्वीकृति प्रदान करें तो उस साधु को भोजन-पानी के लिये गृहस्थ-कुलों की ओर जाना-आना कल्पता है, यावत् ध्यानमुद्रा में खड़ा रहना कल्पता है। यदि वे भिक्षुक के उक्त कथन को स्वीकार नहीं करें तो उस भिक्षुक को गृहपति-कुलों की ओर जाना-आना, यावत् कायोत्सर्ग करना या ध्यानमुद्रा में खड़ा रहना नहीं कल्पता है।

If the person addressed, promises to look after the said article during the monk's absence, he may go, but not otherwise.

२८१. वर्षावास में रहे हुए श्रमणों और श्रमणियों को शय्या और आसन का अभिग्रह किये बिना रहना नहीं कल्पता है। यह आदान है अर्थात् दोषों का कारण है—जो साधु और साध्वी शय्या और आसन का अभिग्रह नहीं करते हैं, उन्हें जमीन से ऊंचा नहीं रखते हैं, स्थिर नहीं रखते हैं, अकारण हो उन्हें बांधते रहते हैं, बिना माप के आसन रखते हैं, आसनादि को धूप नहीं दिखाते हैं, समितियों में सावधान नहीं रहते हैं, पुनः पुनः प्रतिलेखना नहीं करते हैं और बारम्बार प्रमार्जना नहीं करते हैं, उनको तथाप्रकार से संयम की आराधना करना कठिनतम होता है।

यह अनादान है अर्थात् दोष रहित है—जो श्रमण अथवा श्रमणी शय्या और आसन का अभिग्रह करते हैं, शय्यादि को जमीन से ऊंचा रखते हैं, स्थिर रखते हैं, उनको निरर्थक पुनः पुनः नहीं बांधते हैं, प्रमाण युक्त आसनादि रखते हैं,

281. During *paryuṣaṇa*, monks or nuns should give proper attention to their mattresses and seat-spreads. The reason is this : a monk who does not pay due attention to his mattress or his seat spread, and does not store it at a sufficient height from the floor, or does not secure it properly, tying it with too long a string, or not making sure that the string is of the right size or does not keep these articles in the sun when necessary, or does not make proper of them *(samiti-rahita)*, or does not inspect them at regular intervals and does not clean them frequently—such a monk will find it exceedingly difficult to practise self-control.
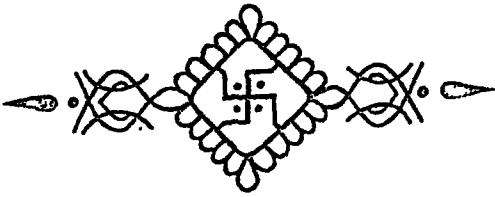
आयावियस्स समियस्स अभिक्खणं २ पडिलेहणासीलस्स पमज्जणासी-लस्स तहा तहा णं संजमे सुआराहए भवति ॥२८१॥

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उच्चारपासवणभूमीओ पडिलेहित्तए, न तहा हेमंतगिम्हासु जहा णं वासासु, से किमाहु भंते! ? वासासु णं ओस्सण्णं पाणा य तणा य बीयाणि य हरियाणि य भवंति ॥२८२॥

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ मत्तगाइं गिण्हित्तए, तं जहा—उच्चारमत्तए, पासवणमत्तए, खेलमत्तए ॥२८३॥

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ गोलोमप्पमाणमित्ते वि केसे तं रयणिं उवा-

समय-समय पर आसनादि को धूप दिखाते रहते हैं, समितियों का सावधानी से पालन करते हैं, पुनः पुनः प्रतिलेखना करते हैं और पुनः पुनः प्रमार्जना करते हैं, उनको उस-उस प्रकार से संयम सुखाराध्य होता है।
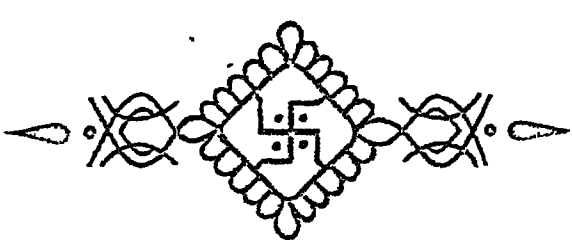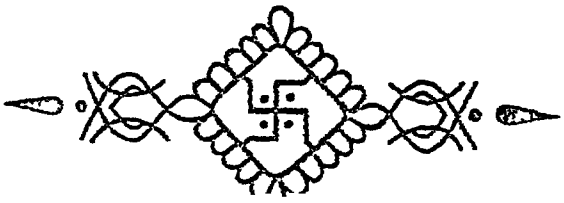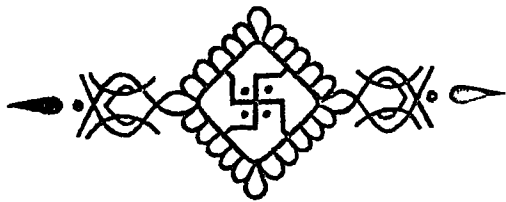
But a monk who pays due attention to his mattress and his seatspread will find self-control easy to acquire.

२८२. वर्षावास में स्थित साधुओं और साध्वियों को शौच और लघुशंका के लिये तीन स्थानों की प्रतिलेखना करनी चाहिए। जिस प्रकार उन्हें वर्षा ऋतु में करने का होता है, उस प्रकार उन्हें हेमन्त ऋतु और ग्रीष्म ऋतु में करने का नहीं होता।

प्रश्न – हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते हैं ?
उत्तर – वर्षा ऋतु में प्राणधारी क्षुद्रजीव, तृण, बीज, पवन (लीलन-फूलन) और हरित ये, सभी अधिकतर पुनः पुनः होते रहते हैं।

282. During *paryuṣaṇa*, monks and nuns should very carefully inspect the places where they go for easing nature. An extreme care is not necessary during winter or summer, but it is during rains. Why so? Because during rains living beings, grasses, seeds, fungi and sprouts multiply frequently.

२८३. वर्षावास में स्थित श्रमणों और श्रमणियों को निम्नोक्त तीन प्रकार के पात्रों को ग्रहण करना कल्पता है – शौच के लिये, मूत्र के लिये और कफादि थूकने के लिये।

283. During this season, monks must keep three pots with them : one for excreta, one for urine and one for sputum.

२८४. वर्षावास में रहे हुए साधुओं और साध्वियों को मस्तक पर गाय के रोम जितने भी केश हों तो पर्युषण अर्थात् आषाढ़ी चौमासी से पचासवें दिन की रात्रि का उल्लंघन करना नहीं कल्पता।

284. If before *paryuṣana*, a monk (or a nun) has any hair on his head—even if it be as short as the hair on a cow's back—he should not let it grow after the night on which *paryuṣana* commences,
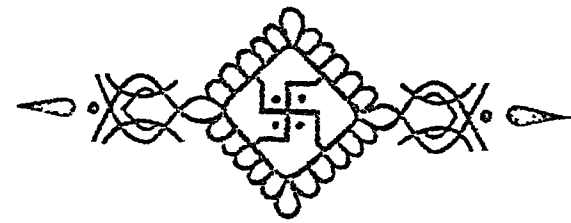
यणावित्तए। अज्जेणं खुरमुंडेण, वा लुक्कसिरएण वा होयव्वं सिया। पक्खिया आरोवणा, मासिए खुरमुंडए, अद्धमासिए कत्तरिमुंडे, छम्मासिए लोए, संवच्छरिए वा थेरकप्पे ॥२८४॥

वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वदित्तए, जो णं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयति, से णं 'अकप्पेणं अज्जो! वयसी' ति वत्तव्वे सिया। जो णं निग्गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ, से णं निज्जूहियव्वे सिया ॥२८५॥

वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा
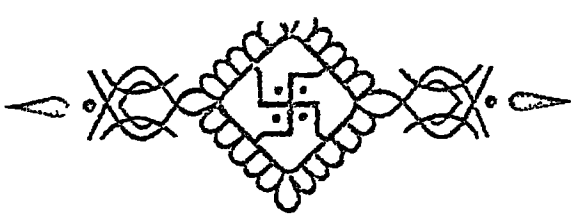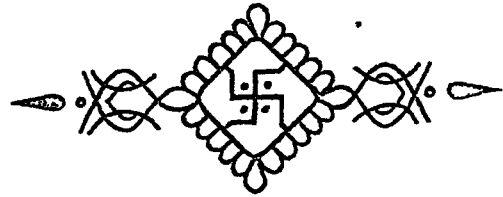
इससे पहले ही, आर्योंको उस्तरे से मुण्डन अथवा लुंचन करके केश-रहित हो जाना चाहिए। पक्ष-पक्ष (पन्द्रह-पन्द्रह दिन) में आरोपना (सफाई) करनी चाहिए। उस्तरे से मुण्डित होने वाले को मास-मास में मुण्डन कराना चाहिये। कैंची से मुण्डन कराने वाले को पन्द्रह-पन्द्रह दिन में मुण्डन करवाना चाहिए। लुंचन करने वाले को छह माह में लुंचन करना चाहिए और स्थविरों को सांवत्सरिक लोच करना चाहिए।

He should shave it with a razor or pluck it out before that date. Thereafter, he should clean it every fortnight. A monk who uses a razor should use it once a month. One who uses scissors should use it once in half-a-month. He who makes a habit of plucking out his hair, should do so once in six months. *Sthaviras* should pluck out their hair once a year.

२८५. वर्षावास में रहे हुए श्रमणों और श्रमणियों को पर्युषण के पश्चात्—अधिकरण-युक्त (कलह, विवाद-युक्त) वाणी बोलना नहीं कल्पता है। जो साधु या साध्वी पर्युषण के पश्चात् असंयमित वाणी बोलता है, उसे इस प्रकार सम्बोधन करना चाहिए—हे आर्य! इस प्रकार की वाणी बोलने का आचार नहीं है, आप जो बोल रहे हैं, वह उचित नहीं है, अकल्प्य है। जो साधु या साध्वी पर्युषण के पश्चात् दोषपूर्ण वाणी बोलता है, उसे अपने समूह में से निष्कासित कर देना चाहिए।

285. It is not proper for monks and nuns to use harsh words after the commencement of *paryuṣana*. He who does so should be thus cautioned : "Sir, the language you use, is improper". If he persists in using harsh words he should be asked to leave the group.

२८६. निश्चय ही यहां पर वर्षावास में रहे हुए निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थिनियों को

286. Anticipating bitterness, quarrels and dissentions between monks, let young monks ask the forgiveness of their elders and let elders ask the forgiveness of the young on the very day the *paryuṣana* commences.
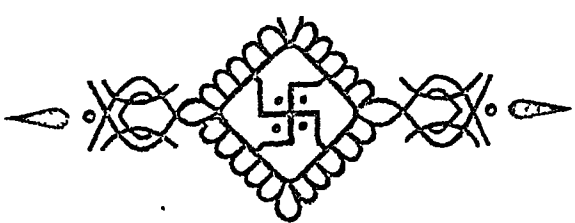
अज्जेव कक्खडे कडुए वुग्गहे समुप्पज्जिजज्जा, सेहे राइणिअं खामिज्जा, राइणिएवि सेहं खामिज्जा, (ग्रं. १२००) खमियव्वं खमावियव्वं, उवसमियव्वं उवसमावियव्वं, संमुइसंपुच्छणाबहुलेण होयव्वं। जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा, तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं, से किमाहु भंते !? उवसमसारं खु सामण्णं ॥२८६॥

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उवस्सया गिह्णित्तए, तं जहा—वेउव्विया पडिलेहा साइज्जिया पमज्जणा ॥२८७॥

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा
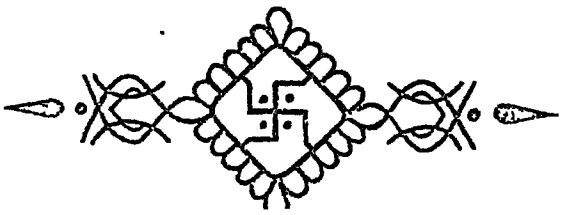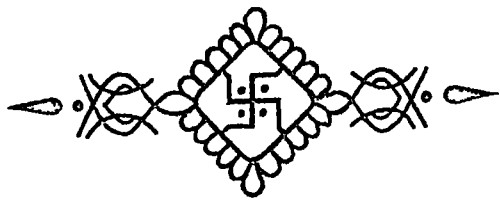
आज ही – पर्युषण (संवत्सरी) के दिन ही कर्कश और कटु-क्लेश उत्पन्न हो तो, शैक्ष अर्थात् लघु साधु, रात्निक अर्थात् पूज्य गुरुजनों से क्षमा याचना करले और गुरुजन भी छोटे श्रमणों से क्षमा याचना करलें। क्षमा याचना करना, क्षमा प्रदान करना, उपशम धारण करना, उपशम धारण करवाना, सन्मति रखकर समीचीन रीति से सूत्रार्थ सम्बन्धी परस्पर पृच्छा करने की विशेषता रखनी चाहिए। जो उपशम धारण करता है, उसकी आराधना होती है और जो उपशम धारण नहीं करता है, कषाय भावों का त्याग नहीं करता है, उसकी आराधना नहीं होती है। अतएव स्वयं को उपशम धारण करना चाहिए। प्रश्न – हे भगवन्! ऐसा क्यों कहा है? उत्तर – निश्चय से श्रमण-धर्म का सार उपशम—क्षमा ही है, इसलिए ऐसा कहा है।

One should be forgiving and seek forgiveness. One should be tranquil at heart and seek to appease. One should speak with others about the true import of the sacred lore. He who is tranquil will attain the goal. He who is restless cannot attain it. Therefore be tranquil. What for? *Because tranquility is the essence of asceticism.*

२८७. वर्षावास में रहे हुए श्रमणों और श्रमणियों को तीन उपाश्रय रखना कल्पता है। इनमें से दो उपाश्रयों की समय-समय पर प्रतिलेखना करनी चाहिए और तीसरा उपाश्रय जो उपयोग में आ रहा हो, उसका पुनः-पुनः प्रमार्जन करना चाहिए।

287. During *paryuṣaṇa*, monks should occupy three lodging-places. Proper attention must be paid to two of them, but the third which is being used should be more frequently cleansed.

२८८. वर्षावास में स्थित निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थिनियों को

अण्णयरिं दिसिं वा अणुदिसिं वा उवगिज्झिय भत्तपाणं गवेसित्तए । से किमाहु भंते ! ? ओसण्णं समणा भगवंतो वासासु तवसंपउत्ता भवंति, तवस्सी दुब्बले किलंते मुच्छिज्जा वा पडिज्जा वा तामेव दिसिं वा अणुदिसिं वा समणा भगवंतो पडिजागरंति ॥२८८॥

वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा जाव चत्तारि पंच जोयणाइं गंतुं पडिनियत्तए, अंतरा वि से कप्पइ वत्थए, नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥२८९॥

इच्चेइयं संवच्छरियं थेरकप्पं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहा-तच्चं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोभित्ता तीरित्ता किट्टित्ता
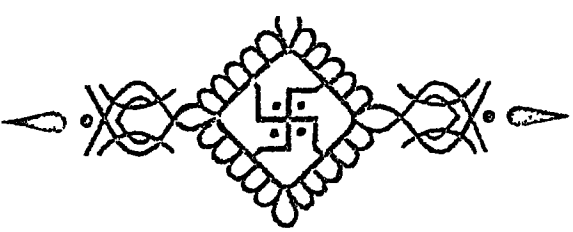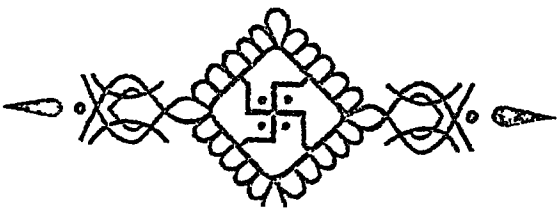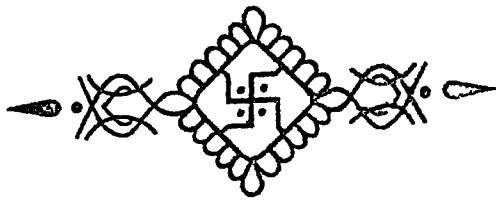
कोई एक दिशा या विदिशा को उद्दिष्ट कर भोजन-पानी की गवेषणा करने के लिये जाना कल्पता है।
प्रश्न—हे भगवन्! ऐसा किसलिये कहा है?
उत्तर—श्रमण भगवन्त वर्षावास में विशेष रूप से तपश्चर्या में संलग्न रहते हैं। तपस्वी शारीरिक दृष्टि से दुर्बल और श्रान्त होते हैं। कदाचित् वे मार्ग में चलते हुए मूर्च्छा को प्राप्त हो जाएँ या भूमि पर गिर जाएँ उस दशा में यदि वे उस निश्चित दिशा या विदिशा में गये हों तो श्रमण भगवन्त उनकी खोज कर सकते हैं।

२८९. वर्षावास में रहे हुए श्रमणों और श्रमणियों को ग्लान की वैयावृत्य सेवा के लिये यावत् चार अथवा पांच योजन (५२ किलोमीटर अथवा ६५ किलोमीटर) तक जाकर वापिस आना कल्पता है। अथवा इस मर्यादा के भीतर वहां रहना भी कल्पता है। किन्तु सेवादि कार्य पूर्ण होने पर, एक रात्रि भी वहां व्यतीत करना नहीं कल्पता है।

२९०. इस प्रकार इस साम्वत्सरिक स्थविरकल्प को सूत्रानुसार, कल्प अर्थात् आचारशास्त्र की मर्यादानुसार, धर्ममार्ग के अनुसार, यथोपदिष्ट को भलीभांति मन, वचन, काया द्वारा आचरण कर, पालन कर, शुद्ध कर अथवा शोभन रीति से दीपित कर,

288. During *paryuṣaṇa*, monks should chose aforehand a single specific direction in which they would set out for seeking alms. And why so? Because, during *paryuṣaṇa*, monks undertake vigorous penances and become weak and frail of body. A monk may, perhaps, on his round fall down in a swoon. A search can then be readily made for him by other revered monks in the direction which he had predetermined for his round.

289. In case of urgent need, monks and nuns are permitted to travel upto a distance of four or five *yojanas* (approximately 52 to 65 kilometers) and then return. They may spend as much time as is necessary for the purpose of the journey but they should return the day their work is over and not spend another night.

290. Monks who follow these rules of conduct in conformity with canons, precepts, and pronouncements,
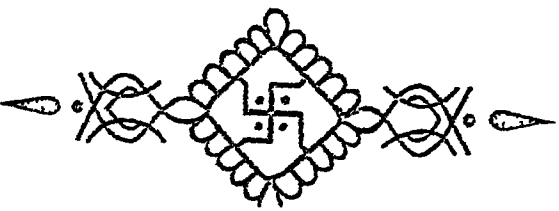
आराहित्ता आणाए अणु-
पालित्ता अत्थेगईया समणा
निग्गंथा तेणेव भवग्गहणेणं
सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति
परिनिव्वायंति सव्वदुक्खा-
णमंतं करेंति, अत्थेगइया
दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति
जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति,
अत्थेगइया तच्चेणं भवग्गहणेणं
जाव अंतं करेंति, सत्तट्ठभव-
ग्गहणाइं नाइक्कमंति ।२९०।
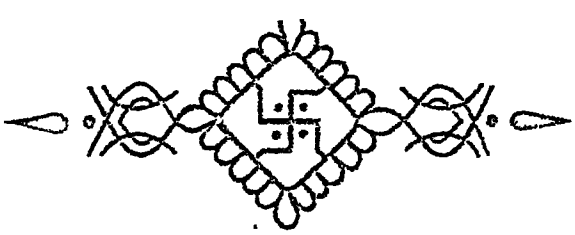
जीवन पर्यन्त पालन कर, दूसरों के सन्मुख प्रतिपादित कर, सम्यक् प्रकार से आराधन कर, भगवान् की आज्ञानुसार अनुपालन कर — कितने ही श्रमण निर्ग्रन्थ उसी भव में सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं और समस्त प्रकार के दुःखों का अन्त करते हैं। कितने ही दूसरे भव में सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। कितने ही तीसरे भव में सिद्ध होते हैं, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं। कितने ही सात-आठ भवों से अधिक संसार में परिभ्रमण नहीं करते हैं अर्थात् सात-आठ भवों के भीतर ही सिद्ध होते हैं।

doing so in the right manner with their mind, speech and body rightly intent, may attain perfection in this very life and become enlightened and free after having observed these rules with virtue and purity till the end of their lives and having taught them to others. They may thus attain *parinirvāṇa* and reach a state beyond pain. Other such monks may attain this state in their next life while some may reach it in their third life. Still others will not have to wander in this *saṁsāra* for more than seven or eight lives : they will attain perfection within this period.
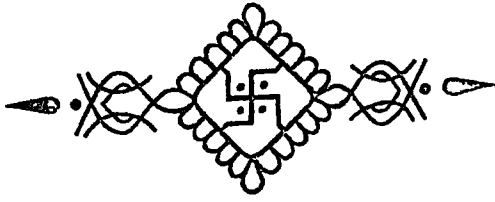
तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं बहूणं देवाणं बहूणं देवीणं मज्झगए चेव एवमाइक्खइ, एवं भासेइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ पज्जोसवणाकप्पो नाम अज्झयणं सअट्ठं सहेउयं सकारणं
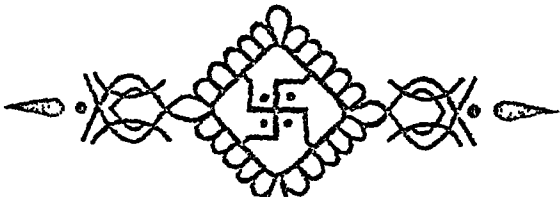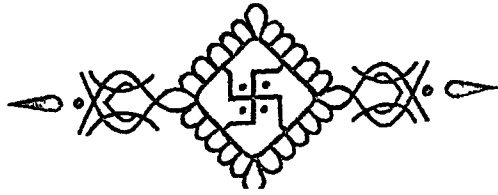
२९१. उस काल उस समय राजगृह नामक नगर में, गुणशिलक नामक चैत्य में, बहुत श्रमणों, बहुत श्रमणियों, बहुत श्रावकों, बहुत श्राविकाओं, बहुत देवों, बहुत देवियों के मध्य में बैठे हुए श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार कथन करते हैं, इस प्रकार बोलते हैं, इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं, इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं और 'पज्जोसवणाकल्प' पर्युपशमन अर्थात् क्षमाप्रधान कल्प—आचार नामक अध्ययन को अर्थ सहित, हेतु सहित, कारण सहित,

291. In those days, at that time, *Śramaṇa* Bhagavān Mahāvīra sat surrounded by myriads of *śramaṇas*, *śramaṇīs*, lay-men, lay-women, gods and goddesses in the *Caitya* called Guṇaśilaka in the town of Rājagṛha. He spoke thus and uttered these words. He repeatedly proclaimed the *Paryūṣaṇakalpa*, with
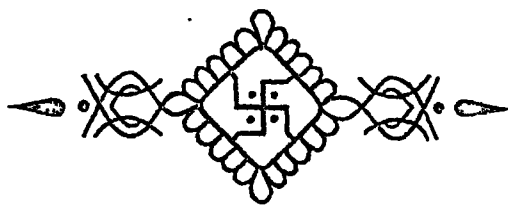
ससुत्तं सअत्थं सउभयं सवागरणं भुज्जो भुज्जो उवदंसेइ त्ति बेमि ॥२९१॥

पज्जोसवणाकप्पो सम्मत्तो ।
दसासुयक्खंधस्स अट्ठमज्झयणं सम्मत्तं ॥

(ग्रं. १२१६)
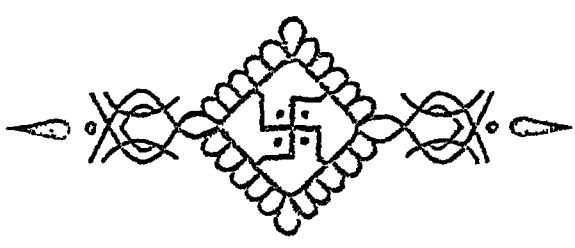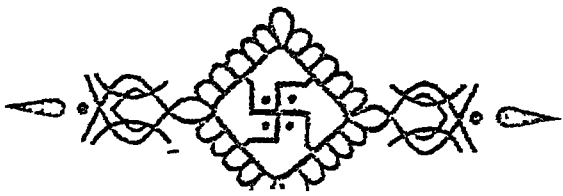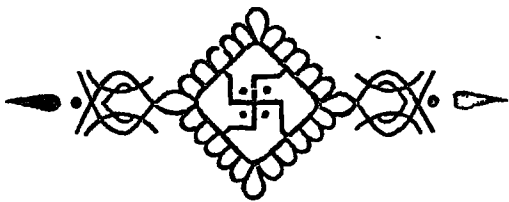
सूत्र सहित, अर्थ सहित, उभय सहित अर्थात् सूत्रार्थ सहित और विवेचनपूर्वक वारम्वार वर्णन करते हैं, ऐसा मैं कहता हूं।

its import, its mode of observation, its proper rationale, its causes, its text and meaning along with explanations.

पर्युषणाकल्प समाप्त हुआ।

Thus ends the Paryusaṇākalpa.

दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र का आठवां अध्ययन समाप्त हुआ।

The Eighth Chapter of *Daśāśrutaskandha.*

ग्रन्थाग्रमान–अनुष्टुप् श्लोक परिमाण से बारह सौ सोलह श्लोक पूर्ण हुए।

卐

卐

कप्पसुत्तं सम्मत्तं

卐
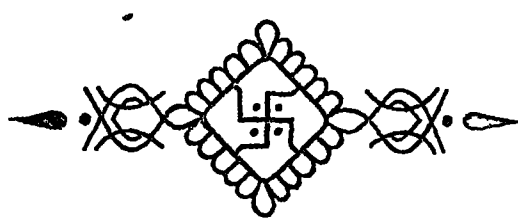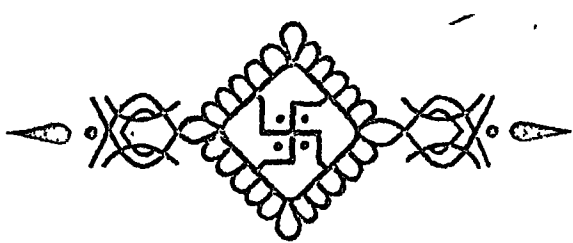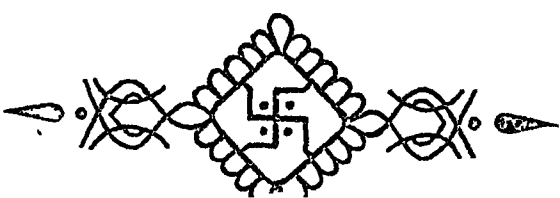
चित्र-परिचय

शास्त्रदान :

पुण्यार्जन के लिए धार्मिक पुस्तकों का दान, जैन समाज में सदैव सद्कार्य माना जाता रहा है। ऐसे दान को बहुत आदर प्राप्त है और शिक्षा के महत्व का ही रूप "ज्ञान पूजा" है, जो कार्तिक शुक्ल पंचमी को सम्पन्न होती है। असंख्य चित्रित एवं अचित्रित हस्तलिखित पोथियों से भरे जैन ग्रन्थ भण्डारों के पीछे भी ज्ञान के प्रति यही आदर भावना काम कर रही थी। इस क्षेत्र में श्रमण-श्रमणियों एवं श्रावक-श्राविकाओं, सब का ही योगदान रहा। श्रमणों ने अपने प्रभाव से और श्रावकों ने आर्थिक साधनों द्वारा सहयोग दिया। श्रमणों के योगदान की चर्चा करते हुए डा० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल कहते हैं कि आचार्य भद्रबाहु से लेकर १६वीं शताब्दी तक उनमें बड़े प्रभावशाली व्यक्ति हुए, जिनका जनता के ऊपर बड़ा प्रभाव था। वे समग्र देश की पैदल यात्रा करते और जैन बौद्धिक वर्ग में धार्मिक पुस्तकों का महत्व बताते, आचार्य कुंदकुंद, उमास्वामी, सिद्धसेन, देवनन्दी, देवर्धिगणि, अकलंक, हरिभद्र सूरि, जिनसेन, गुणभद्र एवं हेमचन्द्र आदि विद्वान श्रमणश्रेष्ठों ने न केवल अपनी कृतियों से शास्त्र भण्डारों की वृद्धि की वरन् जनता में पोथियों के लिखने के महत्व पर उपदेश भी दिये। इन श्रमणों ने भावी पीढ़ी के हितार्थ, अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग इन ज्ञान भण्डारों की स्थापना में लगाया।[1]

---

[1] डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, *जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान*, जयपुर १९६७, पृष्ठ ४
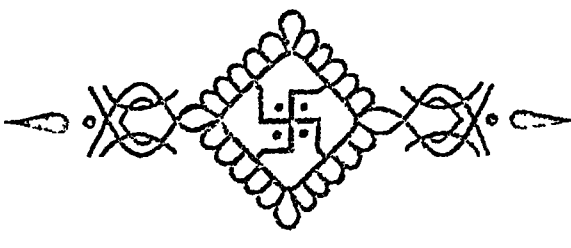
कहना कठिन है कि शास्त्रदान की इस परम्परा का आरम्भ कब से हुआ, किन्तु निश्चय ही उसकी शुरुआत पाटलिपुत्र अधिवेशन के बाद हुई। इस सभा में जैनमत की मौखिक श्रुत परम्परा को लिखित रूप देने का निर्णय किया गया और इसी का अगला कदम था—ग्रन्थ भण्डारों की स्थापना। शास्त्रदान के लिये किसी पुस्तक विशेष का विधान नहीं था, किन्तु महावीर तथा अन्य तीर्थकरों के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण इस कार्य के लिये कल्पसूत्र विशेष लोकप्रिय रहा। उपदेश तरंगिणी में कहा गया है कि गुजरात के राजा कुमारपाल (११४३-७४) ने इक्कीस शास्त्र भण्डारों की स्थापना की और प्रत्येक को कल्पसूत्र की एक-एक स्वर्णाक्षरी प्रति भेंट की।

चित्रण माध्यम के आधार पर कल्पसूत्र के चित्रों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – तालपत्र अथवा भोजपत्र पर बने चित्र एवं कागज पर। कागज के आने से पहले भारत में धार्मिक ग्रन्थों के चित्रण के लिये तालपत्र ही लोकप्रिय था। गिलगित (काश्मीर) से प्राप्त बौद्ध हस्तलिखित पोथियों में कुछ तालपत्र पर हैं पर अन्य भोजपत्र पर, इन पोथियों की पटलियों पर चित्र बने हैं। इसी प्रकार मध्यकालीन पूर्वी भारत, बंगाल, बिहार एवं नेपाल में बौद्ध ग्रन्थों का अंकन तालपत्रों पर हुआ। ये पोथियां उस क्षेत्र की कलात्मक गतिविधियों से हमें अवगत कराती हैं।

तालपत्र :

सचित्र कल्पसूत्र तथा कालक-कथा की प्राचीनतम ज्ञात प्रति संघवी ना पाडा ना भण्डार, पाटन में है, जिसकी तिथि १२७८ ई० है। इसमें कुल दो चित्र हैं – एक में दो जैन साध्वियां और दूसरे में दो श्राविकाएं बनी हैं। इसी संग्रह में कल्पसूत्र एवं कालक-कथा की दूसरी प्रति भी है, जिसकी तिथि १२७९ ई० है। ये दोनों ही तालपत्र पर हैं। इस पोथी के पांचों चित्र जैन देवी-देवताओं के यथा ब्रह्मशान्ति यक्ष एवं लक्ष्मी देवी के अंकनमात्र हैं। कालक्रमानुसार इसके बाद उज्झमफोई धर्मशाला, अहमदाबाद में संग्रहित कल्पसूत्र एवं कालकाचार्य-कथा आती है, जिसमें तालपत्र पर छः चित्र बने हैं। संकरे पत्रों पर चार पंक्तियां लिखी गई हैं, जो दो खण्डों में विभाजित हैं, उनमें से दूसरा हिस्सा एक चौकोर खाने से पुनः दो हिस्सों में बंट जाता है और इसी चौकोरखाने में महावीर के
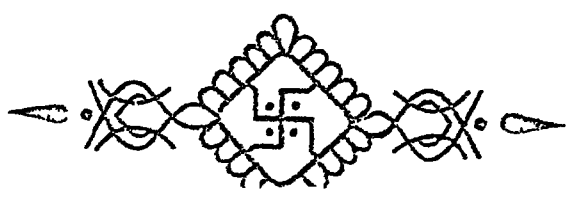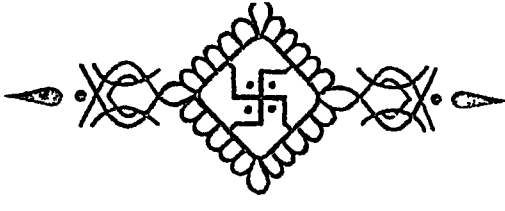
जीवन से सम्बद्ध चित्र बने हैं। इन चित्रों का अंकन पारम्परिक पद्धति में हुआ है और ये अलंकरण-प्रधान हैं। इसी युग एवं शैली की दूसरी प्रति सेठ आनन्दजी मंगलजीनी पेढी, ईडर में है, जिसमें महावीर के जीवन से सम्बद्ध चौंतीस चित्र हैं। इन चित्रों के अध्ययन से स्पष्ट है कि जैन देवी-देवताओं के परम्परागत अंकन होते हुए भी ये कलात्मक हैं। पृष्ठभूमि सादी, आकृतियां नुकीली एवं परली आंख युक्त हैं। रेखांकन सरल किन्तु निश्चित है। इनमें सीमित रंगों का प्रयोग हुआ है। पृष्ठिका में लाल और चित्रण के लिये हरे, पीले एवं काले रंगों का प्रयोग हुआ है। यही नहीं इन चित्रों में शैली का विकास भी दिखाई देता है, उदाहरणार्थ उझमफोई-संग्रह-कल्पसूत्र के महावीर-जन्म वाले दृश्य में परदे का थोड़ा सा अंश दिखाया गया है किन्तु ईडर वाले चित्रों में इसी का बड़ा विस्तृत अंकन हुआ है। इडर ईडर के चित्रों में सोने का प्रयोग भी मिलता है, जिसे डा० मोतीचन्द्र फारस से लिया मानते हैं।[1]

कागज :

जिनचन्द्र सूरि (११५६–११६६) के लिये लिखित ध्वन्यालोक की प्रति से इस बात का संकेत मिलता है कि लेखन कार्य के किये कागज का उपयोग १२वीं शती के मध्य से होने लगा था, किन्तु चित्रण के लिये संभवतः इसका प्रयोग १४वीं शती के मध्य से पहले नहीं हुआ। क्योंकि इसके पहले की कागज पर चित्रित कोई प्रति नहीं मिलती। मुनि जिनविजयजी के संग्रह में सुरक्षित वि० सं० १४२४ (१३६७ ई०) का कल्पसूत्र ही अब तक प्राप्त, कागज पर बनी प्राचीनतम प्रति है। राष्ट्रीय संग्रहालय में १३८१ ई० की बनी कल्पसूत्र एवं कालक-कथा की एक प्रति है।

विभिन्न संग्रहों में कल्पसूत्र की पचासों से अधिक सचित्र प्रतियाँ सुरक्षित हैं और स्थानाभाव के कारण प्रत्येक के विषय में चर्चा करना यहां संभव न होगा, अतएव शैली के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतियों पर ही

[1] डा० मोतीचन्द्र, *जैन मिनिएचर पेंटिंग फाम वेस्टर्न इण्डिया*, अहमदाबाद १९४९, पृष्ठ ३४
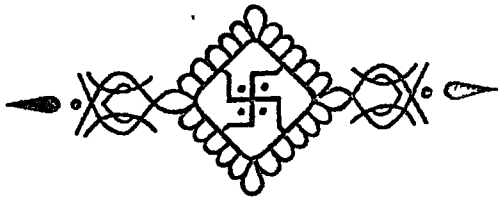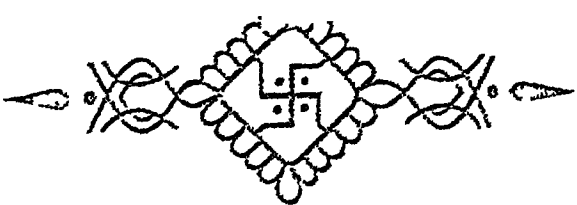
विचार किया जायेगा। मुनि जिनविजयजी संग्रह की प्रति के अतिरिक्त प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई की प्रति भी १४वीं शती की हो सकती है।

एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई के संग्रह में कल्पसूत्र की एक चित्रित प्रति है, जिसकी तिथि वि० सं० १४७२ (१४१५ ई०) है। मुनि जिनविजयजी वाली प्रति की तरह इसकी भी पृष्ठिका लाल है और सोने का यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। १४१५ ई० की दूसरी प्रति सेठ आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ीना ज्ञान भण्डार, लिंबडी में है।

शैली की दृष्टि से १४२७ ई० की 'इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लंदन' वाली प्रति उल्लेखनीय है। इस में लाल एवं काली जमीन पर रौप्याक्षरों में कल्पसूत्र का पाठ लिखा हुआ है। तीर्थंकरों के जीवन के दृश्य बड़े विस्तार से चित्रित किये गये हैं। मुख्य चित्र के हाशिये बड़े अलंकरण युक्त हैं। इस परम्परा का आरम्भ इस प्रति से होता है, जिसका पूर्ण विकसित रूप 'देवशानो पाड़ो भण्डार' वाली प्रति में देखने को मिलता है।

हेमचन्द्राचार्य ज्ञान मन्दिर, पाटन, में कल्पसूत्र के कुछ पन्ने हैं जो कलात्मक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं। आचार्य जय सूरीश्वरजी के संग्रह की १४३२ ई० वाली प्रति में तीर्थंकरों के जीवन से सम्बद्ध इक्कीस चित्र हैं।

१५वीं शती का उत्तरार्द्ध कल्पसूत्र चित्रण का स्वर्णयुग था और इस काल की कुछ कृतियां अलंकरण की दृष्टि से अत्युत्तम एवं अंकन में अद्वितीय हैं। १४३९ ई० के मांडू कल्पसूत्र (राष्ट्रीय संग्रहालय) से ही इसकी झलक मिलने लगती है। इस स्वर्णाक्षरी प्रति की विषयवस्तु परम्परागत होते हुए भी वातावरण, दृश्य संयोजन एवं रंग-योजना में कलाकार ने अपनी कल्पना एवं कुशलता का परिचय दिया है। इस प्रति से यह भी ज्ञात होता है कि पश्चिमी भारतीय शैली की मुख्य धारा का प्रसार अब मालवा आदि अन्य क्षेत्रों में होने लगा था। इसी प्रकार की एक प्रति १४६५ ई० में जौनपुर (उ० प्र०) में हुसेन शाह शर्की के राज्य में बनी, जिसे हर्षिनी श्राविका ने बनवाया था। पश्चिमी भारतीय शैली में बनी इस प्रति में आकृतियां नुकीली हैं और परली आंख भी विद्यमान है। पाठ स्वर्णाक्षरों में लाल जमीन पर लिखा है। हाशियों में फूल पत्तियों के संयोजन से बने अलं-

करण हैं, जो १५वीं शती के वास्तु में प्रयुक्त टाइलों के अलंकरणों से मिलते हैं। इस चित्रावली में रंग-योजना तथा कारीगरी के विकसित तकनीक के दर्शन होते हैं।
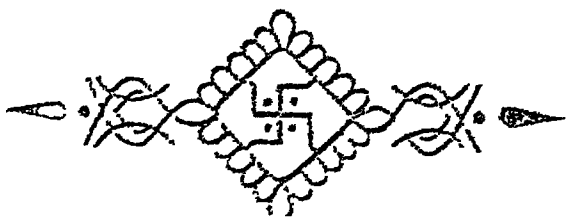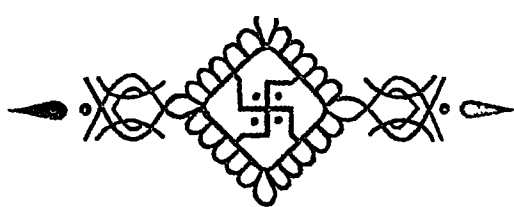
संभवत: सर्वाधिक सुन्दर एवं विपुल चित्रित कल्पसूत्र की प्रति देवशा नो पाड़ो भण्डार, अहमदाबाद की प्रति है। यद्यपि इस पर कोई तिथि नहीं दी गई है किन्तु शैली की दृष्टि से इसे प्राय: १४७५ ई० में रखा जा सकता है। परम्परागत विषय तथा संयोजन निश्चित होने से कलाकार को मुख्य दृश्य में तो अपनी प्रतिभा दिखाने का विशेष अवसर न मिला पर हाशियों में तो विविधता बिखरी पड़ी है। घने वृक्षादि तथा फूलों वाले पौधे, रंगीन चिड़िया, जीवन्त पशु, झरनों एवं तालावों में स्नान करते पारसी लोग और विविध रंगों के वस्त्र पहने विभिन्न मुद्राओं में अंकित कन्याएं इस चित्रावली की विशेषताएं हैं। इस पोथी का प्रमुख आकर्षण भरत के नाट्यशास्त्र पर आधारित विभिन्न नृत्य एवं संगीत की मुद्राएं हैं। ये ही आकृतियां परवर्त्ती रागमाला चित्रों का पूर्वरूप हैं। कल्पसूत्र चित्रण के क्षेत्र में पश्चिमी भारतीय शैली की संभवत: यही सबसे बड़ी उपलब्धि थी। इसके बाद भी यद्यपि काम तो होता रहा, किन्तु इसके जैसी कृति नहीं बनी। १५वीं शती ई० के अन्तिम चरण में कल्पसूत्र की कई प्रतियां बनीं, जो शैली की दृष्टि से अच्छी हैं। १६वीं शती में भी श्रावकगण सचित्र कल्पसूत्र बनवाते थे और अपने गुरुओं को भेंट करते थे।

प्रस्तुत प्रति, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रह में है (ग्र० सं० ५३५४)। इसका चित्रण वि०सं० १५६३ (ई० सन् १५०६) में राजस्थान के भीनमाल नगर में हुआ था जो प्राचीन काल में सांस्कृतिक एवं धार्मिक केन्द्र था। भानुमेरु के उपदेशों से प्रेरित हो लोला श्रावक एवं उसके परिवार के सदस्यों ने वाचक विवेकशेखर के लिये यह प्रति तैयार करवाई। इसमें १३६ पत्र हैं, जिनमें ३६ चित्र बने हैं। इस प्रति का विस्तृत परिचय प्रस्तावना में दिया जा चुका है अतएव यहां उसकी विशेष चर्चा न कर चित्रों की शैली और उनसे सम्बद्ध विवरण दिये जायेंगे। कागज के लम्बे पत्रों पर प्रत्येक में सात पंक्तियां लिखी हैं और इन्हीं पर लम्बोतरे खानों में
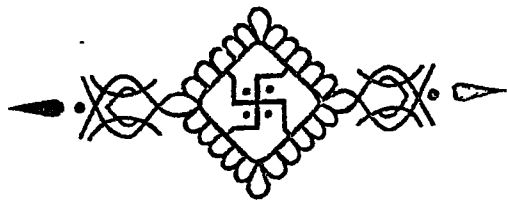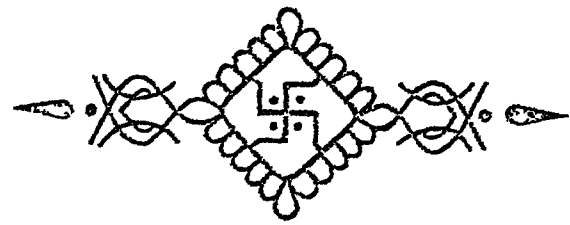
३६ चित्र बने हैं जो तीर्थंकरों के जीवन से सम्बद्ध हैं। कल्पसूत्र में केवल चार तीर्थंकरों के जीवन से सम्बद्ध घटनाएं वर्णित हैं, इस कारण शेष बीस तीर्थंकरों को दो चित्रों (सं० २७ एवं २८): प्रत्येक में बैठे हुए दस-दस तीर्थंकर बताये हैं। सोना, लाल एवं नीले रंगों की प्रमुखता है, कहीं-कहीं काले का प्रयोग चित्र को अधिक प्रभावशाली बना देता है। १५वीं शती उत्तरार्द्ध के कल्पसूत्र-चित्रों में सोने का प्रयोग खूब हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि समृद्ध जैन समाज अपने धन का उपयोग चित्रकला के लिये उदारता से कर रहा था। प्रस्तुत पोथी में सिद्धार्थ, त्रिशला तथा अन्य राजकीय व्यक्तियों के प्रासादों में कई प्रकार के अलंकरण दिखाई देते हैं। वस्त्रों में भी मध्यकालीन की तरह यथा हंस, फुल्ले आदि बने हुए हैं, जो तत्कालीन गुजरात में छपे वस्त्रों में मिलते हैं।

इस पुस्तक के चित्र पश्चिमी भारतीय शैली में बने हैं, जिसकी विशेषताएं, आकृति तथा चेहरे में नुकीलापन और परली आँख है। यहां इस शैली के सम्बन्ध में दो शब्द कहना अनुपयुक्त न होगा। एलोरा, मदनपुर एवं कैलाशनाथ (कांचीपुरम्) के भित्ति चित्रों में अजन्ता शैली का अपभ्रंश स्वरूप दिखाई पड़ता है, जिसमें परली आंख और नुकीलापन है। यद्यपि उपर्युक्त सभी मन्दिर जैन नहीं हैं, यथा एलोरा का कैलाश मन्दिर शिवालय है किन्तु २०वीं शती के आरम्भ में आनन्द कुमारस्वामी ने जब बॉस्टन संग्रह का सूची-पत्र लिखा तो उसमें इसे 'जैन' शैली का नाम दिया। बाद में कुमारस्वामी ही अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट' में इसे 'गुजराती' कहते हैं। डब्ल्यू० नार्मन ब्राउन ने इसे 'श्वेताम्बर जैन' तथा 'पश्चिमी भारतीय' दोनों ही नाम दिये। वैष्णव विषय वाले चित्रों के प्रकाश में आने पर शीघ्र ही ये नाम अनुपयुक्त लगने लगे। राय कृष्णदास ने 'पश्चिमी भारतीय शैली' को पसन्द नहीं किया, क्योंकि १४६५ ई० का कल्पसूत्र पूर्वी भारत जौनपुर में बना था। अपनी पुस्तक 'भारत की चित्रकला' (प्रकाशित १९३९) में वह इसे 'अपभ्रंश' कहते हैं। उनके अनुसार यह अजंता शैली का तद्भव रूप है और तत्कालीन भाषा भी इसी नाम से जानी जाती है, अतएव अपभ्रंश नाम ही उचित है। बेसिल ग्रे के अनुसार भौगोलिक आधार पर दिया गया नाम अर्थात् पश्चिमी भारतीय शैली ही सर्वाधिक सुविधाजनक है।
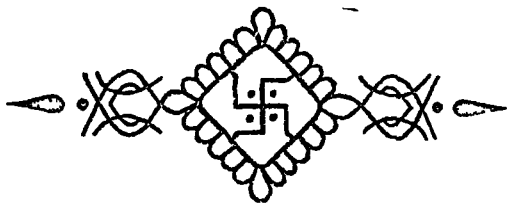
इसका नाम चाहे जो भी हो, इतना निश्चित है कि यह मध्यकालीन भारत की अत्यन्त महत्वपूर्ण शैली है, जिससे बाद में राजस्थानी शैलियां निकलीं और इसने मुगल शैली के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योग दिया (जैसा कि मुगल चित्रकारों के नाम सूरजी गुजराती, भीमजी गुजराती से स्पष्ट है निश्चय ही इन्होंने पहले पश्चिमी भारतीय शैली की शिक्षा ली होगी)।

चित्र-विवरण

१. सिंह एवं हाथियों वाले आसन पर बैठे महावीर। वह मुकुट एवं आभूषण धारण किये हुए हैं और उनके दोनों ओर एक-एक संगीतज्ञ, चामरधारी एवं सेवक खड़े हैं। (पृ० ४)

२. सिंहासन पर विराजमान महावीर के प्रथम शिष्य पट्टधर गौतम स्वामी और उनके दोनों ओर सेवक खड़े हैं। हाथ में माला है और उन्होंने साधु वेश धारण कर रखा है, जिसे चित्र में सुनहली जमीन पर बुंदकियों द्वारा दिखाया गया है। (पृ० ६)

३. देवानन्दा के चौदह स्वप्न, श्रीदेवी के चारों ओर बने हाथी, वृषभ, सिंह, सूर्य, चन्द्र, माला-युगल, ध्वजा, कलश, सरोवर, रत्नराशि, प्रासाद, क्षीर-समुद्र एवं अग्निशिखा। (पृ० १४)

४. इन्द्र – सिंहासन पर बैठे चतुर्भुज इन्द्र, नृत्य देख रहे हैं, साथ में सेवक। (पृ० २२)

५. इन्द्र-स्तव—छत्रयुक्त सुसज्जित सिंहासन पर बैठे इन्द्र महावीर की वन्दना कर रहे हैं, इन्द्र के दोनों ओर एक-एक चामरधारी। (पृ० ३०)

६. ऊपरी हिस्से में हरिनैगमेषी द्वारा देवानन्दा के गर्भ का सुषुप्तावस्था में गर्भहरण और निचले भाग में त्रिशला की कुक्षि में गर्भ-स्थापन। (पृ० ५०)

७. प्रासाद में सोती त्रिशला एवं पीछी लिये खड़ी सेविका। (पृ० ६०)
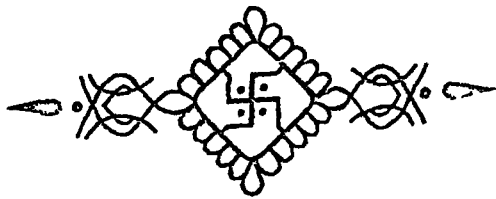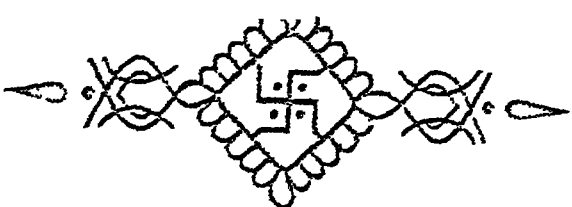
८. त्रिशला के चौदह स्वप्न। (पृ० ६२)

९. चित्र दो भागों में विभक्त है, ऊपरी भाग में दो व्यक्तियों के साथ मल्लयुद्ध करते हुए सिद्धार्थ और नीचे चौकी पर बैठे सिद्धार्थ दो व्यक्तियों से तेल मालिश करवा रहे हैं। (पृ० १०२)

१०. त्रिशला द्वारा सिद्धार्थ को स्वप्न-ज्ञापन : राजकीय छत्रयुक्त सिंहासन पर बैठे सिद्धार्थ और उनके समक्ष आसन पर बैठी त्रिशला। (पृ० ११६)

११. स्वप्न विचार — त्रिशला द्वारा देखे गये स्वप्नों पर विचार करते चार पंडित। (पृ० ११८)

१२. ऊपरी भाग में अपनी सेविकाओं से स्थिर-गर्भ के विषय में बात करती हुई शोक-संतप्ता त्रिशला और नीचे गर्भ में गति अनुभव होने के बाद प्रसन्न वदना त्रिशला। (पृ० १३४)

१३. महावीर जन्म : महान् धर्म-प्रवर्त्तक महावीर अपनी मां की गोद में : लेटी हुई त्रिशला और पास में खड़ी हुई दासी। (पृ० १४०)

१४. महावीर का जन्माभिषेक : ऊपरी हिस्से में महावीर को गोद में लिये मेरु पर्वत पर बैठे इन्द्र, जिनके दोनों ओर दो इन्द्र हैं। ऊपरी भाग में इन्द्र का सुसज्जित छत्र एवं उसके दोनों ओर मेघ का प्रतिनिधित्व करते हुए दो वृषभ बने हैं। (पृ० १४४)

१५. दीक्षा-महोत्सव के समय शिविकारूढ़ महावीर : इस शिबिका का निर्माण शक्र ने किया था। महावीर राजकीय वस्त्राभूषण धारण किए हुये हैं और उनके दोनों ओर नर्तकियां एवं शंखवादक हैं। (पृ० १६६)

१६. दीक्षा ग्रहण के समय पंचमुष्टि लोच करते हुए महावीर : अपने मूल्यवान् वस्त्राभूषणों को त्यागने के पश्चात् महान् उपदेशक, अपने बालों का लुंचन कर शक्र को दे रहे हैं। (पृ० १७२)
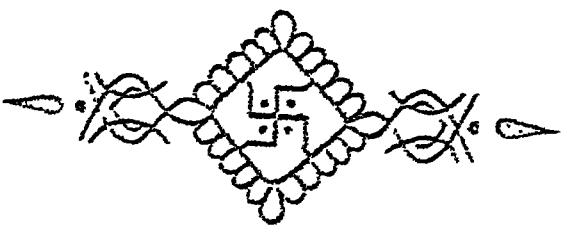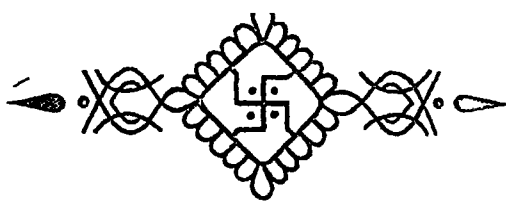
१७. महावीर तपस्या : वन में कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े महावीर। चित्र में दो वृक्षों द्वारा वन का अंकन किया गया है। महावीर के एक ओर वैद्य और दूसरी ओर चरवाहा है। तपस्यारत महावीर स्वामी पर आक्रमण करते सर्प एवं बाघ। (पृ० १७४)

१८. समवसरण में महावीर : चार दरवाजों एवं तिहरे दीवारों वाले घेरे में विराजमान महावीर। चारों कोनों में सर्प, हाथी, सिंह एवं अन्य जानवर बने हैं। चित्र में निचले भाग में हंस-पंक्ति। (पृ० १८४)

१९. सिद्ध स्वरूप महावीर — ईषत्-प्राग्भार में सिद्ध-शिला पर आसीन महावीर। उनके सिंहासन के ऊपर प्रतीकात्मक छत्र बना है। सिद्ध-शिला के नीचे पर्वत और स्वामी के दोनों ओर दो वृक्ष। (पृ० १९०)

२०. गौतम गणधर : श्रमण-वेष (सुनहली जमीन पर सफेद बुंदकियां) में छत्रयुक्त सिंहासन पर आसीन महावीर स्वामी के पट्ट शिष्य गौतम गणधर। (पृ० १९४)

२१. पार्श्वनाथ : सिंहासन पर विराजमान तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ, उनके मस्तक पर सात फनों का सर्प है। तीर्थंकर के दोनों ओर एक-एक बांसुरी-वादक एवं सेवक हैं। (पृ० २०८)

२२. चित्र दो भागों में विभक्त है — ऊपर : कमठ की पंचाग्नि तपस्या, नीचे : अपने सेवक से सर्प निकलवाते पार्श्वनाथ (हाथी पर विराजमान पार्श्व की आज्ञा से उनके सेवक का लकड़ी काटना और उसमें से सर्प का प्राकट्य)। (पृ० २१२)

२३. पार्श्व-तपस्या : कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े पार्श्व, मेघमाली देव का आक्रमण और नागराज धरणेन्द्र द्वारा उनकी सेवा। (पृ० २१६)

२४. ऊपर : कृष्ण की आयुधशाला में नेमिकुमार द्वारा शंखवादन, नीचे : कृष्ण का नेमिकुमार के साथ बल-परीक्षण। (पृ० २२६)

२५. कृष्ण एवं उनकी पत्नियों का नेमिकुमार से विवाह के लिए आग्रह। (पृ० २२८)
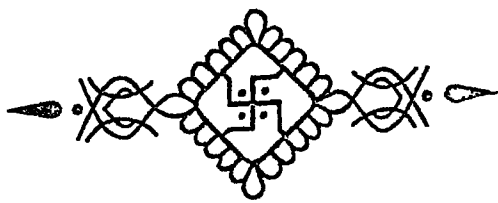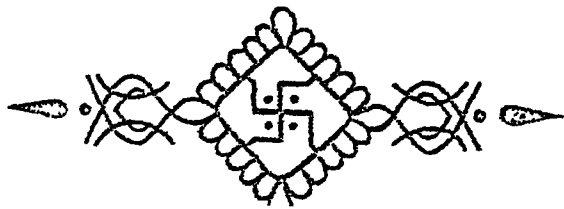
२६. नेमिकुमार की बारात। चित्र के ऊपरी हिस्से में वधू राजीमती एवं अश्वारूढ़ वर नेमिकुमार। नीचे : विवाह भोज में काम लाये जाने वाले जानवर। (पृ० २३०)

२७. मन्दिर में विराजमान दश तीर्थंकर। (पृ० २४२)

२८. मन्दिर में विराजमान दश तीर्थंकर। (पृ० २४८)

२९. प्रथम जैन तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभदेव) प्रथम राजा एवं समस्त-कलाओं, हस्त कौशलों तथा विज्ञान के गुरु। (पृ० २५४)

३०. हस्तकौशलों के गुरु रूप में ऋषभदेव द्वारा कुम्भकार-कर्म। (पृ० २५८)

३१. ऋषभदेव का राज्याभिषेक : सिंहासनारूढ़ आदिनाथ, उनके तिलक करता हुआ इन्द्र तथा दोनों ओर संगीतज्ञ। (पृ० २६०)

३२. महावीर के ग्यारह गणधर। (पृ० २७६)

३३. कोशा के सम्मुख सारथि द्वारा धनुर्विद्या का प्रदर्शन एवं शिरोभाग पर सुई युक्त सरसों के ढेर पर नृत्यरत कोशा। (पृ० २८२)

३४. ऊपर : सिंह के रूप में स्थूलिभद्र, नीचे : अपनी बहिनों के सम्मुख मूलरूप में स्थूलिभद्र। (पृ० २८८)

३५. उपदेश देते हुए आचार्य। (पृ० ३६८)

३६. आचार्य का उपदेश सुनता हुआ श्री संघ। (पृ० ३७०)

डॉ० चन्द्रमणि सिंह
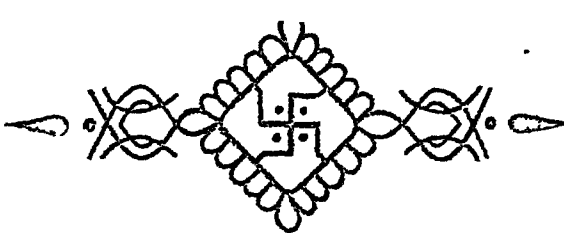
PAINTINGS OF KALPASŪTRA

ŚĀSTRADĀNA—the gift of religious books to secure merit has always been considered a virtuous act among the Jains. They have great reverence for such gifts and perform a special *Jñāna pūjā* (or wisdom worship) on the fifth day of the bright half of the month of *Kārtik* (September-October). This idea of reverence for learning acted as the main inspiration in the creation of Jain *Śāstra* (or *Grantha*) *bhaṇḍāras* filled as they are with illustrated (and unillustrated) manuscripts. Both monks and *śrāvakas* contributed in this field equally—monks by their influence on the society and *śrāvakas* through their financial resources. Illustrating the monk's contribution Kastoor Chand Kasliwal observed, "Since Ācārya Bhadrabāhu upto 16th C. A. D. there were powerful personalities among them and their influence on the public was tremendous. They used to travel throughout the country on foot and explain to the Jain intelligentsia the importance of the sacred texts. Acārya Kunda Kunda, Umāswāmi, Sidhasena, Devanandi, Devardhigaṇi, Akalank, Haribhadra Suri, Jinasena, Gunabhadra and Hemchandra etc. not only filled the shāṣtra bhandārs with their own works but preached the importance of writing down the manuscripts to the masses. They took initiative in the foundation of these bhandārs. They spent the best part of their life in establishing these store-houses of knowledge for the posterity".

It is difficult to say when did this tradition of *Śāstradāna* start but it must have been after the assembly of Pāṭaliputra in which it was decided to record the oral traditions of Jain faith; a further stage was to establish *Granth bhaṇḍārs*. There was no specific rule for *Śāstradāna*—means there were no

1. Dr. Kastoor Chand Kasliwal, *Jaina Grantha Bhandars in Rajasthan*, Jaipur 1967, p. 4

prescribed religious texts for giving in gift, but *Kalpasūtra* being the life of Mahāvīra and of the other Jain pontiffs was quite popular for this purpose. *Upadeśataraṅgiṇī* mentions that Raja Kumārapāla (1143-74) of Gujarat established 21 Śāṣtra bhanḍāıs and presented each of them a copy of *Kalpasūtra* written in gold letters[1].

On the basis of medium of illustration, *Kalpasūtra* paintings may be divided into two groups—palm leaf and paper. Before paper, palm leaf was a popular medium for illustrating such religious texts all over India. Some of the Buddhist texts found at Gilgit (Kashmir) were written on palm leaf others on birch bark, wooden covers of these manuscripts are illustrated, similarly Buddhist text were written and illustrated in medieval eastern India namely Bengal, Bihar and Nepal; on palm leaf. A number of them are available to show us the artistic activity of that region.

The earliest known copy of an illustrated *Kalpasūtra* and a version of *Kālak Kathā* is of A. D. 1278 in the Sanghavīnā Pādānā Bhandār Patan. It has only two miniatures of two Jain nuns and two śrāvikās. Another work, a *Kalpasūtra* and *Kālaka Kathā* of 1279 A. D., is in the same collection. All five miniatures of this text are merely iconographical representations of Jain deities, namely Brahmaśānti Yaksha and Lakshmī devī. The next in chronological order is *Kalpasūtra Kālkacārya Kathā* in the collection of Ujjamphoi Dharmaśālā, Ahmedabad, which has six miniatures on palm leaf. Narrow folios of this text have four lines of written text divided into two panels and the second part is again separated into two by an almost rectangular panel depicting scenes from Mahāvīra's life. These illustrations are decorative and are painted on a traditional pattern. Other manuscripts of the same period and style is in the collection of Seth Ānandjī Mangaljī nī Peḍhī, Idar. It has thirty-four paintings illustrating various episodes from the life of Mahāvīra.

---

1. Moti Chandra, *Jain Miniature Painting from Westren India*, Ahmedabad 1949. p. 3

A study of these miniatures shows that though iconographical representations of Jain deities, they do not lack the warmth of a work of art. Background is plain, figures are angular with farther eye, drawing is simple but sure, limited colours are used – red for background, with green, yellow and black or the illustration. Moreover, they also show a development in style, for example Ujjamphoi Collection *Kalpasūtra* has a narrow curtain in the scene illustrating "Birth of Mahāvīra", the same curtain becomes much more elaborated in the Idar miniature. The Idar miniatures also show the use of gold which Moti Chandra thinks "was probably learnt from the Persians."[1]

On-Paper

DHVANYĀLOK—A manuscript written on paper for Jinacandra Sūri (1156-1166 A. D.) indicates that paper was being used by mid 12th C. for writing but it seems for illustration patrons and painters used the traditional medium till the mid 14th C. as no paper illustrated examples exist prior to that period. A copy of *Kalpasūtra,* dated V. S. 1424 (A. D. 1367) in the collection of Muni Jinavijayaji is the earliest known work on paper. Next comes a dated (1381 A. D.) copy of *Kalpasūtra* and *Kālaka Kathā* in the National Museum collection.

There are more than fifty illustrated copies of *Kalpasūtra* known from various collections and it is difficult to talk about each one of them here, therefore only those, which are recognised as important from a stylistic point of view, will be discussed. Besides the copy in Muni Jinavijayaji's Collection, an illustrated *Kalpasūtra* in the Prince of Wales Museum, Bombay could be a 14th C. work.

The Asiatic Society, Bombay has an illustrated copy of *Kalpasūtra* dated V.S. 1472 (1415 A. D.). In this copy also, like Muni Jinavijayaji's copy the background is red and gold is used here and there;

1. Moti Chandra, *Jain Miniature Paintings from Western India*, Ahmedabad 1949, p. 34.
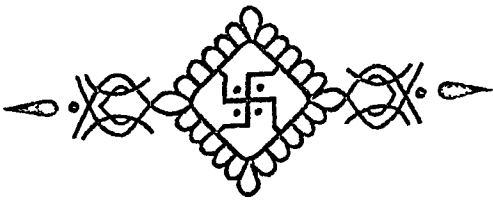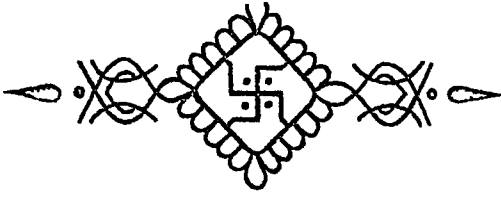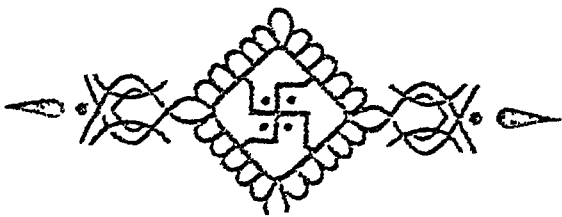
another copy bearing same 1415 date is in the collection of Ānandjī Kalyanjī ni Peḍhi nā Jñāna bhanḍār, Limbdi.

A copy of *Kalpasūtra* in the India office library, of 1427 shows remarkable development in tradition. The text is written on black and red ground with silver ink. Scenes from tirathaṅkaras' life are painted very elaborately and the main pictures also have a decorative border—a tradition, the fully developed form of which can be seen in the Devasāno pāḍo bhanḍār copy.

Hemachandrāchārya Jñāna Mandir, Patan has a copy of *Kalpasūtra* and a few painted folios which are important for documentation purpose but do not have much aesthetic merit. A dated (1432 A. D.) *Kalpasūtra* from the collection of Acārya Jai Sūriśvaraji has twenty-one illustrations but are merely traditional representation of Tirathaṅkaras' lives.

The later half of fifteenth century was a golden period for *Kalpasūtra* illustrations and some of the works done in this period are superb in quality of design and excellent in execution. This quality started showing from Mandu *Kalpasūtra* dated 1439 in the National Musuem collection. It is written in golden letters on crimson ground. Though the traditional theme dominates the atmosphere, composition and colour scheme display the artists' great imagination and skill. It also shows that the main stream of western Indian style was spreading out into a different region namely Malwa. Another manuscript of the same quality was painted at Jaunpur in 1465 A. D. during the reign of Huseyn Shah. Work was commissioned by Harshini Śrāvikā. Painted in characteristic Western Indian style, figures are angular and have the protruding eye. The text is written on red ground with gold ink. Borders have floral designs, very close to decorative motifs on tiles used in 15th C. architecture. This set displays an advanced technique of draughtsmanship and colour application.

Possibly the most lavishly illustrated *Kalpasūtra* is in Devasāno pāḍo bhanḍār, Ahmedabad It does not bear any date but stylistically can be assigned to Ca. 1475 A. D. Because of the traditional
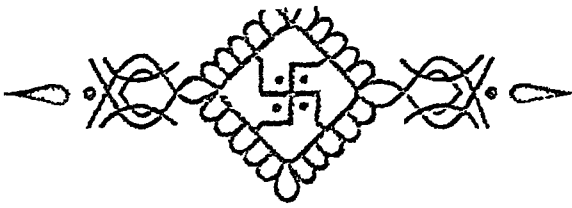
pattern, artists did not get much chance to show their imagination and skill in the main scene but the borders show variety. Lush vegetation, colourful birds, lively animals, persian figures bathing and girls in dancing poses wearing elaborately patterned clothing, painted in brilliant colours are main characteristics of this set. The main attraction of this series is musical modes and dancing poses based on Bharata's *Nāṭyāśāstra*. These figures are the predecessors of *Rāgamālā* illustrations.

This set was perhaps the highest achievement in the field of *Kalpasūtra* illustration, and though work continued nothing similar could be produced. A number of copies of *Kalpasūtra* were painted in the last quarter of the 15th C. and are good examples of this style. Such work also was going on in the 16th C. and Śrāvākas took great delight in commissioning *Kalpasūtra* and presenting them to their gurus. The present copy from the collection of Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur (No. 5354). was written at Bhinamāla in A. D. 1506 (v. s. 1563). Bhinamāla, an ancient town in Rajasthan, was then a great cultural and religious centre[1]. Lolā Śrāvak and his family, inspired by the preaching of Bhanumeru, had this copy made for the use of Vivekashekhar, the Vācaka or teacher. It has 136 folios and 36 illustrations. A general introduction to this manuscript has already given in the preface and therefore only its pictorial qualities will be discussed here. Long paper folios have seven lines in each and 36 scenes from the life of the Tīrthaṅkaras are painted in slightly elongated panels. As the *Kalpasūtra* mentions acts of only four Tirathaṅkaras the other twenty are shown in two miniatures (Nos. 27 and 28) - ten seated in each. Gold, red and blue dominate the palette and black touches make each more impressive. Gold was used profusely in *Kalpasūtra* illustrations in late 15th C. It seems that the affluent Jain Society was willing to spend part of their wealth on painting. In our manuscript's illustrations the palaces of Siddhārtha, Triśalā and of other royalties show a good number

1. Dashrath Sharma, *Rajasthan Through the Ages*, Bikaner 1966, p. 444.
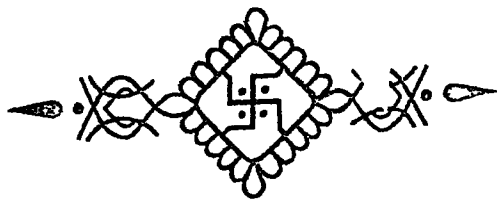
of decorative motifs. Clothing also demonstrate medieval patterns - geese, rosettes etc. found especially on printed fabrics from Gujarat. The paintings in this manuscript are in typical Western Indian style with angular features and farther eye. It may be necessary here to say a few words about that style. Wall paintings of Ellora, Madanpur and Kailashnath (Kanchipuram) show a decadent form of Ajanta tradition, which has a projecting farther eye and angularity in human features-the main characteristics of this style. Though the wall paintings mentioned above are not in Jain temples alone (The Kailash temple at Ellora for example is dedicated to Śiva) in the beginning of 20th C. when A.K. Coomaraswamy wrote his catalogue on Jain art, he called this "Jain" style. Later, in his book *History of Indian and Indonesian Art*, he terms this style as "Gujarati". It is just labelled "Śvetāmbar Jain" and then "Western Indian" by Norman Brown. Such names soon seemed unappropriate when the Vaishnava texts, came to light. The term "Western Indian" did not appeal to Rai Krishnadasa because of the *Kalpasūtra* dated 1465, which was prepared at Jaunpur (U. P.) in Eastern India. In his book *Bhārat Kī Chitrakalā* published in 1939, he calls the style *Apbhramśa* defining it as a "Corrupt" form of Ajanta painting after the language then in use which also has the same name. Basil Gray feels that "The simple geographical title is the most convenient."[1]

Whatever its name may be, it is certain that "Western Indian" style is one of the most important schools of medieval Indian painting and one from which Rajasthani styles later emerged and that it contributed considerably in the making of Mughal style (as indicated by the names of Mughal painters such as Surji Gujarati and Bhimji Gujarati who must have been trained first in Western Indian style).

1. Basil Gray and Douglas Barrett, *Painting of India*, Skira 1963, p. 54
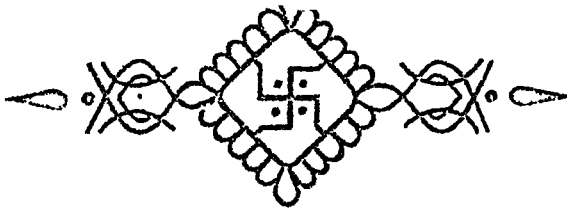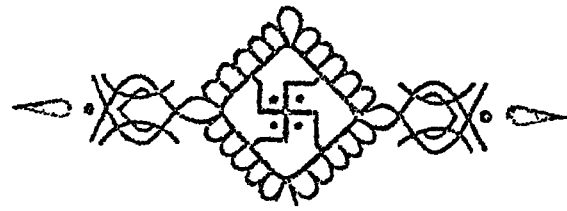
DESCRIPTION OF PLATES

1. Mahāvīra sits in *Padmāsana* on a throne supported by lions and elephants. He wears ornaments and a crown. A musician, *Chowrie* bearer and attendant stand to each side. (P. 4)

2. Mahāvīra's first disciple Gautamaswāmi sits on a throne with two attendants on either side. He has mālā in his hand and is wearing a monk's dress which has white dots on a golden ground. (P. 6)

3. Devānandā's fourteen dreams—an elephant, a bull, a lion, sun, moon, a pair of garlands, a banner, a Kalaśa, brilliant flower, lotus, lake, heeps of jewels, celestial palace and ocean of milk are arranged with a figure of the anointing of goddess Śri in the centre. (P. 14)

4. Indra's court : four handed Indra sits on a throne with his attendants and watches a dance performance. (P. 22)

5. Indra praising Mahāvīra : four armed Indra sits on his lavishly decorated throne with parasol, and praises Mahāvīra with his folded hands, above Indra is attended by two *chowrie* bearers.(P. 30)

6. Harinaigmeśi takes Mahāvīra's embryo from sleeping Devānandā's womb and places it in Triśalā's womb who is lying on a couch. (P. 50)

7. Triśalā sleeps in her palace on a decorated couch while an attendant stands beside her with *pīchhī*. (P. 60)

8. Triśalā's fourteen dreams. (P. 62)
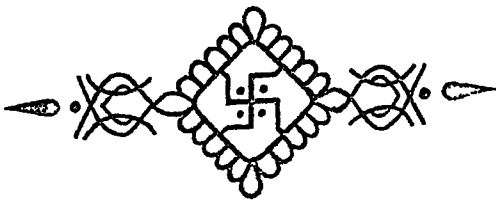
9. Siddhārtha wrestling : the painting is divided into two panels—the upper portion shows Siddhārtha wrestling with two other men and the lower panel depicts two persons applying oil on Siddhārtha who is sitting on a *Cauki.* (P. 102)

10. Triśalā relates her dream to Siddhārtha : he sits on a throne with royal parasol and Triśalā on a couch facing him. (P.116)

11. Discussion about the dream : four interpreters of Triśalā's dreams appear in the painting in two panels. (P. 118)

12. Triśalā's grief and joy : the upper half shows dejected Triśalā talking with her attendants about the stagnant embryo. The lower half depicts cheerful Triśalā after she felt movement of the baby in her womb. This joy is expressed in the colourful costumes of Triśalā and her minds. (P. 134)

13. Birth of Mahāvīra : the great teacher is in his mother's arm; Triśalā is lying on a couch while a maid stands beside her. (P. 140)

14. Mahāvīra's lustration and bath : on the top of Mt. Meru Indra sits with Mahāvīra on his lap attended by two Indras representing 63 who came to bathe the child. Indra's decorated parasol is in the upper most panel along with two bulls symbolising clouds. (P. 144)

15. Mahāvīra in a royal *Śivika* carried by four men : the *Śivikā* was prepared by śakra. Mahāvīra dressed in royal costume and ornaments is accompanied by dancers on either sides and conch players on the top. (P. 166)

16. Mahāvīra plucks his hair : after removing all his valuable dress and ornaments, the great teacher plucked his hair and gave it to śakra. (P. 172)
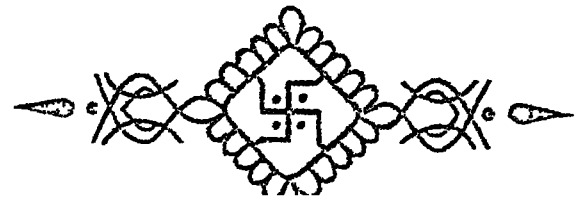
17. Mahāvīra's trials : He stands in *Kayotsarga mudrā* in a forest represented by two trees. The physician Kharaka and the cowherd stand on either side. Snakes and a tiger attack him. (P. 174)

18. *Samavasarana* of Mahāvīra, who sits in *padmāsana* within a triple walled enclosure with four gateways. Snake, elephant, lion and other animals are in the four corners. There is a row of geese at the bottom. (P. 184)

19. Mahāvīra the Siddha : a perfected being, on *Siddhaśila* in Ishatpragbhāra. He sits on a throne which has a symbolical parasol at the top, trees on each side, and a mountain at the bottom. (P. 190)

20. Gautama Gaṇadhara, the chief disciple of Mahāvīra, dressed in monk's costume (golden ground with white dots) sits on a throne with parasol. (P. 194)

21. Pārśavanātha : twenty-third Tirathaṅkar sits on a throne supported by lions and elephants, with seven headed serpent hood above his head. There are two musicians on the upper portion playing on *flute* and attendants on each side. (P. 208)

22. The painting is divided into two panels—the upper half shows Kamaṭha performing the five-fire penance and the lower half illustrates Pārśava rescuing the snake (Pārśava on elephant back asks his servant to cut the wood from which the snake comes out). (P. 212)

23. Pāraśvanāth doing penance, standing in *kāyotsarga mudrā* along with the attack of Meghamalin and counter activities of Dharanendra, the King of Nagas. (P. 216)

24. The painting is divided into two panels—the upper panel illustrates Nemikumār blowing Krishna's conch and in the lower portion Krishna tries to bend Nemikumār's hand. (P. 226)

25. Krishna and his wives urge Nemikumār to marry. (P. 228)
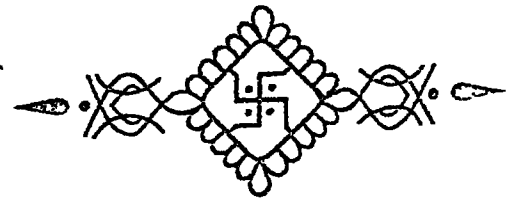
26. The marriage party *of Nemikumār*. The painting shows Nemikumār on horse-back and his bride Rajimati sitting on a couch in the upper panel. The lower half illustrates Nemikumār watching animals kept for the marriage feast. (P. 230)

27. Ten *Tirathaṅkaras seated in a temple*. (P. 242)

28. Ten Tirathaṅkars seated in a temple. (P. 248)

29. Tirathaṅkara Ādinātha (or Rishabhanātha) the first Jain pontiff was also the first king and teacher of arts, crafts and sciences. (P. 254)

30. As a craft teacher Rishabhanāth is shown *making pot, riding on* elephant. (P. 258)

31. Coronation of Rishabhanāth the first king. He sits on a throne and Indra puts *Tilaka* on his forehead. Two musicians in attendance. (P. 260)

32. Eleven gaṇadharas of Mahāvīra. (P. 276)

33. The charioteer displaying his skill in archery in front of kosha the courtesan while she dances on heaps of mustard seeds and the needle. (P. 282)

34. The painting illustrates two scenes : Sthulibhadra in front of his sister in the form of a lion in the upper panel, in the lower panel Sthulibhadra in human form. (P. 288)

35. An *Ācārya* preaching. (P. 368)

36. The Ācārya's audience. (P. 370)

—Dr. Chandramani Singh
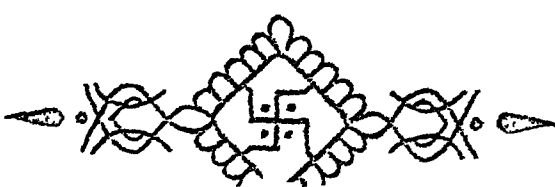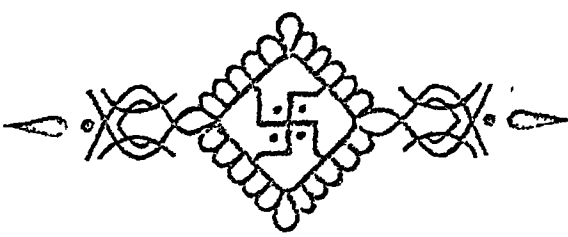
कठिन पारिभाषिक शब्दावली

अनगार — श्रमण, मुनि, साधु। गृह का त्यागकर, पंच महाव्रत धारण करने वाला निर्ग्रन्थ।

अनशन — अशनादि चारों प्रकार के पदार्थों का त्याग करना।

अभिग्रह — नियम, निश्चय, दृढ़ संकल्प।

अरहंत — पूजा के योग्य, पूज्य, सर्वज्ञ, निस्पृह, परिग्रह रहित, कर्मशत्रु का नाश करने वाला, भव-भ्रमण रूपी बीज का नाश करने वाला और जिनदेव।

अवग्रह — चातुर्मास में एक स्थान पर रहने के वाद आस-पास के क्षेत्रों में आने-जाने की मर्यादा का निर्धारण करना।

अवधिज्ञान, अवधिज्ञानी — परोक्ष ज्ञान, इन्द्रियों की सहायता के विना रूपी पदार्थों का होने वाला ज्ञान। ऐसा ज्ञान जिसे प्राप्त हुआ हो वह अवधिज्ञानी।

अवसर्पिणी — कालचक्र का अर्धभाग, अपकर्ष का युग। पृथ्वी, वृक्ष आदि वस्तुओं का स्वारस्य और मनुष्यों के पुरुपार्थ आदि गुणों का जिस काल में क्रमशः ह्रास होता रहे, वह समय। इस अवसर्पिणी के छः आरा हैं, यथा — १. सुपम-सुपमा, २. सुपमा, ३. सुषम-दुपमा, ४. दुपम-सुपमा, ५. दुपमा और ६. दुषम-दुषमा।

अवस्वापिनी — मनुष्य आदि को प्रगाढ़ निद्रा में सुलाने वाली विद्या।
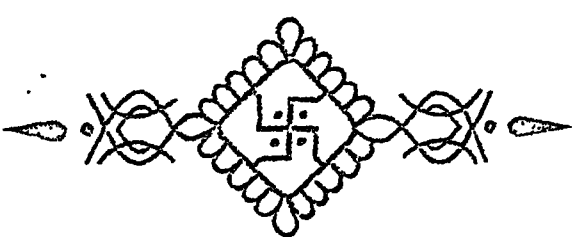
अष्टमभक्त — लगातार आठ समय (वक्त) तक आहार (भोजन), पानी, खाद्य और स्वाद्य पदार्थों का त्याग, अथवा पानी रहित आहार, खाद्य और स्वाद्य का त्याग, किंवा, ३ दिन का उपवास (तेला)।

अष्टांग महानिमित्त — १. अंग विद्या, २. स्वप्न विद्या, ३. स्वर विद्या, ४. भूविद्या, ५. लक्षण विद्या, ६. रेखा विज्ञान, ७. आकाश विज्ञान, और ८. नक्षत्र विज्ञान। उपरोक्त आठ निमित्त-विद्याओं द्वारा शुभाशुभ, लाभ-अलाभ ज्ञान को प्रदर्शित करने वाला शास्त्र।

आदानभाण्डमात्र निक्षेपणा समिति — देखिये, 'समिति'।

आभोगिक — अवधिज्ञान-प्राप्ति से लेकर केवलज्ञान उत्पन्न होने तक स्थिर रहने वाला ज्ञान।

आयाम — चावल आदि का धोवन, ओसामण।

आयुष्य कर्म — देखिए, 'कर्म'।

आरा — कालचक्र जिस प्रकार रथ, गाड़ी आदि के चक्के लगे होते हैं वैसे ही काल रूपी रथ के भी आरा (चक्र) होते हैं। बारह आरों का एक कालचक्र होता है जो २० कोटा-कोटि सागरोपम का होता है। कालचक्र के छः आरा अवसर्पिणी काल तथा छः आरा उत्सर्पिणी काल कहलाता है।

आर्त्तध्यान — आर्त्त अर्थात् अप्रिय एवं प्रतिकूल संयोगों में पीड़ा से उत्पन्न होने वाला ध्यान अर्थात् विकल्प, कुविकल्पादि विचार।

आस्वादन — कणमात्र को भी चखना, स्वाद लेना।

ईर्यासमिति — देखिए, 'समिति'।

उत्स्वेदिम — आटा आदि का धोवन।
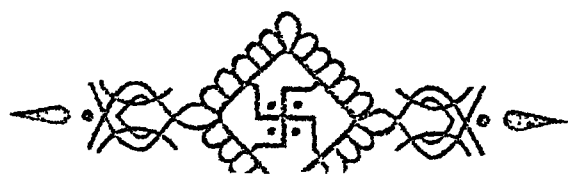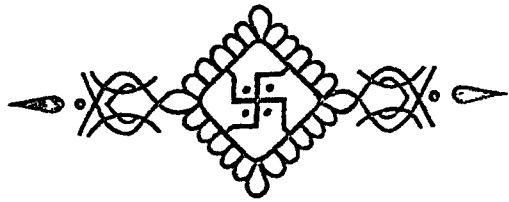
उत्सर्पिणी – कालचक्र का अर्धभाग, उत्कर्ष का युग। पृथ्वी, वृक्ष आदि वस्तुओं का स्वारस्य और मनुष्यों के पुरुषार्थ आदि गुण जिस काल में उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं वह समय। इस उत्सर्पिणी के छः आरा हैं:– १ दुषम-दुषमा, दुषमा, सुषम-दुषमा, ४ दुषम-सुषमा, ५ सुषमा, सुषम-सुषमा।

उपपात – देवयोनि एवं नरक योनि में जन्म ग्रहण करना।

उष्णविकट – उबला हुआ गर्म जल।

ऋजुमति – मनपर्यवज्ञान का एक भेद। इस ज्ञान से मन के भाव जाने जाते हैं। यह ज्ञान उत्पन्न होने के बाद नष्ट भी हो जाता है तथा अधिक विशुद्ध भी नहीं होता।

एषणा समिति – देखें, 'समिति'।

कर्म – आत्मा के मूल स्वरूप को आच्छादित करने वाली सूक्ष्म पौद्गलिक शक्ति कर्म कहलाती है। इस कर्म के आठ भेद हैं :— १. ज्ञानावरण–ज्ञान शक्ति को आवरण अर्थात् आच्छादित करने वाला कर्म, २. दर्शनावरण – दर्शन अर्थात् सामान्य बोध को आच्छादित करने वाला, ३. मोहनीय – आत्मबोध को रोककर मोहपाश में फंसाने वाला, ४. अन्तराय – पुरुषार्थ, दान, लाभ, भोग आदि में बाधा डालने वाला,५. वेदनीय–सुख और दु:ख का निमित्त बनने वाला, ६. आयुष्य–मनुष्यादि भवों में जीवन-धारण का निमित्त, ७. नाम–गति, स्थिति, जाति, यश, अपयश आदि का निमित्त, ८. गोत्र–उच्चता नीचता आदि का बोधक। प्रारम्भ के चार कर्म 'घाती' और शेष चार 'अघाती' कर्म कहलाते हैं।

काउसग्ग – संकल्प-विकल्पों से मुक्त होकर, खड़े रहकर ध्यान करने का एक प्रकार का आसन।

कायगुप्ति – देखें, 'गुप्ति'।
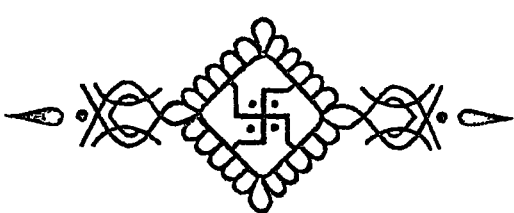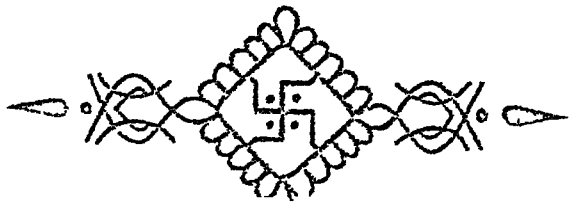
कुलकर —कुल की व्यवस्था करने वाला। युग के प्रारम्भ में जब मानव-प्रजा कुल एवं समूह के रूप में व्यवस्थित नहीं थी, उस समय में सर्वप्रथम कुल-व्यवस्था का प्रारम्भ करने वाले कुलकर कहलाए। इस अवसर्पिणी में सात कुलकर हुए हैं।

केवलज्ञान —अखिल विश्व के जड़ और चेतन के भूत, भविष्य और वर्तमान कालीन समस्त भावों को जानने वाला सर्वश्रेष्ठ ज्ञान।

कौशलिक —कौशल देश में उत्पन्न। भगवान ऋषभदेव का विशेषण।

ऋतु —वैदिक परिभाषा में यह शब्द यज्ञ का वाचक है किन्तु जैन परिभाषा में उपासक के आचरण करने योग्य एक प्रकार की तपश्चर्या है।

क्षुल्लक —छोटी अवस्था में दीक्षित साधु।

खादिम —फल आदि खाद्य पदार्थ।

गणधर —तीर्थंकर के मुख्य-शिष्य जो गण की व्यवस्था करते हैं।

गणावच्छेदक —गण (गच्छ) की सुरक्षा और विकास के लिए मुनि-वृन्द को संयम आदि की दृष्टि से सम्भालने वाला प्रमुख।

गणिपिटक —द्वादशांगी (बारह अंगों का वाचक)

गणी —गण (मुनिसमूह) की व्यवस्था करने वाला अथवा आचार्यों को शास्त्राभ्यास कराने वाला व्यवस्थापक आचार्य।

गन्धहस्ती —श्रेष्ठ जाति का हाथी, जिसके शरीर से एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध (मद) निकलती है, उस गन्ध से अन्य हाथी भय खाते हैं।
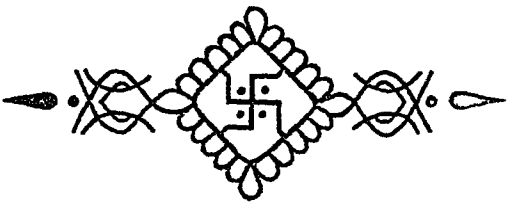
गुप्ति	– विवेकपूर्वक आत्म-संयम, नियमन करना गुप्ति है। गुप्ति के तीन भेद हैं – १. मनोगुप्ति – मन का संयम, २. वचन गुप्ति – वाणी का संयम, और ३. कायगुप्ति – शरीर का संयम।
गोत्रकर्म	– देखें, 'कर्म'।
गोदोहासन	– गाय को दोहते समय ग्वाला जिस आसन (प्रकार) से बैठता है, उस आसन को गोदोहासन कहते हैं।
चक्रवर्ती	– छः खण्डों का सार्वभौम सम्राट्।
चतुर्थभक्त	– लगातार चार वक्त तक आहार आदि का त्याग, किंवा एक दिन का उपवास।
चतुर्दशभक्त	– लगातार चौदह वक्त तक आहार आदि का त्याग, किंवा छः दिन का उपवास।
च्यवन	– देवता एवं नारक के आयुक्षय को च्यवन कहते हैं अर्थात् देव और नारक की मृत्यु।
च्युत	– देव एवं नरक गति में मृत्यु प्राप्त करना।
चतुर्दश पूर्व	– जैन परम्परा के मूल अंग-शास्त्र बारह हैं। बारहवां अंग दृष्टिवाद है। दृष्टिवाद के अन्तर्गत चौदह पूर्व आते हैं। चौदह पूर्वों के नाम इस प्रकार हैं :– १. उत्पाद पूर्व, २. अग्रायणी पूर्व, ३. वीर्यानुवादपूर्व, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व, ५. ज्ञानप्रवाद पूर्व ६. सत्यप्रवाद पूर्व, ७. आत्मप्रवाद पूर्व, ८. कर्मप्रवाद पूर्व, ९. प्रत्याख्यान पूर्व, १०. विद्यानुवाद पूर्व, ११. कल्याणवाद पूर्व, १२. प्राणावाय पूर्व, १३. क्रियाविशाल पूर्व, १४. लोकबिन्दुसार पूर्व।
चतुर्दश पूर्वधर	– चौदह पूर्वों का जिसे पूरा ज्ञान हो, उसे चतुर्दश पूर्वधर अथवा चौदह पूर्वी कहते हैं।
चाउलोदक	– चावल का धोवन।
छट्ठ भक्त	– लगातार छ समय (वक्त) के आहारादि का त्याग, किंवा दो दिन का उपवास (वेला)।
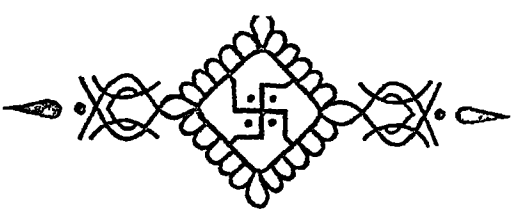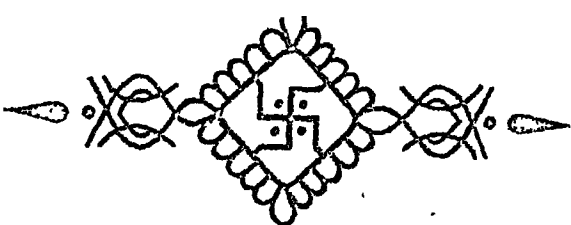
जवोदक — जौ का धोवन।

जातिस्मरण ज्ञान — पूर्व जन्म का ज्ञान।

ज्योतिषिक — सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि जैन परिभाषा के अनुसार ज्योतिषिक देव कहलाते हैं।

ज्ञान — किसी भी पदार्थ का विशेष प्रकार का बोध।

तिलोदक — तिल का धोया हुआ पानी, धोवन।

तीर्थंकर — तीर्थ की स्थापना करने वाला, धर्मचक्र का प्रवर्तक।

तुषोदक — तुष (छिलका) दाल आदि छिलके वाली वस्तु का धोवन।

दत्ति — एक बार संलग्न व अक्षतधारा रूप से दिया जाने वाला आहार-पानी चाहे एक बार में एक कण भर आहार दिया जाय या एक बूंद जल, वह एक दत्ति कहलाती है।

दर्शन — किसी भी पदार्थ का सामान्य ज्ञान।

द्वादशांगी — जैनागमों में बारह अंग (शास्त्र) मुख्य हैं — आचार, सूत्रकृत्, स्थानांग, समवाय, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद।

नगरगुप्तिक — नगर की व्यवस्था करने वाला अधिकारी, कोतवाल आदि।

नाम कर्म — देखें, 'कर्म'।

पडिलेहणा — उपयोग में आने वाले वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों को समय-समय पर देखना।

पर्याप्ति — शरीर, इन्द्रिय आदि की पूर्ण रचना।
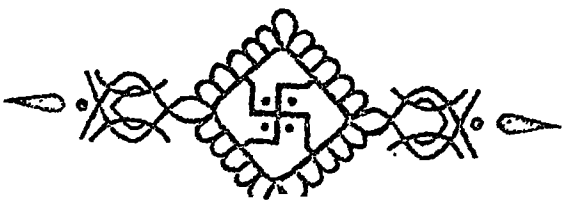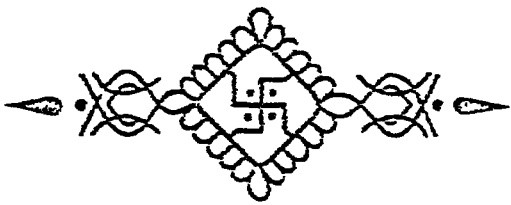
पल्योपम — विशेष प्रकार का समय (काल) सूचक माप। जो संख्या अंकों द्वारा प्रकट न की जा सके, उसे उपमा द्वारा प्रकट करना। पल्य—विशेष प्रकार का माप, उपम—उपमा द्वारा काल गणना करना पल्योपम कहलाता है, अर्थात् संख्यातीत वर्ष, असंख्य काल।

पादपोपगमन — अनशन ग्रहण करने के पश्चात् मरण-पर्यन्त वृक्ष की तरह शरीर को स्थिर रखते हुए समाधिस्थ रहना।

पान — पीने का सादा एवं स्वच्छ पानी।

पारिष्ठापनिका समिति — देखें, 'समिति'।

पुरुषादानीय — पुरुषों में आदरणीय एवं श्रेष्ठ। भगवान् पार्श्वनाथ का विशेषण।

पौरुषी — जिस समय अपनी प्रतिच्छाया पुरुष प्रमाण हो वह समय, समय का भाग विशेष। सामान्यतया ३ घंटे का समय, एक प्रहर।

प्रतिमा — साधु एवं श्रावक के सामान्य नियमों के अतिरिक्त विशिष्ट प्रकार के कठोर नियम तथा तपश्चर्या। साधु की बारह तथा श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं हैं।

प्रवर्तक — संयम की शुद्धि तथा शास्त्राभ्यास में प्रेरणा देने वाला अधिकारी श्रमण।

प्रहर — ३ घंटे का समय, दिन-रात २४ घन्टे के आठ प्रहर माने जाते हैं।

प्रायश्चित्त — दोषों का शोधन। स्नान करने के पश्चात् शरीर को अथवा अन्य किसी कार्य में विघ्न न हो, एतदर्थ शरीर पर अथवा शिर पर भस्मादि डालना, काला डोरा पहनना, काला बिन्दु लगाना।

बलदेव — त्रिखण्ड के अधिपति वासुदेव का बड़ा भाई।

बलिकर्म — गृह देवता का पूजन।
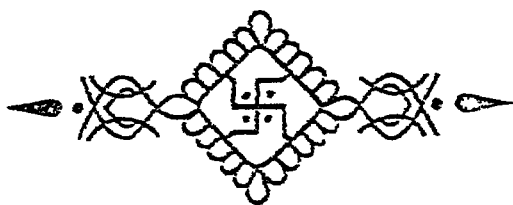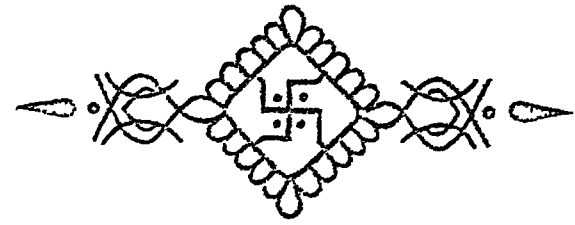
भक्त-प्रत्याख्यान — भोजन एवं पानी अथवा भोजन मात्र का त्याग।

भवनपति — एक विशेष प्रकार की देवजाति, जो अधोलोक के भवनों में रहती है।

भाषा समिति — देखें, 'समिति'।

मडम्ब — ग्राम-स्थल विशेष, जिसके चारों ओर एक योजन तक कोई गांव न हो।

मण्डलीक — एक देश का अधिपति, राजा।

मनपर्यवज्ञान — दूसरे के मन की अवस्था तथा भावों को जानने वाला ज्ञान।

मनोगुप्ति — देखें, 'गुप्ति'।

मारणान्तिक संलेखना — मरण पर्यन्त अनशन ग्रहण कर, शरीर, इन्द्रिय और कषायों को क्षीण करना।

मुष्टि लोच — मुट्ठी भर कर सिर के बालों को उखाड़ना, लोच करना।

यवनिका — पर्दा विशेष।

रस-विकृति — जिन सरस खाद्यों एवं पेय-पदार्थों के सेवन से विकृति-विकार उत्पन्न होते हों उसे रस-विकृति (विगय) कहते हैं। विगय नौ प्रकार की है—दूध, दही, मक्खन, घी, तेल, गुड़, मद्य, मधु और मांस।

लोकान्तिक — एक विशेष देव जाति। इस जाति के देव ब्रह्मलोक के अन्त में रहते हैं और तीर्थंकर के दीक्षा-ग्रहण के समय आकर जन-कल्याण के लिये उनसे प्रार्थना करते हैं।

वचनगुप्ति — देखें, 'गुप्ति'।

वादी — वाद-विवाद, शास्त्रार्थ करने में निपुण तथा उसमें अपराजित रहने वाला।

वानव्यन्तर — एक प्रकार के देव जो भूत-पिशाच के नाम से पुकारे जाते हैं।

वासुदेव — तीन खण्ड का अधिपति, सम्राट्।
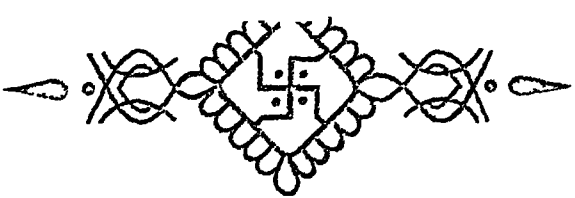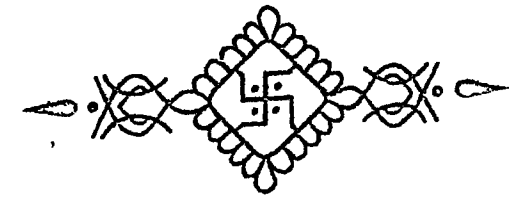
विकट — निर्दोप ग्राहार-पानी ।

विकृष्ट भक्त — जहां ग्राम की पंचायत बैठती है अथवा जहां लोग मिलकर बैठते हैं, वह स्थान, चबूतरा ग्रादि ।

विगय — देखें, 'रस-विकृति' ।

विचार-भूमि — शौचादि के लिये निर्वद्य स्थान ।

विपुलमति — मनपर्यवज्ञान का भेद । इस ज्ञान से मन के भाव-विचार जाने जाते हैं । यह विशेप विशुद्ध होता है तथा कैवल्य-प्राप्ति तक स्थिर रहता है ।

विहार-भूमि — चैत्य, मन्दिर ग्रादि का पवित्र स्थान ।

वृष्टिकाय — वर्षा, बूंदें या फुहारें ।

वेदनीय कर्म — देखिए, 'कर्म' ।

वैक्रियलब्धि — शरीर को छोटे-बड़े ग्रादि विभिन्न रूपों में बदलने वाली शक्ति विशेष ।

वैक्रिय समुद्घात — शरीर को तथा शरीर-परमाणुग्रों को विशेष रूपों में बदलने के लिए की जाने वाली विशिष्ट प्रकार की प्रक्रिया ।

वैमानिक देव — श्रेष्ठ विमानों में उत्पन्न होने वाले देव विशेप ।

शुद्ध विकट — उवला हुग्रा गरम जल ।

श्रुतकेवली — चौदह पूर्वो का जानकार विद्वान् ।

षष्टितन्त्र — सांख्य तत्वज्ञान का ग्रन्थ, जिसमें साठ तत्वों का निरूपण हुग्रा है ।

संखडी — मिष्ट-पक्वान्न, मिठाई ग्रादि जिस स्थान पर वन रही हो, ग्रथवा भोज ग्रादि का स्थान ।

संस्वेदिम — वृक्ष के पत्ते ग्रादि को उवाल कर, उन पर छिटका जाने वाला ठंडा पानी ।
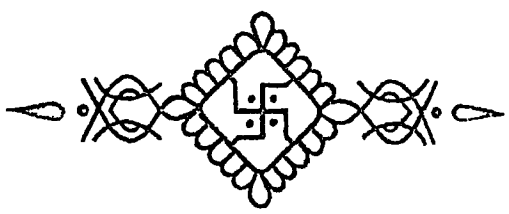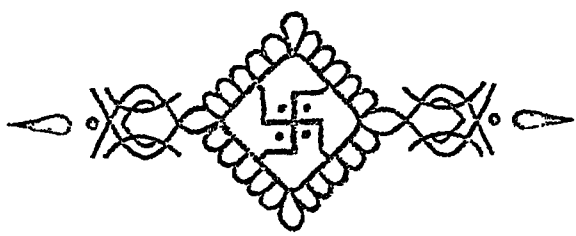
सन्धिपाल — राज्यों के बीच विग्रह आदि को सुलझाकर सन्धि कराने वाला अधिकारी, राजदूत।

समिति — मुनि जीवन में विवेक, सावधानी तथा यतनापूर्वक गति करने को समिति कहते हैं। यह समिति पांच प्रकार की है — १. ईर्या समिति — सावधानी व यतना पूर्वक चलना। २. भाषा समिति — विवेक व यतनापूर्वक बोलना। ३. एषणा समिति — मुनि जीवन में खाने-पीने योग्य पदार्थ, पहनने योग्य उपकरण तथा उपयोग में आने योग्य अन्य वस्तुओं के लिए शुद्ध एवं निर्दोष वस्तु को सावधानी व यतनापूर्वक ग्रहण करना। ४. आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति — वस्त्र, पात्रादि उपकरणों को यतनापूर्वक उठाना व रखना। ५. पारिष्ठापनिका समिति — फेंकने योग्य व त्यागने योग्य बाल, नख, थूक, कफ, मूत्रादि को जीव-रहित निर्दोष तथा निर्जन स्थान में सावधानी तथा विवेकपूर्वक छोड़ना, त्यागना।

सागरोपम — असंख्य पल्योपम जितना काल सागर कहलाता है। सागर से उपमित किया जाने वाला काल सागरोपम कहलाता है।

सौवीर — कांजी।

स्थविर — ज्ञान, तप, चारित्र, अवस्था आदि में अनुभवी वृद्ध मुनि।

स्वप्नलक्षणपाठक — स्वप्न सम्बन्धी शास्त्रों का ज्ञाता।

स्वादिम — मुखवास अथवा स्वाद्य खाद्य पदार्थ।

हरिनैगमेषी — इन्द्र की पदाति-सेना का सेनापति, विशेष कार्यदक्ष दूत और गर्भ-परिवर्तन आदि कलाओं में प्रवीण। सन्तान आदि के लिए इस देव की वेदकाल में भी आराधना की जाती थी। वेद परम्परा में इसका नाम 'नैगमेषी' अथवा 'नैगम' कहा जाता है।
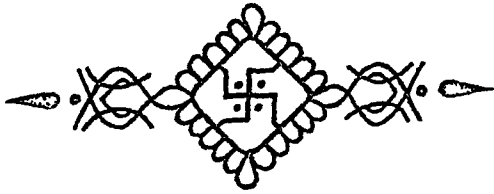
A SELECT GLOSSARY

Aṅga : The main corpus of the *Jain canon. This consists of* twelve treatises, eleven of which are extant according to Śvetāmbara tradition.

Arhat : A great religious leader, deserving supreme veneration. An Arhat is one who has become free of desire, attachment and worldly possession. He is a great soul who has destroyed the bonds of *karma*, washing away the stains that cause endless rebirth.

Avadhi-knowledge : Intuitive cognition that occurs without the aid of the sense-organs.

Avasarpiṇī : According to Jain conception, Time moves like a wheel repeating itself in endless cycles. Every turn of this wheel has two phases : those of progression and regression. *Avasarpiṇī* is the name given to the regressive phase. This is the time when all things—men, beasts and material objects—move away from the state of perfection towards gradual degeneration. *Avasarpiṇī* has six stages known as spokes (*ārā*); each stage takes the world a step lower towards degeneration. The stages are in succession : *suṣama-suṣama, suṣama, suṣama-duḥṣama, duḥṣama-suṣama, duḥṣama* and, finally *duḥṣama-duḥṣama*.

Baladeva : The elder brother of a Vāsudeva (see *Vāsudeva*).

Bhavanapati : A specific group of gods who reside in the nether regions.

Cakravartī : a universal monarch.

Gaṇa : A specific group or congregation of monks.

Gaṇadhara : A principal disciple of a Tīrthaṅkara. He leads and looks after a *gaṇa* (see above).
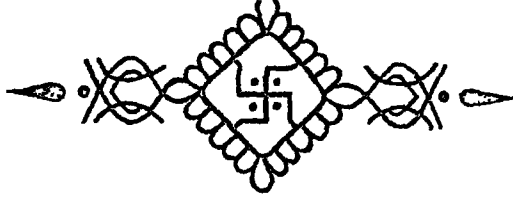
Gaṇin : A teacher who acts as the chief of a group of monks. A *gaṇin* may, alternatively, be a person who teaches the Jain canon and other scholarly disciplines to the monks.

Harinaigameśin : Indra's ambassador and chief of infantry. This god was worshipped popularly during later Vedic times. It was believed that he had the power to bestow children. He was also known as Naigameśin or Naigama.

Karma : This according to Jain belief, consists of subtle particles that stick to the soul, veiling its true nature. *Karmas* are of eight kinds :

1. *Jñānāvaraṇa : Karma* that veils true knowledge.
2. *Darśanāvaraṇa : Karma* that veils one's vision and ordinary power of understanding.
3. *Mohanīya : Karma* that tempts the soul towards attachment to things.
4. *Antarāya :* Obstructive *karma* that acts as an impediment to a man's realisation of his human, moral and spiritual goals.
5. *Vedanīya : Karma* that causes feelings of happiness or pain.
6. *Āyuṣya : Karma* which is responsible for making a being live a life in various worlds of existence.
7. *Nāma : Karma* which causes beings to move or rest. This is the *karma* which gives a man a good or a bad name. *Nāma* is also responsible for the state *(jāti)* one is born in.
8. *Gotra : Karma* responsible for the higher or lower status of a person.

Kāyotsarga : A posture for meditation, in which the Yogi remains standing, free of thoughts and desires.

Kevala-knowledge : A knowledge in which everything that happens in the world is cognised. This knowledge embraces all time : past, present and future, as well as all states of being, conscious or material.
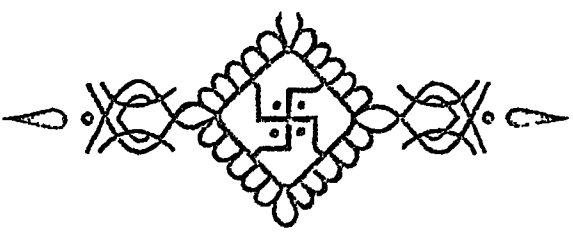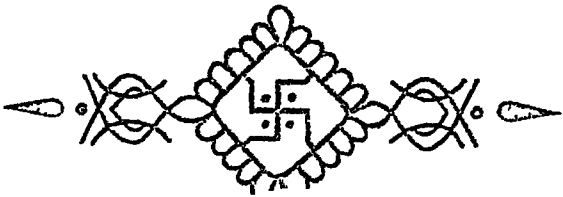
Kośalin : An epithet used for Arhat Ṛsabha because he belonged to the Kośala region.

Lokāntika : A class of gods that dwell at the extremes of *Brahmaloka*.

Palyopama : Time that cannot be reckoned in figures : an immeasurable period.

Pūrva-treatises : Perhaps the oldest part of the Jain canon. *Pūrvas* are fourteen in number. They are said to have formed the twelfth *Aṅga* named *Dṛṣṭīvāda* which is not extant.

Rasa-vikṛti : A food or drink which produces an adverse effect.

Sāgaropama : Innumerable *palyopamas* (see *palyopama*).

Sthavira : An elderly monk, respected due to his deep knowledge as well as his ascetic and moral qualities.

Śruta-kevalin : One who knows the fourteen *Pūrva* - treatises.

Tīrthaṅkara : A great religious leader who propagates the true *dharma*.

Utsarpiṇī : The reverse of *avarsarpiṇī* (see above). *Utsarpiṇī* is the name given to the progressive phase of the wheel of Time. During this phase all things move towards a state of gradually increasing perfection. Like *avasarpiṇī*, *utsarpiṇī* also has six stages *(ārās)* : *duḥṣama-duḥṣama*, *duḥṣama*, *suṣama-duḥṣama*, *duḥṣama-suṣama*, *suṣama* and *suṣama-suṣama*.

Vaimānika deva : Gods who dwell in the heavenly abodes called *vimānas*.